

श्रीमहाकविभासप्रणीतम् स्वप्नवासवदत्तम्

['विभा' नामक संस्कृत टीका, हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद, विस्तृत टिप्पणी
और सर्वाङ्गपूर्ण भूमिका एवं छः उपयोगी परिशिष्टों से संवलित]

प्रणेता

श्री तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

भूमिका लेखक

श्री बद्रीनाथ मालवीय

अध्यक्ष संस्कृत-हिन्दी विभाग

बी० ना० जैन महाविद्यालय, जबलपुर

अंग्रेजी अनुवादक

श्री रामचन्द्र शुक्ल

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

२, बटारा रोड, इलाहाबाद-२

पष्ठ संस्करण }

१९८०

[मूल्य रु० 10.00]

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

इलाहाबाद-२

२ फरवरी, १९८०

मुद्रक

विजय कुमार शर्मा

नव साहित्य प्रेस

इलाहाबाद-२

विषय-सूची

भूमिका

विषय	पृष्ठ
१—नाटक की रचना	१
२—नाट्य कला की उत्पत्ति	२
३—नाटक (रूपक की परिभाषा)	४
४—नाटक और अभिनय	४
५—मुखान्त और दुःखान्त नाटक	६
६—मास का स्थितिकाल	७
७—मास का जीवनवृत्त	१५
८—मास के नाटक	१८
९—क्या इन सभी नाटकों के रचयिता मास हैं ?	२१
१०—स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु	२६
११—प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण	
(१) उदयन	३२
(२) मासवदत्ता	३४
(३) पद्मावती	३६
(४) यौगन्धरायण	३७
(५) घसन्तक	३८
१२—स्वप्नवासवदत्तम् का नामकरण	३९
१३—स्वप्नवासवदत्तम् का भूतयांकन एवं मास की नाट्यकला	३९
१४—मास की शैली	४२
(१) व्यञ्जकता तथा प्रभावोत्पादकता	४६
(२) गुण व रीति	४६
(३) सरलता	४७
(४) वर्णन कुशलता	४७
(५) भावों का व्यक्तीकरण	४८
(६) गरसता और रम्यता	४९
(७) भाषा	४९
(८) स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता	५०
(९) व्याकरण विषयक ज्ञान एवं पाण्डित्य	५०
(१०) प्रकृति-चित्रण	५२
(११) रस	५४
(१२) श्लकार	५६
१५—मास की भाषा	
(क) मास विषयक प्रशस्तियाँ (मास की महनीयता)	६२
(ख) मास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव	६६

विषय

पृष्ठ

मूलग्रन्थ और अनुवाद

प्रथमोऽङ्कः	१
द्वितीयोऽङ्कः	७०
तृतीयोऽङ्कः	८४
चतुर्थोऽङ्कः	९४
पञ्चमोऽङ्कः	१४५
षष्ठोऽङ्कः	१८४

परिशिष्ट

परिशिष्ट १—(१) नाटक (रूपक के भेद)	१
(२) नाटक के प्रमुख तत्त्व	१
(३) भयं-प्रकृति, अवस्था और संघर्षा	४
(४) रङ्गमञ्च	५
(५) नाटक आदि छन्दों के शास्त्रीय लक्षण	७
१. नाटक; २. भङ्ग; ३. गर्भाङ्ग; ४. पूर्वरङ्ग;	
५. नान्दी; ६. सूत्रधार; ७. नेपथ्य ८. (क)	
भामुख या प्रस्तावना या स्थापना; (ख)	
प्रयोगातिशय; ९. कंचुकी या काञ्चुकीय;	
१०. विद्रूपक; ११. नायक।	

(६) नाटकीय पात्रों के लिए विशिष्ट शब्द ।

परिशिष्ट २—अकारादिक्रम से श्लोकानुक्रमिका	१२
परिशिष्ट ३—स्वप्ननाटक में सुमापित	१३
परिशिष्ट ४—नाटक में भाषे छंदों के लक्षण	१६
परिशिष्ट ५—मास की प्राकृत माथा	१७
परिशिष्ट ६—मास के व्याकरण सम्बन्धी अष्टाध्यायीय प्रयोग	१८

भूमिका

१—नाटक (रूपक) की रचना

नाट्यशास्त्र की प्राचीनता

यद्यपि नाटक को पञ्चम वेद कहकर वेदों के बाद नाट्यशास्त्र के अस्तित्व और उसकी महती लोकप्रियता का निर्देश किया गया है, किन्तु यदि हम दूर तक सोचें तो पञ्चम वेद की प्रतिष्ठा के पहले भी नाटक लोक-जीवन का प्रमुख अंग था। लोक-जीवन में इसकी सर्वप्रियता देख कर ही नाट्यशास्त्र की छानबीन और आविर्भाव की बात सोची गई। पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार उनके पहले नाट्यशास्त्र के दो आचार्य शिलालिन् और कुशाश्व का उल्लेख मिलता है।—‘पाराशर्यशिलालिन्वां भिक्षुनटसूत्रयोः। पा० ४, ३, ११०। कर्मन्दकूशाश्वदिनिः। पा० ४, ३, १११। पश्चात् भरतमुनि ने ‘नाट्यशास्त्र’ नाम से नाटक-रचनासम्बन्धी विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया। इस ग्रन्थ में नाटकसम्बन्धी सभी विवरणों और तथ्यों का उल्लेख एवं विवेचन उपात्त है। ऐसा मालूम पड़ता है कि भरतमुनि के पहले भी नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में बहुत कुछ विवेचन हो चुका था। उन सब सामग्री को लेकर भरत ने एक सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ का निबन्धन किया। नाट्यशास्त्र के श्लोकों से इसका संकेत स्पष्ट होता है। एक श्लोक में ऋषियो ने भरतमुनि से पूछा है—

योग्य भगवता सम्यक् प्रयितो वेदसम्मितः ।

नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य च कृते ॥

[हे ब्रह्मन् ! जो यह आपने वेद-सम्मत (नवीन) नाट्यवेद (सूत्रों में) ग्रथित किया है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई और वह किसके लिए है।]

इसमें स्पष्ट कहा गया है कि भरत ने नाट्य के मिदान्तों को सूत्रों में गूँथा अथवा निबद्ध किया।

यद्यपि हमें सबसे प्राचीन नाटक भाम के ही उपलब्ध हुए हैं, किन्तु नाटकों के अभिनय की चर्चा वाल्मीकीय रामायण और महाभारत में भी मिलती है।

वाल्मीकीय रामायण में अयोध्या को 'वधूनाटकसंघेदच संयुक्ताम्' कहा गया है। महाभारत के हरिवंशपर्व में रामायण नाटक और कौवेररम्भामिसार नाटक के अभिनय का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराणों एवं कौटिल्य-अर्थशास्त्र में भी नाटक और उसके अभिनय का प्रसंग आया है। इन तथ्यों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाट्यशास्त्र बहुत ही प्राचीन है और इसका प्रणयन सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ। भारत के बाद यूनान के नाट्यशास्त्र की चर्चा की जा सकती है, जिसका प्रथम उल्लेख अरस्तू ने किया है। उसका समय ३८४-३२२ ई० पू० है।

२—नाट्यकला की उत्पत्ति

यह तो नाट्यशास्त्र के इतिहास की बात हुई। नाटक या अभिनय की कला का जन्म कैसे हुआ, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। इस विषय पर भिन्न-भिन्न देशों में अपने-अलग-अलग सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। यूनानी आचार्यों के मत में नाटक की उत्पत्ति घर्मोत्सवों से हुई है। रोम में एक प्रकार के ग्राम्य खेल को नाटक का आविर्भाव स्वीकृत किया गया है। चीनी लोग नृत्य और गीत के संयोग से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। लोक के मनोरंजन और मलाई के लिये नाटक का प्रादुर्भाव हुआ, यह जापानियों का मत है। इनके अतिरिक्त मलाया, जावा और सुमात्रा आदि सभी देश, जहाँ प्राचीन सस्कृति और सम्यता के प्रतीक पाये जाते हैं, इस विषय में भारतीय मत से प्रभावित हैं।

हमारे यहाँ कुछ लोग पुत्तलिका नृत्य से नाटक की उत्पत्ति मानते हैं। कुछ ऋग्वेद के संवाद, कुछ इन्द्रध्वजोत्सव और कुछ कर्मकांडसूक्त के द्वारा नाट्यकला का सूत्रपात स्वीकार करते हैं। परन्तु महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि अेतापुत्र के प्रारम्भ में देवों ने मनोरंजन की सामग्री के लिए ब्रह्मा से निवेदन किया। ब्रह्मा ने उनकी प्रार्थना पर नाट्य नामक पञ्चम वेद की सृष्टि की। इस नाट्य वेद की रचना चारों वेदों से भिन्न-भिन्न तत्वों को लेकर हुई। उनमें ऋग्वेद से मवाद, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रम लिया गया। सबसे अधिक सहायता ऋग्वेद से ली गई। क्योंकि उसमें निबद्ध वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों के

आर्यान्, पुरुषा, उर्वशी आदि के करने कहे गये कयोपकयन तथा इन्द्र, मरुत्, मूर्ध, उरम् आदि देवों की प्रायना में गाये गये गीत नाट्यरुता के मूल तत्त्व स्वीकृत हुए । कयोपकयन प्रयथा संवाद नाटक का सबसे प्रावश्यक भाग है । वह केवल ऋग्वेद में ही नहीं, उपनिषदों एवं ब्राह्मण ग्रंथों में भी बड़े सुन्दर रूप में पाया जाता है । भरतमुनि के उत्प्रेष का यह भी तात्पर्य है कि संवाद, संगीत, अभिनय और रम-निर्वाह—ये चारों नाटक के मूल तत्त्व हैं । नाट्य-शास्त्र के वे श्लोक इस प्रकार हैं—

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।
 नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥
 जग्राह पाठ्यमाग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
 यजुर्वेदादभिनयान् रसानायर्वणादपि ॥
 वेदोपवेदः सम्यद्धो नाट्यवेदो महात्मना ।
 एयं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सलितात्मकम् ।

[इस प्रकार संकल्प करके भगवान् ब्रह्मा ने सभी वेदों का स्मरण करते हुए चारों वेदों के अंगों से आविर्भूत होने वाले नाट्यवेद की रचना की । उन्होंने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से शृंगार आदि रसों को लिया । फिर सुन्दरताओं में भरा हुआ, वेदों और उपवेदों से सम्बद्ध यह नाट्यवेद उनके द्वारा रचा गया ।]

इस प्रकार सभी सिद्धान्तों का अनुशीलन कर लेने के बाद हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि शैशवावस्था में सामाजिक मनोरंजन नाटक की उत्पत्ति का मूल हेतु या और उस समय उसका रूप ग्राम्य नाटक का रहा होगा । उस लोक-नाट्य को परिष्कृत करने के बाद मनोरंजन के माध्यम से लोक की भलाई और दुःखिताओं के निवारण के उद्देश्य से उसे समन्वित करके नाटक का शास्त्रीय रूप खड़ा किया गया । प्रारम्भ में केवल अभिनय अथवा संगीत लोक-नाट्य के मुख्य तत्त्व रहे होने । संगीत, कथा, अभिनय—इन तीनों के संयोग से नाटक का परिष्कृत रूप सामने आया, जिसने लोक के प्रिय और श्रेय दोनों को सम्पन्न किया ।

३—नाटक (रूपक) की परिभाषा

नाट्यकला के आविर्भाव की यह कहानी अपने मूल में अनेक प्रकार से सम्पादित की जा सकती है। लेकिन बहुत बाद में आचार्यों ने इसे काव्य का एक भेद स्वीकृत किया और नाटक लिखने वाले को नाटककार न कहकर संस्कृत साहित्य में कवि ही कहा गया। इस नाटक का नाम दृश्यकाव्य है और काव्य की भाँति रस यहाँ भी आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। इतिहास काव्य की तरह नाटक का भी उपजीव्य होता है। भरतमुनि ने कहा है—

नाट्यसंज्ञमिमं यदं सेतिहासं करोम्यहम् ।

[इतिहास के साथ मिला यह नाट्यसंज्ञक वेद में बताता है।]

फिर नाटक की परिभाषा देते हुए वे कहते हैं—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् ।

[अर्थात् किसी भी अवस्था का अनुकरण नाटक कहलाता है।]

आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में काव्य के दो भेदों को बताते हुए दृश्यकाव्य (नाटक) की यही परिभाषा दी है—

दृश्यं तत्राभिनेयं, तद्रूपारोपात्तु रूपकम् ।

[दृश्यकाव्य (नाटक) अभिनय के लिए होता है। उसमें नट लोग राम आदि का रूप धारण करके उनके चरित का अभिनय प्रदर्शित करते हैं। उस समय हम उनको राम आदि के रूप में ही मानते हैं। इस रूप आरोप के कारण इस काव्य-रचना को रूपक कहा जाता है।]

सोफ-जीवन से पूर्ण इस विस्तृत विश्व के किसी भाग या भंग में जो कुछ हुआ है या संभव हो सकता है, उन घटनाओं का अभिनय वा अनुकरण नाट्य कहलाता है। इस प्रकार मत्स्य और कल्पना दोनों नाट्य के आधार हैं—

प्रसिद्धकल्पितानुकरणं नाट्यम् । (अभिनव नाट्यशास्त्र)

[मत्स्य और कल्पनित जगत् की अनुकृति नाट्य है।]

दूसरे प्रकार से हमें यह बहना चाहिए कि यह दृश्यकाव्य अव्ययाव्य से भी अधिक सफल हुआ। इसे पढ़कर और देखकर अभिनय देखकर भी आनन्द लिया जा

सकता है। यह अभिनेय काव्य जगत् की विभिन्न मानव-प्रकृतियों एवं ज्ञान-विज्ञान, कला आदि को मनोरंजक रूप में उपस्थित करके सभी को प्रभावित करता है। इसलिए भरतमुनि ने कहा है—

न तत्कार्त्तं न तच्छिल्पः, न सा विद्या न सा कला ।

न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥

(नाट्यशास्त्र १—११३)

साहित्यदर्पणकार ने अभिनय के चार प्रकार बताये हैं—

भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः ।

आंगिको वाचिकश्चंद्रमहाहार्यः सात्त्विकस्तथा ॥

[भवस्था का अनुकरण ही अभिनय है और वह चार प्रकार से होता है— आंगिक (अंगों से), वाचिक (वाणी द्वारा), आहार्य (वेश-भूषा की बनावट से) और सात्त्विक (रस, भाव के प्रदर्शन से)।]

४—नाटक और अभिनय

इस अभिनय का नाटक में बहुत बड़ा महत्त्व है। या यों कहना चाहिए कि नाटक अभिनय की ही वस्तु है। काव्य, उपन्यास आदि में केवल पढ़े-लिखे लोग ही आनन्द ले सकते हैं, परन्तु नाटक का अभिनय होने से पढ़े-अनपढ़े सभी समान आनन्द और लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए नाटक से जन-शक्ति का जितना परिष्कार संभव है, उतना काव्य आदि के द्वारा नहीं। अतः अभिनय से ही नाटक को सजीव कहा जाता है। रंग-शाला में कुशल अभिनेता अपने नृत्य, गीत अथवा कथोपकथन के माध्यम से शारीरिक चेष्टाओं और स्वरों का नितान्त स्वाभाविक प्रयोग करके दर्शकों को आत्म-विमोह कर देता है। उसके अभिनय को ध्यान में रखकर रस, संवाद अथवा मीति के माध्यम से कथावस्तु का सफल विन्यास करना नाटककार का कौशल है।

नाटक के अभिनय में सार्वजनिक मनोरंजन की यह उपस्थिति देखकर ही महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में कहा है।

देवनामिबमामन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं

रुद्रेणैदमुत्तारयतिकरे स्वाङ्गे विभवतं द्विषा ।

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।

[मुनियों ने कहा है कि नाटक तो देवताओं की आँखों को शान्ति प्रदान करने वाला मुहावना यज्ञ है। भगवान् शंकर ने भी पार्वती के साथ विवाह करके नाटक को अपने शरीर में ताण्डव और सास्य दो भागों में बाँट लिया है। नाटक में सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से युक्त एवम् अनेक रसों से परिपूर्ण लोक-जीवन के चरित्र दिखाई पड़ते हैं। इसलिए अलग-अलग रुचि रखने वाले लोगों के लिए नाटक ही एक ऐसा उत्सव है, जिसमें सभी एक समान आनन्द पा सकते हैं।]

५—सुखान्त और दुःखान्त नाटक

आँखों का मुहावना यज्ञ होने के कारण ही भारतीय नाटकों की परम्परा सुखान्त होने की है तथा हत्या, मारकाट आदि का प्रदर्शन रंगमंच पर नहीं किया जाता। इसके विपरीत पाश्चात्य नाटककार दुःखान्त नाटक लिखने में ही अपनी नाट्यकला का उत्कर्ष मानते हैं। प्रायः वे यथार्थवादी विचार को लेकर चलने वाले कवि हैं, जिनकी दृष्टि में मनुष्य का जीवन दुःखमय ही दिखाई देता है। अतः वे सत्य की रक्षा करने के लिए दुःखमय जीवन का वास्तविक रूप उपस्थित करते हैं। किन्तु ऐसा उद्देश्य रखने पर नाटक में जन-मन-रंजन की कल्पना हमें नहीं करनी चाहिए। हो सकता है कि समाज में कुछ लोगों का मनोविनोद हत्या, मारपीट, युद्ध और कलह से ही होता हो, लेकिन यह सिद्धान्त सार्वजनिक या सार्वत्रिक नहीं हो सकता। दुःखान्त नाटकों में जब प्रधान नायक की हत्या एवं न्याय पर चलने वाले लोगों को मारने-पीटने का दृश्य दिखाया जाता है तब दर्शकों की आस्था सत्य और न्याय से ढिगने लगती है। कहते हैं कि एक बार ऐसे ही एक दुःखान्त नाटक के अभिनय में एक कल्याणजनक दृश्य देखकर एक महिला जोर-जोर से रोने लगी और नाटक का अभिनय बिरस हो गया। एक बार एक नाटक में प्रतिनायक एक बालक को बेत से पीटने का अभिनय कर रहा था और बालक भी बड़ी क्रोधमयता के साथ थोट से पीड़ित होकर चिल्ला रहा था। यह कल्याणजनक दृश्य देख कर एक दर्शक अपने को न समाप्त तथा और उसने जूता खींच कर प्रतिकारात्मक को मार दिया।

नाटकों के अभिनय द्वारा हमारे यहाँ जन-रुचि के परिष्कार और उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ मनोरंजन का विधान किया जाता है और हमारी साहित्य-परम्परा में सुखान्त नाटक लिखने की ही प्रणाली है। भरत मुनि ने कहा है—

सुदिलप्यं सन्धियोगं च सुप्रयोगं सुखाद्यम् ।

मृदुशब्दाभिधानं च कविः कुर्यात् नाटकम् ॥

[कवि को ऐसा नाटक लिखना चाहिए जिसकी सब संधियों का जोड़ ठीक हो, जिसके अभिनय करने में सुगमता हो, जिसका विषय सुखारमक हो और जिसमें कोमल शब्दों का प्रयोग किया गया हो।]

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त आचार्य नन्दिकेश्वर का अभिनय-दर्पण, धनञ्जय का दशरूपक, शारदातनय का भावप्रकाश और विश्वनाथ का साहित्यदर्पण नाट्यशास्त्र के अन्य ग्रन्थ हैं, जिनमें नाटक के सम्बन्ध में विस्तृत सामग्री और सिद्धान्तों की परिभाषा के साथ अपने समय के हुए नाटककारों की रचनाओं के उदाहरण स्पष्टीकरण के लिए दिये गये हैं।

६—भास का स्थितिकाल

भास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में बहुत विषमता है। कुछ उन्हें ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दी में मानते हैं तो कुछ उनका अस्तित्व ईसा की दसवीं सदी में स्वीकार करते हैं। दशमी शताब्दी में भास का होना नितान्त असम्भव प्रतीत होता है क्योंकि डा० वाल्टे, कालिदास, तथा बाणभट्ट द्वारा उल्लिखित भासनाटककचक्र को किसी केरलीय कवि की कृति मानते हैं जो सातवीं शती में हुआ। भरत-वाक्य में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के आधार पर उन्होंने राजसिंह को सातवीं शती में हुए केरल देश का राजा माना है। उसी समय (सातवीं शती में) लिखे गये महेंद्रवीर चिन्मय के 'मत्तचित्तात्' ग्रन्थ से इन नाटकों की भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों का साम्य दिखलाया गया है किन्तु इसके आधार पर इनका समय भास का समय नहीं कहा जा सकता। भाषा द्वारा प्रशंसित होने से भास की प्राचीनता सिद्ध होती है। साथ ही राजसिंह की व्यक्तिविशेष मानने से कोई बहुत दूर प्रमाण भी नहीं है।

भास के समय-निर्धारण के लिए निम्नलिखित विवेचना आवश्यक है :—

१—नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत ।

२—कामसूत्रकार वात्स्यायन ।

३—पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ।

४—अर्थशास्त्र रचयिता कौटिल्य ।

५—मनु ।

६—रामायण, महाभारत तथा लोक-कथायें ।

७—अशोक के शिला लेख ।

८—अश्वघोष एवं कालिदास ।

९—ऐतिहासिकों तथा आलोचकों के मत का विवेचन ।

१—भास की कृतियों में भरत विरोधी नियमों के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं । जैसे भास ने भरत मुनि द्वारा प्रतिपादित नान्दी पाठ के अनन्तर काव्य के नाम निर्देश का वर्णन अपनी रचनाओं में नहीं किया है । भास ने युद्ध, वध, आक्रमण तथा मंच पर रुदन आदि का प्रयोग स्वच्छंदतापूर्वक किया है जिसका भरत ने नाट्यशास्त्र में निषेध किया है । बालचरित नाटक में अरिष्टपंथ मुष्टिक का वध, ऊषमग मे दुर्षोधन-भीम-युद्ध, अमिपेक में राम-रावण-युद्ध तथा बालि की मृत्यु का वर्णन किया गया है । ये उदाहरण भास के भरत-नाट्यशास्त्र से अपरिचित होने के प्रमाण में प्रस्तुत किये गये हैं । अतः भास भरत के पश्चाद्वर्ती नहीं हो सकते जिनका समय विद्वानों ने ईसा की तृतीय शताब्दी तथा ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी निर्धारित किया है ।

२—वात्स्यायन का ज्ञान भास को नहीं है क्योंकि प्रतिमा नाटक में जब रावण राम के समक्ष अपने अध्ययन की चर्चा करते हुए अन्य शास्त्रों की गणना करता है तब वात्स्यायन के कामसूत्र का उल्लेख नहीं करता । कामसूत्र पर अन्य आचार्यों का प्रभाव लक्षित होता है जिनसे भास परिचित रहे होंगे क्योंकि वात्स्यायन द्वारा भास की रचनाओं की प्रसिद्धि स्वीकार की गई है । प्रथम समय कन्या को आकृष्ट करने में वात्स्यायन ने भविष्यक कथा का आश्रय लिया है जिसने अनुमान किया जा सकता है कि भास वात्स्यायन के पूर्व हुए हैं । वात्स्यायन का समय दूसरी सदी का अन्त माना जाता है, अतः भास इससे पहले हुए होंगे ।

३—कुछ विद्वान् पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि को भास से पूर्व का मानते हैं। भास की रचनाओं में व्याकरण सम्बन्धी प्रयोगों में पाणिनि से यत्र तत्र वैपम्य है। सम्भव है भास ने नाटकों में लौकिक व्यावहारिकता की दृष्टि से इन नियमों का अक्षरशः पालन न किया हो अथवा ऐन्द्रादि अन्य व्याकरण का उन पर प्रभाव पड़ा हो। अपाणिनीय प्रयोगों के आधार पर भास को उनसे पूर्ववर्ती नहीं कहा जा सकता। भास के प्रयोग पाणिनि के विरुद्ध होते हुए भी पतञ्जलि के अनुकूल हैं। कहीं-कहीं पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि द्वारा प्रयुक्त तीनों रूपों के दर्शन भास के नाटकों में होते हैं। पाणिनि का समय ई० पू० चौथी शताब्दी, कात्यायन का ई० पू० तीसरी शताब्दी तथा पतञ्जलि का दूसरी शताब्दी ई० पू० माना जाता है। अतः भास को इनके पश्चात् होना चाहिए।

४—कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अधिकरण १० अध्याय तीन का 'नवं शरायं सलिलैः सुपूर्णम्' श्लोक भासकृत प्रतिशायीगन्धरायण के चतुर्थ अंक में मिलता है। भास की दृष्टि में ब्राह्मण अश्वय तथा दोषयुक्त होते हुए भी प्रतिष्ठित तथा आदरणीय है किन्तु कौटिल्य ने ब्राह्मण का स्थान उतना ऊँचा नहीं माना है। कौटिल्य ने (चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में) जाति-प्रथा का प्राबल्य दर्शाया है पर भास ने चरित्र पर विशेष बल दिया है। कौटिल्य का समय ३०० ई० पू० माना जाता है। भास कौटिल्य के समकालीन थे।

५—भास के नाटकों में मनुस्मृति के नियमों के समर्थन में पंक्तियाँ पाई जाती हैं। जैसे मृगया, धूत, दक्षिणाहीन यज्ञ आदि की निन्दा दोनों में दृष्टि-गोचर होती है। अतः भास का समय मनु से पूर्व निश्चित होता है क्योंकि अनुमानतः मनुस्मृति के पूर्व मानव धर्मशास्त्र सम्बन्धी किसी रचना से ही भास प्रभावित हुये होंगे।

६—भास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे रामायण, महाभारत तथा जातक कथाओं से भलीभाँति परिचित थे। पचरात्र में पाण्डवों को आधा राज्य दित्वाकर भास ने महाभारत की कथा से मिलता प्रदर्शित की है। रामायण मरत लक्ष्मण के अग्रज हैं पर भास ने लक्ष्मण को बड़ा भाई दर्शाया है

जातक कथाओं में यक्षिणी^१ का वर्णन मिलता है जिसका वर्णन भास ने भी अपने 'स्वप्नवासवदत्तम्' में किया है। जातक कथाओं के अनुसार ब्रह्मदत्त काम्पिल्य^२ नगर का राजा था। भास ने भी ऐसा ही वर्णन किया है।

७—अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि प्रद्योत का राजदूत अपने स्वामी के जामाता उदयन को आर्यपुत्र से संबोधित करता है। स्वप्नवासवदत्तम् के छठे अंक में महासेन का कञ्चुकी उदयन को आर्यपुत्र कहता है। भास के प्रायः सभी नाटकों में 'महीमेकातपत्राम्' की कामना की गई है। यह विचार-धारा चन्द्रगुप्त मौर्य अर्थात् ३२७ ई० पू० से लेकर कुशानवंश दूसरी शती ई० पू० तक प्रचलित थी। संभवतः भास तत्कालीन भावनाओं से प्रभावित हों।

८—महाकवि कालिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास की प्रसिद्धि स्वीकार की है। उसी प्रकार बौद्ध कवि भद्रवधोप के ग्रन्थों पर भास की स्पष्ट छाया लक्षित होती है। प्रतिज्ञायोगन्धरायण के प्रथम अंक के श्लोक का भाव भद्रवधोप के बृद्धचरित में मिलता है पर भद्रवधोप की अपेक्षा भास के भावों में अधिक प्रभावोत्पादकता है। अतः भास कालिदास और भद्रवधोप दोनों से पूर्ववर्ती हैं।

९—डा० विटरनिज का कथन है कि भास की भाषा तथा तीली भद्रवधोप की अपेक्षा कालिदास के अधिक समीप है। उन्होंने भद्रवधोप की तिथि ईसा की दूसरी शती मानी है। वे भास की रचना को तीसरी शताब्दी का मानते हैं। डा० कीप भी भास की यही स्थितिकाल स्वीकार करते हैं। स्टेन कोनो के अनुसार भास ईसा की दूसरी शती में हुए। प्रो० बलदेव उपाध्याय ने भास के समय-निर्धारण के विषय में विद्वानों के विचारों को विवादास्पद कहा है। डा० एस० एन० दास गुप्त ने कालिदास के पूर्व की रचना का ही अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में समर्पण किया है। उन्होंने भास के समय पर अपना कोई स्वतंत्र मत नहीं दिया है। उन्होंने अन्य विद्वानों के मत का उल्लेख किया है। पृष्ठ ७१२ पर वे लिखते हैं—

१—अपन्तिगुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति, सा त्वया दृष्टा भवेत्
(स्वप्न० अंक ५)

२—राजा ब्रह्मदत्तः काम्पिल्यं नाम नगरम् । (स्वप्न० अंक ५)

The earliest mention of Bhasa is made by Kalidasa in ~~with Samudra and Kavinata~~ We know ~~that~~ Ganapati he dramas dorsed by most European scholars excepting Dr. Barnett. Dr. Cottazteing seems to be unable to pronounce any judgment while Dr. Barnett, Pisharoti and Ramavatera Pandeye and some other scholars hold that these dramas cannot be of Kalidasa pre Bhasa, but that they were probably written sometime in the 7th. Century A. D."

सुकथानकर, डा० लेस्ली तथा प्रिन्ट्ज जैसे मनीषियों द्वारा प्राकृत भाषा की विवेचनोपरान्त भास की प्राकृत को कालिदास से प्राचीन तथा अश्वघोष से अर्वाचीन सिद्ध किया गया है। भास के नाटकों की भाषा कालिदास से पूर्व की ठहरती है पर अश्वघोष की भाषा इससे भी पहले की है। ये विद्वान् ईसा की पाँचवीं शती में कालिदास का कालनिर्णय करते हैं। इसके सहारे उनके द्वारा भास का काल ईसा की तीसरी शताब्दी निर्धारित किया जाता है। पर भाषा के आधार पर तिथि संबंधी कोई निर्णय सेना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। डा० ए० पी० बनर्जी ने "भास का समय तथा भागर्ची" शीर्षक अपने लेख में पर्याप्त विवेचनान्तर भास का समय ईसा की दूसरी शती निश्चित किया है। महा-महोपाध्याय टी० गणपति धास्त्री के अनुसार भास ईसा पूर्व छठी शताब्दी में हुए। प्रो० ए० एस० पी० अय्यर भास को निश्चित रूप से "नीयकालीन मानते हैं" जो उचित प्रतीत होता है।

अंतरंग परीक्षण के आधार पर काल निर्णय

१—भास के नाटकों का आधार रामायण, महाभारत तथा लोकायत है। उदयन, प्रयोट तथा दर्मोक ई० पू० छठी शताब्दी के ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। रामायण तथा महाभारत का भी यही समय है। अतः भास के समय की उपरितन सीमा ई० पू० छठी शताब्दी है।

२—प्रतिज्ञायोग्यरायण अविमारक तथा स्वप्नवासवदत्तम् नाटकों में हम ऐतिहासिक तथ्य पाते हैं। प्रथम दो नाटकों में दो राजाओं की स्मृति

का नवीन होना लेखक के प्रतिष्ठित को उस काल के समीप ही सूचित करता है। राजगृह का राजधानी के रूप में तथा पाटलिपुत्र का एक साधारण नगर के रूप में वर्णन करना इस बात का द्योतक है कि भास ईसा की पाँचवी शती में थे।

३—प्रतिमानाटक में वर्णित विद्याओं का समय ई० पू० छठी शताब्दी से भी पूर्व का है। मानवीय धर्मशास्त्र (वर्तमान मनुस्मृति का मूलरूप) गौतम धर्मसूत्र में निर्दिष्ट होने के कारण ईसा पूर्व छठी शताब्दी से भी प्राचीनतर है। गौतम धर्मसूत्र सबसे प्राचीन धर्मसूत्र है जिसका समय ई० पू० छठी शती है। बार्हस्पत्य धर्मशास्त्र का महाभारत में उल्लेख है और कोटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उसका उद्धरण अनेक स्थलों पर किया है। मेघातिथि का न्यायशास्त्र मेघातिथि द्वारा की गई मनुस्मृति पर टीका नहीं है अतः गौतमरचित प्राचीन न्याय-ग्रन्थ है। माहेस्वर योगशास्त्र भी पातञ्जल योग से पहले का है। इन सभी उल्लेखों से भास की प्राचीनता सिद्ध होती है।

४—भास के नाटकों में वर्णित सामाजिक दशार्थ अर्थशास्त्र तथा जातक कथाओं से सम्बद्ध प्रतीत होती हैं। प्रतिमा नाटक में निर्दिष्ट मन्दिरों के परिवेश में बालू डालने की प्रथा आपस्तम्ब सूत्रों में ही मिलती है। प्रतिमा नाटक में उल्लिखित मृत व्यक्तियों की प्रस्तर मूर्तियों की स्थापना शिशुनाग वंशी राजाओं के युग का स्मरण दिलाती है।

५—भरतवाक्यों में निर्दिष्ट 'राजसिंह' किसी निश्चित राजा का बोधक नहीं है। हिमालय से विन्ध्य तक शासन करने वाले राजा का संकेत संभवतः नन्द वंश से है? इनके अतिरिक्त भास की भाषा भी प्राचीन ही प्रतीत होती है। इन उपर्युक्त तर्कों के आधार पर प्रो० बलदेव उपाध्याय ने भास का समय चौथी तथा पाँचवी शताब्दी ई० पू० स्थित किया है।

बहिरंग परीक्षण के आधार पर काल-निर्णय

बहिरंग परीक्षण भी चौथी पाँचवी शती ई० पू० के भीतर ही भास का काल निर्धारण करता है।

१—भासविक्रान्तिमित्र नाटक में कालिदास द्वारा सूत्रधार के मुख से भास आदि की रचनाओं का इस प्रकार कथन किया गया है :—

‘प्रथितयशसां भासमीमितलकधिपुत्रादीनां प्रबन्धानतिशय कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतो बहुमानः ।

ई० पू० प्रथम शताब्दी में होने वाले कालिदास के इस उल्लेख से भास का समय उनसे पूर्व ही निश्चित होता है ।

२—बाण^१ ने (सातवीं शताब्दी में) भासकृत नाटकों का, वामन^२ ने (आठवीं शती में) अपने ग्रन्थ काव्यालंकारसूत्र वृत्ति में एक श्लोक का जो भास के नाटक में आया है उल्लेख किया है । वामन ने चारुदत्त (१/२) तथा प्रतिज्ञा (४/२) श्लोकों को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है । स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में केवल ‘चन्द्राश’ के स्थान पर ‘शशांक’ और कुत के स्थान पर ‘मम’ पाठ है । शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त के आधार पर है । अन्तर होते हुए भी दोनों में बहुत समानता है ।

३—कौटिल्य के अर्थशास्त्र (१०/३) में दो श्लोक उद्धृत हैं । इनमें तीसरा श्लोक प्रतिज्ञायोगन्धरायण के चौथे अंक का दूसरा श्लोक इस प्रकार है :—

नवं शरावं सलिलैःसुपूर्णं
सुसंस्कृतं दम्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।

कौटिल्य द्वारा यह श्रवण ही भास से लिया गया होगा ।

४—केवल प्रतिमानाटक में (जो भासरचित है) दशरथ की प्रतिमा के उल्लेख से ज्ञात होता है कि बौद्ध आचार्य विज्जनाग इस नाटक से परिचित थे क्योंकि उन्होंने अपनी कृति कुन्दमाला में दशरथ को पश्चिमागदो महाराजो (प्रतिमागतो महाराजः) लिखा है ।

१—सूत्रमारकृतारम्भेनटिर्कबहुभूमिकैः ।

सप्तार्कयशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ हर्षचरित १.१५

२—शरच्चन्द्रांशुगौरेण याताविद्वेन भानिनी ।

काशपुष्पलवेनेदं साधुपातं मूलं कृतम् ॥ स्वप्न० वा० ४३

५—अश्वघोषविरचित बुद्धचरित महाकाव्य के त्रयोदशसर्ग का निम्न-लिखित साठवाँ श्लोक मास के प्रतिज्ञा नाटक के प्रथम अंक के अठारहवें श्लोक से कितना निम्नता-जुलता है ? इनमें शब्द तथा अर्थ दोनों में पर्याप्त साम्य है:-

काष्ठं हि मय्यनन् समते हृताशं
भूमिं खनन् विन्दति चापि तोषम्
निर्बन्धिनः किञ्चन नाप्यसाध्यं
न्यायेन युक्तं च कृतं च सर्वम् ॥ बुद्धचरित १३/६०

काष्ठादग्निर्मापते मध्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वपत्नाः फलन्ति ॥ प्रतिज्ञा १.१८

इससे मास का प्रभाव अश्वघोष पर स्पष्ट लक्षित होता है ।

इन बाह्य साक्ष्यों के आधार पर मास का स्थितिकाल ई० पू० चौथी शती तथा पाँचवीं शती के मध्य ठहरता है ।

ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर यह सर्वमान्य है कि मास गौतम बुद्ध के पश्चात् हुए । बुद्ध का निर्वाण ४८३ ई० पू० में हुआ था । उस समय भारत में अवन्ति, मगध, वत्स तथा कौशल ये चार बड़े राज्य रह गये थे । उनके जन्म से पूर्व सोलह जनपद थे । शेष सभी भारत में लड़-झगड़कर अन्त में इन्हीं चार राज्यों में विलीन हो गये थे । डा० जगदीश दत्त^१ दीक्षित पुरु के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भिक काल ही मास का कार्यकाल मानते हैं । वे कहते हैं—

“मास के ग्रन्थों में वर्णित सीमा के आधार पर हम पुरु के युद्ध के समय के भारत के मानचित्र को प्रस्तुत करते हैं तथा पूर्णतया दृष्टिपात करने से हिमालय तथा विन्ध्याखल सीमावर्ती क्षेत्र को ही भारत का राज्य अनुमानित करते हैं । इससे यह प्रमाणित होता है कि उन समय भारत की सीमा मास की वर्णित सीमाओं के समान है । मिकन्दर के आक्रमण के समय के भारत

का मानचित्र जो ऐतिहासिकों द्वारा सम्मानित रूप में प्रयुक्त किया गया है, उसी को यहाँ उद्धृत किया जाता है। चन्द्रगुप्त, विन्दुसार तथा अशोक के बंशज अपने लिए राजसिंह का प्रयोग करते थे। अशोक ने भी सिंहत्रयमूर्त्ती राजकीय मुद्रांकित स्तम्भों का निर्माण किया है। भास ने अपनी रचनाओं में नाटक के नायक की उपमा 'चन्द्र' से दी है। 'रणशिरसि' समरशिरसि' के इतने अधिक स्थलों पर प्रयोग से सिकन्दर का आक्रमण तथा पुरु के उत्तर से प्रतिज्ञा में योगन्धरायण का उत्तर 'वधः' इस ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर इसी काल का प्रमाणित होता है। भास को हम इसी समय का मानने के लिये बाध्य हैं अतः भास का समय मेरी दृष्टि में ३२७ ई० पू० के समीप ही निश्चित किया जा सकता है।"

निष्कर्ष—इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत तर्कों की समीक्षा करते हुए 'भास का स्थितिकाल' ई० पू० तीसरी तथा चौथी शताब्दी के मध्य ही निर्धारित करना सर्वाधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

७—भास का जीवनवृत्त

कालिदास तथा भारवि की भाँति भास ने भी अपने संबंध में कुछ प्रकाश नहीं डाला। उनके सभी नाटक उनके जीवन की घटनाओं के विषय में मौन हैं। अतः उनकी जीवनी के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी किंवदन्तियों और उनकी रचनाओं के आधार पर ही हम कुछ थोड़ा-बहुत कह सकते हैं।

एक किंवदन्ती के अनुसार वे जाति के घावक (घोबी) थे। काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य ने उन्हें महाराज श्रीहर्ष का समकालीन माना है। किन्तु यह किंवदन्ती सत्य से परे प्रतीत होती है क्योंकि श्रीहर्ष कालिदास के बहुत बाद में हुए और भास बहुत पहले।

एक दूसरी दृष्टिकोण यह है कि वे घोबी थे उनका नाम घटखपर कवि था किन्तु घटखपर महाराज विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे जिससे वे कालिदास के समकालीन प्रतीत होने हैं जैसा कि निम्नलिखित श्लोक में व्यक्त किया गया है—

घनवन्तरिः क्षणकोऽमरसिंहाङ्कु-
येतालभदृघटखपरकालिदासाः।

स्थातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नासि वै वरश्चिर्नयविक्रमस्य ॥

अर्थात् महाराज विक्रमादित्य की सभा में ये नवरत्न थे—धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालमट्ट, घटखपंर, कालिदास, वराहमिहिर और वरश्चि । इनका भिन्न-भिन्न समय निर्दिष्ट हो चुका है । पर महाराज विक्रम की सभा का गौरव बढ़ाने के लिए संभवतः सबको एकत्र कर दिया गया है । यह दन्तकथा भी असत्य प्रतीत होती है ।

तीसरी किंवदन्ती इस प्रकार है कि एक बार व्यास और भास दोनों ने महत्त्व के लिए विवाद हुआ । निर्णयार्थ उन दोनों के ग्रन्थ अग्नि में डाल दिये गये । भास के ग्रन्थ आग में नहीं जले अतः भास ही विजयी घोषित हुए । यह दन्तकथा इतना अवश्य सकेत करती है कि भास कालिदास की अपेक्षा अधिक प्राचीन थे क्योंकि उनका सघर्ष कालिदास से हुआ न बताकर व्यास से बतलाया गया है ।

चौथी दन्तकथा के अनुसार भास का नाटकचक्र जब आग में डाला गया तो आग ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक को नहीं जलाया । इस दन्तकथा से यह सिद्ध होता है कि भास ने अनेक नाटकों की रचना की थी जिनमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' ही सर्वश्रेष्ठ था ।

भास के नाटकों के अध्ययन से पता चलता है कि वे ब्राह्मण थे । इसी मत की पुष्टि डा० पुसल्कर, श्री ए० एस० पी० अय्यर तथा श्री एस० एन० दासगुप्त करते हैं । श्री दासगुप्त अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के पृ० ७०८ पर लिखते हैं :—

Bhasa was probably a Brahmin and a devotee of vishnu"
आचार्य बलदेव^१ उपाध्याय भी उनके ब्राह्मण होने का समर्थन करते हैं :—

“ब्राह्मणीय धर्म तथा समाज-व्यवस्था के प्रति उनका महान् आग्रह, अकुलीनो का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य उन्हें ब्राह्मण सिद्ध करते हैं । परम्परा से भी विद्या-क्षेत्र ब्राह्मणों के आधिपत्य में ही मुख्यतः था, अतः

१. महाकवि भासः एक अध्ययन—आचार्य बलदेव उपाध्याय ।

यही सही प्रतीत होता है कि मास दक्षिण भारत के नहीं अपितु उत्तर भारत के निवासी प्रतीत होते हैं। मास के नाटकों में अनेक देशों का उल्लेख है, जिसमें अवन्ती, वत्स, काशी, शूरसेन, कुह, मत्स्य, कोशल, विराट, गान्धर्व, काम्बोज, मद्र, मिथिला, जनस्यान, दक्षिणापथ तथा उंका प्रमुख हैं। उनकी कृतियों में उत्तरी भारत के नगर, नदी, पर्वत तथा रीतिरिवाजों का अत्यन्त व्यापक वर्णन पाया जाता है। पर्वतों में हिमालय, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, त्रिकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलास आदि का उल्लेख है। उनकी चित्तवृत्ति अयोध्या, मयुरा तथा उज्जैन में विशेष रूप से रमी है। 'स्वप्न-वासवदत्तम्' एवं 'बालचरितम्' में उनका भरतवाक्य—

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्
महीमेकातपत्राकां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

द्योतित करता है कि हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य में ही उनका निवास स्थान होना चाहिए। मास का दक्षिण भारत का ज्ञान उत्तर भारत की अपेक्षा बहुत ही सीमित था। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिणी भारत विषयक उनका ज्ञान केवल रामायण तथा महाभारत तक ही सीमित था। क्योंकि रामकथा-वर्णन करने के प्रसंग में रामेश्वरम् जैसे प्रमुख तीर्थों का उन्होंने उल्लेख नहीं किया जिमसे इस अनुमान की और भी पुष्टि होती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि मास वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्षपाती थे। वे किसी राजा के राजपण्डित थे जिसके लिए उन्होंने 'राजसिंह' शब्द का प्रयोग किया है, पर यह किसी व्यक्तिविशेष के लिए प्रयुक्त प्रतीत नहीं होता, न इस संबंध में उनका कोई स्पष्ट लेख ही है। उनके ग्रन्थों से नाम का राजकुलों से गहरा संबंध दृष्टिगोचर होता है। राजशामाशे, अन्तःपुरों आदि का विवश वर्णन किसी राजसभा से इनका संबंध सूचित करता है। अमात्यो, सेना, द्वन्द्व आदि का वर्णन इनके नाटकों में सर्वत्र पाया जाता है। चारुदत्त नाटक में एक समृद्ध नागरिक के विस्तारितापूर्ण जीवन का चित्र खींचा गया है। यह नागरिक जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है जिससे प्रतीत होता है कि धनी-मानी नागरिकों से भी इनका सम्पर्क रहा होगा।

जैसा पहले कहा चुका है कि भास वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था के पूर्ण समर्थक थे। बौद्धों के प्रबल प्रहार के बाद भी ब्राह्मणों का अत्यधिक सम्मान था। वे विद्वान्, धार्मिक तथा सत्यवादी माने जाते थे। ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों का स्थान था। वे युद्धविद्या में निष्णात होते थे। युद्ध से पराङ्मुख होना वे पाप समझते थे। वैश्य व्यापार में सलग्न होते थे। शूद्रों का कर्म सेवा था तथा छोटे पैमाने पर कृषि भी करते थे। उनके समय में चारों आश्रमों की व्यवस्था स्थिर प्रतीत होती है। ब्रह्मचर्य जीवन संयमित तथा कठोर होता था। सन्यासियों में तपस्वी तथा परिव्राजक दो वर्ग थे। स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी तपस्विनी होकर वनों में रहती थीं। इसका उदाहरण मगधराजमाता हैं।

भास स्वभाव से नम्र, विनोदप्रिय, तथा प्रत्युपपन्नमति थे। वे संलापकला में कुशल थे। मनुष्यस्वभाव तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी और पारखी थे। उनका कौटुम्बिक जीवन भी संभवतः सुखमय था। अपने मातापिता के प्रति वे अपना कर्तव्य पालन करते थे। उनकी पत्नी परम साध्वी एवं पतिपरायण थी। अपनी सन्तान के प्रति उनका अगाध स्नेह था। अपने से बड़ों का वे सम्मान करते थे तथा संयुक्त परिवार-प्रथा के प्रबल समर्थक थे। उनके नाटकों से उनकी आशावादित्वा तथा राष्ट्रीय भावना व्यक्त होती है। वे न्याय तथा स्वतन्त्रता के पुजारी थे। उनके नाटकों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वे अनेक शास्त्रों में निष्णात थे। साहित्यशास्त्र में उनका पाण्डित्य अगाध था। उन्होंने वेद, इतिहास-पुराण, लोककथाएँ, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्म-शास्त्रादि अनेक शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

भास वर्णव्यवस्थावर्तकी थे। राम तथा कृष्ण के चरितों में उनकी भक्ति इस बात की परिचायक है। देवताओं में उनकी आस्था थी। वैदिक कर्मकाण्ड में उन्हें पूर्ण विश्वास था। वे गो-ब्राह्मणों के बड़े भक्त थे और उन्हें सदैव आदर की दृष्टि से देखते थे।

८—भास के नाटक

महाकवि भास के आज तक प्राप्त नाटकों की संख्या कुल तीरह है। ये नाटक भावगह्वर राज्य में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का अन्वेषण करते

हुए स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को १९०६ ई० में प्राप्त हुए थे ।

इन नाटकों के विषय विविध स्थानों से लिए गये हैं । ऐसा मालूम पड़ता है कि उस समय महाभारत के पठन-पाठन का अत्यधिक प्रचार था । महाभारत की घटनाओं से लोग बहुत परिचित थे । भास ने जन-जीवन में प्रसृत घटनाओं को ही अपने नाटक का विषय बनाया है और इनमें से सात नाटक महाभारत की घटनाओं से ही सम्बन्धित हैं । अतिरिक्त दो नाटक सम्राट् उदयन से सम्बन्ध रखते हैं, दो रामायण की कथा से और दो कल्पनामूलक हैं ।

नाटक का कथानक चाहे महाभारत या रामायण पर आश्रित हो, चाहे कोरी दन्तकथा या ऐतिहासिक किंवदन्ती पर आश्रित हो, सर्वत्र भास की मौलिकता तथा अनूठी कल्पनाशक्ति का पूर्ण सञ्चार है । उनकी नाट्यकला की कुशलता से उनकी मौलिक प्रतिभा का प्रमाण मिलता है । भास के नाटक आचार-क्रम के अनुसार इस प्रकार हैं :—

१. दूतवाक्य—यह एक एकांकी 'व्यायोग' है । इसका कथानक महाभारत पर आधारित है । इसमें पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान् श्रीकृष्ण कौरवपक्ष के शिविर में जाते हैं और वहाँ से विफल होकर लौट आते हैं ।

२. कर्णभार—यह एक अंक का 'उत्सृष्टिकाङ्क्ष' है । इसका भी कथानक महाभारत का है । इसमें कर्ण द्वारा ब्राह्मण वेषधारी देवराज को अपना कवच-कुण्डल दान-स्वरूप प्रदान कर देने की कथा है । इस नाटक में स्थान-अन्विति का पूर्ण निर्वाह किया गया है ।

३. दूतघटोत्कच—यह भी महाभारत के कथानक पर आश्रित एकांकी 'उत्सृष्टिकाङ्क्ष' है । इसकी कथा अभिमन्यु के पश्चात् क्रम से चलती रहती है । अभिमन्यु के मरणोपरान्त अर्जुन जयद्रथ-वध की भीषण प्रतिज्ञा करते हैं । श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर कौरवपक्ष में भेज कर धृतराष्ट्र के पास भीषण विनाश की सूचना देते हैं । दुर्योधनादि द्वारा घटोत्कच का घोर अपमान होता है । दोनों पक्षों में भीषण संग्राम प्रारम्भ हो जाता है । इसमें दुर्योधन तथा घटोत्कच के संवाद वीर रस से परिपूर्ण हैं ।

४. कर्णभंग—‘दूतवाक्य’, ‘कर्णभार’ आदि की तरह यह भी एकांकी है। कथानक, जैसा कि नाम से ही परिलक्षित है, महाभारत का है। इसमें भीमसेन तथा दुर्योधन के अन्तिम वदामुख का मार्मिक चित्रण है। कर्ण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। दुर्योधन का कारुणिक मरणदृश्य उसे पूर्ण दुःखान्त बना देता है। संस्कृत का यही एकमात्र दुःखान्त नाटक (Tragedy) है। इसमें भी कर्ण-भार के सदृश समय और स्थान की अन्विति (Unity of time and place) की ओर समुचित ध्यान दिया गया है।

५. मध्यमव्यायोग—यह भी महाभारत पर आधारित भास का सबसे छोटा नाटक है। इसमें भीम ने एक ब्राह्मण-पुत्र की रक्षा घटोत्कच के हाथ से की है। भीम पाण्डवों में मध्यम थे, अतः नाटक का नाम मध्यमव्यायोग पड़ा।

६. पञ्चरात्र—यह तीन अंकों का समवकार है। इसमें महाभारत की एक घटना को अन्यथा रूप दिया गया है। द्रोण ने दुर्योधन से पाण्डवों को आधा राज्य दे देने के लिए अनुरोध किया। दुर्योधन ने कहा कि यदि केवल पाँच रात्रि की अवधि में ही पाण्डव भूतने मिल जाएँ तो मैं उन्हें आधा राज्य दे सकता हूँ। उस समय पाण्डव अज्ञातवास में थे। किन्तु द्रोण के प्रयत्न से पाण्डव पाँच रात के भीतर दुर्योधन में मिले और उसने उन्हें आधा राज्य दे दिया। इसमें कई नाटकीय दृश्यों का समावेश किया गया है किन्तु इतिवृत्त की दृष्टि से महाभारत के इतिवृत्त के समान प्रभावशाली नहीं हो सका है।

७. बालचरित—यह भी महाभारत की कथा पर आधारित पाँच अंक का नाटक है। इसमें मगवान् श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर बाल-वधपर्यन्त का चरित वर्णन किया गया है।

८. अमियेक—यह छद्म अंको का नाटक रामायण की कथा पर आधारित है। इसमें बालि-वध से लेकर रावण-वध तक की कथा बड़े ही संयत ढंग से वर्णित है। अन्त में राम का राज्यामियेक है। राम के राज्यामियेक के वर्णन के कारण नाटक का नाम ‘अमियेक’ पड़ा।

९. प्रतिषानाटक—रामायण पर आधारित भास का यह दूसरा नाटक है। इसमें मातृ अंक है और राम-वनवास से लेकर रावण-वध के उपरान्त राम के

अयोध्या लौटने तक का कथानक है । भरत अपने ननिहाल से लौटने पर जब अयोध्या के एक प्रतिमा-गृह में अपने मृत पूर्वजों की प्रतिमा के साथ दशरथ की भी प्रतिमा देखते हैं तो उन्हें ज्ञात हो जाता है कि उनके पिता अब जीवित नहीं हैं । अतएव इस नाटक का नाम प्रतिमानाटक पड़ा है ।

१०. प्रतिज्ञायोगन्धरायण—यह चार अंकों का नाटक है । इसमें मंत्री योगन्धरायण ने प्रतिज्ञा की कि वह अपने राजा उदयन को उज्जैन के राजा प्रद्योत के यहाँ से छुड़ा कर लाएगा । वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ और उसकी प्रतिज्ञा पूरी हुई । इसी से नाटक का नाम प्रतिज्ञायोगन्धरायण पड़ा ।

११. स्वप्नवासवदत्त—छह अंकों में परिपूर्ण यह नाटक भास के नाटकों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है और कथा-बन्ध एवं रंगमंच की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में एक अद्वितीय कृति है । इसको हम प्रतिज्ञायोगन्धरायण का उत्तर भाग कह सकते हैं । इसमें मंत्री योगन्धरायण की दूरदर्शिता का प्रखर परिचय मिलता है । योगन्धरायण ही अपनी दूरदर्शिता से वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने का प्रवाद फैलाकर उदयन का दूसरा विवाह मगध की राजकुमारी पद्मावती से करा देता है और फिर मगधराज की सहायता से कौशाम्बी का नष्ट राज्य उदयन को पुनः प्राप्त कराने में सफल हो जाता है ।

१२. अविमारक—यह नाटक कल्पनामूलक है । इसमें छह अंक हैं । राजा कुन्तिमोज की रूपवती कन्या कुरंगी के साथ अविमारक नामक राजकुमार के प्रेम-विवाह की कथा का चित्रण इसमें किया गया है ।

१३. चायदत्त—यह भी कल्पनामूलक एक प्रकरण है । इसका पूर्ण आकार अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है । इसके केवल चार अंक ही उपलब्ध हुए हैं । इस प्रकरण में वेश्या वत्सेना के साथ एक सदाशय निर्धन ब्राह्मण का भात्तिक प्रेम चित्रित किया गया है । इसी को लेकर बाद में शूद्रक ने अपना 'मृच्छ-कटिक' लिखा ।

६—क्या इन सभी नाटकों के रचयिता भास हैं ?

इस विषय में मित्र-भिन्न मत हैं कि इन तेरह नाटकों के रचयिता भास हैं । कतिपय विद्वानों का कथन है कि कुछ नाटकों की रचना भास ने की है

शेष की रचना किसी अन्य के द्वारा की गई। इनके अन्वीक्षण से यह स्पष्ट व्यक्त होता है कि इन सब नाटकों की रचना एक ही व्यक्ति ने की है। प्रायः सभी विद्वान् इन्हें एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं। इसके लिए निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं :—

१—सभी नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं जिनमें प्रथम संकेत मिलता है 'नाग छान्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' जब कि अन्य संस्कृत नाटक नान्दीपाठ से प्रारम्भ होते हैं।

२—अंकों के मध्य में सघुविस्तार वाले 'प्रवेशकों' तथा 'विष्कम्भकों' का प्रयोग किया गया है। दशकों की अंकों के बीच में होने वाली घटनाओं को सूचित करने के लिए इनको काम में लाया गया है।

३—प्रायः सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'प्रस्तावना' का प्रयोग केवल 'कर्णभार' में किया गया है।

४—सभी नाटकों में "इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्। महीमेका-तपत्रांकां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥" से अथवा इसी भाव वाले किसी पद से भरत वाक्य समाप्त होता है। पर चारुदत्त तथा दूतघटोत्कच में भरतवाक्य नहीं है।

५—सामान्यतः भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया गया है। मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े रंगमंच पर ही दिखाये गये हैं (भरत नाट्यशास्त्र में ये वर्जित हैं) और अभिषेक, पूजा, शपथ या शत्रु-प्रशालनार्थ रंगमंच पर जल लाया गया है। जैसे 'प्रतिमा' में दशरथ की, 'अभिषेक' में वालि की तथा 'ऊरुमग' में दुर्योधन की मृत्यु रंगमंच पर ही प्रदर्शित की गई है।

६—इन सभी नाटकों में प्रायः 'आकाशमाधित' मिलता है जिसमें रंगमंच पर पात्र अप्रवृत्त प्वनियों को गुनता है अथवा अनुपस्थित व्यक्तियों से बातेंलाप करता है।

७—इन नाटकों में कुछ शब्द अपने प्रचलित अर्थों से भिन्नार्थ में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे 'आर्यपुत्र' शब्द का प्रयोग अनेक बार ऐसे अर्थों में हुआ है जिनका विधान भरत के नाट्य शास्त्र में नहीं है।

८—इन सभी नाटकों में अन्त में नाटक के नाम का उल्लेख किया गया है । किसी में भी ग्रन्थ-प्रणेता का नाम नहीं है ।

९—इन नाटकों में यद्यपि विभिन्न छन्द प्रयुक्त हुए हैं, पर इन छन्दों के प्रयोग में समानता है । कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग उपयुक्त है जैसे सुवदना, दण्डक आदि । अनुष्टुप् छन्द बहुत अधिक मात्रा में आया है ।

१०—विभिन्न नाटकों में कई पात्रों की पुनरावृत्ति है जैसे 'प्रतिज्ञा' और 'दूतवाच्य' में 'कंचुकी' का नाम 'बादरायण' है । इसी प्रकार स्वप्नवासव-दत्त, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, प्रतिभा तथा अमियेक इन चार नाटकों में 'प्रतिहारी' का नाम 'विजया' है ।

११—इन नाटकों में समान शब्दों तथा दृश्यों की अवतारणा की गई है । किसी विशिष्ट व्यक्ति के आगमन की उपमा तारागणमध्य चन्द्रोदय से दी गई है ।

१२—कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग मिलता है । जैसे जन-समूह को मार्ग से हटाने के लिए 'उस्मरह उस्तरह अय्या, उस्तरह' (हटिये, हटिये श्रीमानो) कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है । कई विषयों का उल्लेख भी समानरूप से अनेक नाटकों में पाया जाता है जैसे सूर्यास्त, रात्र्यागमन, युद्ध आदि । इनकी वर्णन-प्रणाली में भी समानता दृष्टिगोचर होती है ।

१३—इन नाटकों में से पाँच (स्वप्नवासवदत्त, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, प्रतिभा, पचरात्र और ऊहमंग) के प्रथम दशक में मुद्रालंकार का प्रयोग है । इसमें देवस्तुति के साथ ही साथ मुख्य पात्रों के नाम भी आये हैं ।

१४—'एवमार्यमिध्रान् विज्ञापयामि किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यप्रे शब्द इयं श्रूयते, अंगं पश्यामि' यह पक्ति प्रतिज्ञायोगन्धरायण, अविमारक, प्रतिभा तथा चारदत्त को छोड़ कर सभी नाटकों में पाई जाती है ।

१५—अपाणिनीय प्रयोगों की बहुलता है । क्योंकि इनमें पाणिनीय व्याकरण के नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया गया है ।

१६—अधिकतर नाटकों में 'पनाका-स्फान' का प्रयोग मिलता है ।

१७—सभी नाटकों की मापा तथा शैली में बहुत साम्य है। अनेक शब्दों, वाक्यों, श्लोकों और पदों की विभिन्न नाटकों में पुनरावृत्ति की गई है। वे ही उपमायें तथा उत्प्रेक्षाएँ पाई जाती हैं।

१८—कई नाटकों में ऐसी प्रणाली प्रयुक्त हुई है कि किसी नवागन्तुक से ही प्रप्रत्याशित उत्तर मिल जाता है। उदाहरणार्थ, प्रतिज्ञायोगन्धरायण में महासेन कई राजाओं की सूची बतलाकर अपनी महारानी अंगारवती से पूछते हैं कि कौन राजा वासवदत्ता के योग्य है, उसी समय कञ्चुकी सहसा आकर कहता है—‘वत्सराज’। आशय यह कि उनके प्रश्न का अकस्मात् उत्तर मिल गया यद्यपि कञ्चुकी यह कहने आया था कि ‘वत्सराज बन्दी बना लिया गया’। अमिपेक में रावण सीता से पूछता है कि जब इन्द्रजित् द्वारा राम-लक्ष्मण मारे गये तो रक्षा कौन करेगा? नेपथ्य में—राम। अविमारक में विलासिनी नलिनी से कहती है कि विवाह कब होगा? पर्दे के पीछे से ‘भाज’ ध्वनि आती है।

१९—इन सभी नाटकों में समान नाटकीय परिस्थितियों की भवतारणा हुई है। अमिपेक और प्रतिमा दोनों में रावण के निवेदन को सीता शाप के माघ ठुकरा देती है। इसी प्रकार चाकदत्त में वसन्तसेना भी शकार के अनुनय को शाप के साथ अस्वीकृत कर देती है। प्रतिज्ञायोगन्धरायण और अविमारक में राजा तथा रानी मे पुत्री के उपयुक्त वर के लिए विचार-विमर्श है। बालचरित में कंस देवकी के पुत्री उत्पन्न होने की बात तब तक नहीं मानता जब तक कञ्चुकी इसी प्रकार का प्रश्न नहीं करता।

२०—नाट्यनिर्देश की कमी सभी नाटकों में एक-सी पाई जाती है। जो नाट्यनिर्देश है भी उनमें एक से अधिक निर्देश एक साथ मिलते हैं जैसे ‘निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य’।

२१—इनमें माता के नाम से युक्त पुत्र का नाम पाया जाता है, जैसे कौशल्यामातः (राम), भुमिग्रामातः (लक्ष्मण), धन्वेहीपुत्रः (उदयन)।

२२—इन नाटकों में युद्ध की सूचना प्रायः माटों, ब्राह्मणों आदि के द्वारा दिसाई गई है।

२३—पञ्चरात्र; कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि रूपकों में किसी घटना को सूचित करने के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' वाक्य का समान रूप से प्रयोग किया गया है ।

२४—इन सभी में सामाजिक परिस्थितियाँ एक-सी पाई जाती हैं ।

२५—भावसाम्य इनकी एक बड़ी विशेषता है । अविमारक तथा बाल-चरित में नारद कलहप्रिय एवं स्वरत्नत्री के साधक बताये गये हैं । दूतघटोत्कच तथा ऊरुमंग में अर्जुन की वीरता का वर्णन है । मृत्यु के बाद भी राजाओं का यशःशरीर से जीवित रहने तथा साहसियों के पास लक्ष्मी रहने का विधान सर्वत्र पाया जाता है ।

२६—इन सभी नाटकों में समान आदर्श दृष्टिगोचर होता है । उदाहरणार्थ सभी में देश की स्वतंत्रता और विदेशियों के निष्कासन की कामना की गई है । दूसरों से स्वतंत्रता की मित्रता माँगने की प्रवहेलना की गई है । वर्णाश्रम धर्म तथा गायों की रक्षा करना, तपस्वियों तथा साधुओं को प्रसन्न रखना, न्याय करना राजधर्म माना गया है ।

२७—कष्ट के समय 'घ्राप अधिक संतप्त न होइये' ऐसा किसी पात्र द्वारा कहलाना मास की अपनी विशेषता है ।^१

२८—इन नाटकों की रचना कोई साधारण कवि नहीं कर सकता । इनके उच्चस्तर से प्रतीत होता है कि ये मास जैसे प्रतिभाशाली कवि की ही कृतियाँ हो सकती हैं ।

इन समानताओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी एक ही व्यक्ति ने इन नाटकों की रचना की होगी । पर इनके रचयिता मास ही थे अथवा कोई अन्य यह विषय प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहा है । डा० ए० डी० पुसातकर तथा डा० ए० बी० कौय इन्हें मासकृत मानते हैं । दूसरी ओर देवघर, कुन्हन राजा, शिशरोनी तथा किटरोन इन्हें भामरचित नहीं स्वीकार करते । डा० गुरुयांकर आदि कुछ बिडान् मध्यम मार्ग का आश्रय लेकर प्रतिज्ञायोष-

१—मा भवानतिमात्र संतप्यः—यह वाक्य स्वप्नशासवदन्तम्, अविमारक तथा पारुदत्त में आया है ।

१७—सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में बहुत साम्य है। अनेक शब्दों, वाक्यों, श्लोकों और पदों की विभिन्न नाटकों में पुनरावृत्ति की गई है। वे ही उपमायें तथा उत्प्रेक्षाएँ पाई जाती हैं।

१८—कई नाटकों में ऐसी प्रणाली प्रयुक्त हुई है कि किसी नवागन्तुक से ही भ्रष्टाशयित उत्तर मिल जाता है। उदाहरणार्थ, प्रतिज्ञायौगन्धरायण में महासेन कई राजाओं की सूची बतलाकर अपनी महारानी अंगारवती से पूछते हैं कि कौन राजा वासवदत्ता के योग्य है, उसी समय कञ्चुकी सहसा आकर कहता है—‘वत्सराज’। आशय यह कि उनके प्रश्न का अकस्मात् उत्तर मिल गया यद्यपि कञ्चुकी यह कहने आया था कि ‘वत्सराज बन्दी बना लिया गया’। अभिप्रेत में रावण सीता से पूछता है कि जब इन्द्रजित् द्वारा राम-लक्ष्मण मारे गये तो रक्षा कौन करेगा? नेपथ्य में—राम। अविमारक में विलासिनी नलिनी से कहती है कि विवाह कब होगा? पदों के पीछे से ‘भाज’ ध्वनि आती है।

१९—इन सभी नाटकों में समान नाटकीय परिस्थितियों की अवतारणा हुई है। अभिप्रेत और प्रतिमा दोनों में रावण के निवेदन को सीता शाप के साथ ठुकरा देती है। इसी प्रकार चारुदत्त में वसन्तसेना भी शकार के अनुनय को शाप के साथ अस्वीकृत कर देती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण और अविमारक में राजा तथा रानी में पुत्री के उपयुक्त वर के लिए विचार-विमर्श है। बालचरित में कंस देवकी के पुत्री उत्पन्न होने की बात तब तक नहीं मानता जब तक कचुकी इसी प्रकार का प्रश्न नहीं करता।

२०—नाट्यनिर्देश की कमी सभी नाटकों में एक-सी पाई जाती है। जो नाट्यनिर्देश है भी उनमें एक से अधिक निर्देश एक साथ मिलते हैं जैसे ‘निष्कम्प पुनः प्रविश्य’।

२१—इनमें माता के नाम से युक्त पुत्र का नाम पाया जाता है, जैसे कौशल्यामातः (राम), सुमित्रामातः (लक्ष्मण), वैदेहीपुत्रः (उदयन)।

२२—इन नाटकों में युद्ध की सूचना प्रायः भाटों, ब्राह्मणों आदि के द्वारा दिसाई गई है।

२३—पंथरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि रूपकों में किसी घटना को सूचित करने के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' वाक्य का समान रूप से प्रयोग किया गया है।

२४—इन सभी में सामाजिक परिस्थितियाँ एक-सी पाई जाती हैं।

२५—भावसाम्य इनकी एक बड़ी विशेषता है। अविमारक तथा बाल-चरित में नारद कलहप्रिय एवं स्वरतंत्री के साथ-साथ कताये गये हैं। दूतघटोत्कच तथा ऊरुमंग में धर्जुन की वीरता का वर्णन है। मृत्यु के बाद भी राजाओं का यशःशरीर से जीविन रहने तथा साहसियों के पास लक्ष्मी रहने का विधान सर्वत्र पाया जाता है।

२६—इन सभी नाटकों में समान आदर्श दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ सभी में देश की स्वतंत्रता और विदेशियों के निष्कासन की कामना की गई है। दूसरों से स्वतंत्रता की मित्रता माँगने की अवहेलना की गई है। वर्णाश्रम धर्म तथा गायों की रक्षा करना, तपस्वियों तथा साधुओं को प्रसन्न रखना, न्याय करना राजधर्म माना गया है।

२७—कष्ट के समय 'आप अधिक संतुष्ट न होइये' ऐसा किसी पात्र द्वारा कहलाना भास की अपनी विशेषता है।^१

२८—इन नाटकों की रचना कोई साधारण कवि नहीं कर सकता। इनके उच्चस्तर से प्रतीत होता है कि ये भास जैसे प्रतिभाशाली कवि की ही कृतियाँ हो सकती हैं।

इन समानताओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी एक ही व्यक्ति ने इन नाटकों की रचना की होगी। पर इनके रचयिता भास ही थे अथवा कोई अन्य यह विषय आरम्भ से ही विवादास्पद रहा है। डा० ए० बी० पुसालकर तथा डा० ए० बी० कीय इन्हें भासकृत मानते हैं। दूसरी ओर देवघर, कुन्हन राजा, विशरोती तथा किन्टरजीव इन्हें भासरचित नहीं स्वीकार करते। डा० सुक्रयाकर आदि कुछ विद्वान् मध्यम मार्ग का आश्रय लेकर प्रतिज्ञायोग-

१—भा भवानतिमात्र संतुष्टः—यह वाक्य स्वप्नवासवदत्तम्, अविमारक तथा चावदत्त में पाया है।

न्यायण और स्वप्नवासवदत्तम् आदि कुछ नाटकों को नासकृत मानते हैं पर कुछ को भास के नाम के साथ पीछे से जोड़ा गया मानते हैं । कुछ आलोचक इन नाटकों को केरल के चाक्षारों की रचना मानते हैं । प्रस्तावना या स्थापना में भास के नाम का अभाव, हस्तलिपियों का अन्य प्रान्तों में न मिलकर केवल केरल में ही प्राप्त होना, स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञा नाटकों में विवाह के लिए संबंध शब्द का प्रयोग इन्हीं तर्कों के आधार पर चाक्षारों की सृष्टि मानी गई है । पर ये बातें युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती । संभव है उस समय नाटककार के नाम देने की प्रथा न रही हो । यदि यह चाक्षारों की रचना होती तो प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए रचयिता का नाम अवश्य दिया गया होता । उत्तरी भारत में मुसलमानों के प्रभुत्व के कारण संस्कृत साहित्य के अन्य ग्रन्थों के जलाने के साथ ही साथ भास का साहित्य भी भस्म हो गया, हो अतः उनका अन्य प्रान्तों में अभाव है । रही बात विवाह के अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द के प्रचार की तो मिताक्षरा पद्धति में यह शब्द इस अर्थ में अब भी प्रयुक्त होता है । यदि चाक्षारों में इतनी काव्य-प्रतिभा तथा नाट्यकौशल होता और उनकी भाषा इतनी समृद्ध होती तो वे दूसरे नाटकचक्रों की रचना करते । इन तरह नाटकों के बाद उनकी अन्य रचनायें भी उपलब्ध होती । अतः चाक्षारों द्वारा इनकी रचना नहीं हुई । इस प्रकार अभी तक प्राप्त युक्तियाँ यद्यपि पूर्णतया निर्णयात्मक नहीं हैं तथापि भाससमर्पक युक्तियाँ अधिक समीचीन प्रतीत होती हैं ।

प्राचीन कवियों ने भास की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वे सब इन नाटकों में दृष्टिगोचर होती हैं । इन प्राचीन कवियों के नाम इस प्रकार हैं बाणभट्ट, दण्डी, वाक्पति भामह, वामन, राजशेखर, अभिनवगुप्त, भोजदेव, जयदेव । इन प्राचीन कवियों की प्रशस्तियों के आधार पर यह स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि इन तरह नाटकों के रचयिता भास ही हैं । ये प्रशस्तियाँ भास ही दी गई हैं ।

१०—स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु

वत्सदेश के अधिकांश भाग पर आरुणि ने अधिकार जमा लिया था । इस राज्य को पुनः स्वामी के अधिकार में लाने के लिए वत्सराज उदयन के मंत्रियों

की दृष्टि में मगधराज दशक की सहायता नितांत आवश्यक थी। परन्तु यह सहायता उदयन और पद्मावती के विवाह से ही संभव थी। इधर ज्योतिषियों ने बताया था कि पद्मावती उदयन की रानी बनेगी। किन्तु जब तक वासवदत्ता जीवित थी, यह विवाह नहीं हो सकता था। क्योंकि प्राणप्रिया वासवदत्ता के रहते न तो उदयन ही विवाह के लिए सहमत था और न दशक ही अपनी बहन का विवाह उदयन से सहर्ष कराने को तैयार था। अतः मंत्रियों ने वासवदत्ता की स्वीकृति से एक पटव्यान्व रचा। राज्य की पश्चिमी सीमा के निकट लावाणक नामक ग्राम में राजकीय पड़ाव डाल दिया। क दिन जब राजा आश्वेत के लिए बाहर गया तब उस ग्राम में आग लगवा दी और घोषणा कर दी कि वासवदत्ता और योगन्धरायण उसमें जल गये। तत्पश्चात् वासवदत्ता और योगन्धरायण वेश बदल कर मगध के एक तपोवन में पहुँचे। वहीं से स्वप्नवासवदत्ता का प्रथम भ्रम प्रारंभ होता है।

पहला भ्रम—मंगल-गान के पश्चात् सूत्रधार रंग-भूच पर आकर प्रार्थना करता है कि बलराम जी की मुजार्थे दशकों का पालन करें। अनन्तर वह कुछ कहना ही चाहता है कि तपस्थ में 'हटो, हटो' की आवाज होती है। उसे घ्यात से मुनकर वह कहता है—'अरे ! यह तो मगधराजकुमारी के नौकर तपस्वियों को हटा रहे हैं'। इतना कहकर वह चला जाता है। तब अवन्तिका के वेश में वासवदत्ता और सन्यासी का वेश धारण किये हुए योगन्धरायण आते हैं। सिपाहियों द्वारा तपस्वियों को हटाने जाने की बात सुनकर वासवदत्ता योगन्धरायण से कहती हैं—'आर्य ! ये उजड़्ड सिपाही कहो हम लोगों को भी न हटा दें। इतने में मगधराजकुमारी पद्मावती का जो उस समय तपोवन में निवास करने वाली अपनी माता का दर्शन करके राजधानी को लौट रही थी और तापसी के अनुरोध पर उस दिन वहाँ के आश्रम में ठहर गई थी, कंचुकी उन सिपाहियों को रोक देता है और पद्मावती की आज्ञा से याचकों को मनोवर्धित दान देने की घोषणा करता है। योगन्धरायण जो पुष्पकम्र आदि ज्योतिषियों के कथनानुसार पद्मावती को अपने महाराज उदयन की होने वाली रानी समझता है, इस अवसर से खान उठाता है। वह पद्मावती से अपनी कल्पित भगिनी वासवदत्ता को धरोहर रखने की प्रार्थना करता है। पद्मावती उसे स्वीकार कर लेती है। बातचीत के सिलसिले में तापसी पद्मावती के विवाह की

चर्चा छेड़ देती है। पद्मावती की दासी तापसी को बताती है कि उज्जयिनी के राजा महासेन के पुत्र के साथ राजकुमारी के विवाह-सम्बन्ध की चर्चा चल रही है। इतने में एक ब्रह्मचारी, जो लावाणक गाँव से लौट रहा था, वहाँ विश्राम के लिए रुक जाता है। कुशल प्रश्न होने पर वह अपने वेदाध्ययन में हुए विघ्न का कारण बताते हुए कहता है—‘लावाणक गाँव में रहने वाले राजा उदयन एक दिन जब शिकार पर थे तब उस गाँव में आग लग जाने से उनकी प्रियतमा वासवदत्ता और मंत्री योगन्धरायण जल कर मर गये। शिकार से लौटने पर जब राजा को दुःखद समाचार मिला तो उन्होंने उसी आग में कूद कर अपना प्राण दे देना चाहा। पर मयियों ने बड़े प्रयत्न से उन्हें रोका। तब से वे बहुत रोते हैं, वासवदत्ता के भयजले आभूषणों को छाती से लगाकर बार-बार मूर्च्छित हो जाते हैं। परन्तु हमण्डान् नामक मंत्री बड़े कष्ट एवं धैर्य से उनकी रक्षा कर रहा है। इस समय लावाणक में राजा का रहना उचित न समझकर मंत्री लोग उन्हें अन्यत्र ले गये हैं। राजा के चले जाने पर वह ग्राम हतथी हो गया। इसलिए हम भी वहाँ से चले आये।’ इतना कहकर ब्रह्मचारी चला जाता है। परन्तु वासवदत्ता अपने प्रति अपने पति के आदर्श प्रेम को सुनकर बहुत सन्तुष्ट होती है और पद्मावती भी उदयन के गुणों से प्रभावित होकर मन में उससे प्रेम करने लगती है। अनन्तर पद्मावती से आशा पाकर योगन्धरायण के चले जाने के बाद तापसी से, अनुरूप पति की प्राप्ति का आशीर्वाद लेकर पद्मावती वासवदत्ता एवं निज परिवार के साथ प्रस्थान कर देती है।

दूसरा अंक—साधवीलतामण्डल के पास पद्मावती वासवदत्ता के साथ गेंद खेलती है। काफी देर तक खेल चुकने के बाद जब दोनों विश्राम कर रही हैं उस समय वासवदत्ता परिहास में पद्मावती से कहती है—‘बहन ! गेंद खेलने के कारण सलाई बढ़ने से तुम्हारे हाथ मानो दूसरे के हो गये हैं। भव तो तुम शीघ्र ही महासेन की बहू होगी’ इस पर पद्मावती की दासी इस रहस्य को प्रकट करती है कि पद्मावती वत्सराज उदयन के गुणों पर अनुरक्त है। ठीक उसी समय पद्मावती की उदयन की ओर आकर सूचना देती है कि उदयन के साथ पद्मावती का विवाह तय हो गया। फिर दूसरी दासी कहने के लिए आती है कि आज ही विवाह हो चुका है, अतः शीघ्रता कीजिए। इसके बाद सब अन्तःपुर में जाती जाती हैं।

तीसरा अंक—पद्मावती के विवाह की खुशियाँ मनायी जा रही हैं, किन्तु वासवदत्ता के लिए यह विवाह दुःसह हो रहा है। भला वह अपनी ही आँखों से अपने पति को पराये होते कैसे देख सकती है ? इसलिए वह राजमहल से निकल कर मन बहाने के लिए नज़र-बाग में चली जाती है। उसे खोजती हुई एक दासी भी वही जा पहुँचती है और उससे पद्मावती के लिए विवाह-माला गूँथ देने के लिए अपनी महारानी का सन्देश सुनाती है। विवशतः वासवदत्ता माला गूँथने लगती है। परन्तु उस माला में वह अविषवाकरण श्लेष को ही गूँथती है, सपत्नी-मर्दन को नहीं। इतने में दूसरी दासी आती है और माला लेकर पहली दासी के साथ शीघ्रता से चली जाती है। इधर वासवदत्ता अपने पति के साथ पद्मावती के विवाह से अत्यंत व्यथित होकर शान्ति पाने के लिए सोने का उपक्रम करती है।

चौथा अंक—विवाहोत्सव में नित्य नये-नये पदार्थों को ठूस-ठूस कर खाने से विदूषक को सन्दाग्नि हो जाती है, जिसे वह दासी के साथ वार्तालाप में प्रकट करता है। अनन्तर पद्मावती वासवदत्ता और एक दासी के साथ प्रमदवन में जाती है। वहाँ पद्मावती दासी से कुछ शैफालिका के फूलों की चुनवाती है और कुछ प्रियतम के मनोविनोद के लिए बिखरे हुए पड़े रहने देती है। फिर व्रातचीत के सिलसिले में पद्मावती उदयन के प्रति अपना अत्यंत अनुराग व्यक्त करती है। उसी समय उदयन और विदूषक वसन्तक भी प्रमदवन में आ जाते हैं। पद्मावती वासवदत्ता का श्याल करके अपने पति से मिलना नहीं चाहती। इसलिए सभी सताकुंज में छिप जाती हैं। उदयन और वसन्तक भी शरद् की तीखी धूप से बचने के लिए उभी सताकुंज में जाना चाहते हैं। किन्तु दासी सताकुंज की प्रधान बत्ता की इतने जोर में हिला देती है कि उस पर बैठे हुए सभी मौरे उड़ने लगते हैं, जिनके घाट खाने के मय से वे दोनों कुंज में न धुमकर उसके पास ही रुके हुए शिवानांज पर बैठ जाते हैं। वहाँ विदूषक राजा से पूछता है—‘आप की सब वामवदत्ता अधिक प्रिय थी या अब पद्मावती ?’ राजा उत्तर देता है—‘पद्मावती सब गुणों में प्रिय होने पर भी वामवदत्ता ने अनुरक्त मेरे मन की खींच नहीं पाती है।’ इस प्रकार चारस्त्रिक वार्तालाप में वासवदत्ता का शोक उमड़ने के कारण राजा की आँखों से आँसू बहने लगने

है। विद्रूपक मुख धोने के लिए पानी लाने जाता है। इधर अवसर देखकर वासवदत्ता पद्मावती को राजा के पास भेज कर स्वयं वहाँ से खिसक जाती है। विद्रूपक के लौटने पर पद्मावती उससे राजा के आँसू का कारण पूछती है। वह चतुरता से रहस्य छिपाते हुए उत्तर देता है कि आँखों में काशपुष्प के पराग पड़ जाने से आँसू आ गये। तब पद्मावती राजा की आँखें धोने लगती है। फिर राजा को प्रणय-संकट से बचाने के लिए विद्रूपक स्मरण दिलाता है कि उनको तो मगधराज के सम्मानार्थ एक प्रीति-उत्सव में जाना है, इसलिए शीघ्रता की जाय। राजा भी उसके प्रस्ताव का समर्थन करके वहाँ से चल देता है।

पाँचवाँ अंक—पद्मावती सिर-दर्द से पीड़ित है। इसकी सूचना वासवदत्ता को देने के लिए पद्मिनिका नामक दासी मयुरिकरिका नाम की भ्रमणी सखी को भेजती है और स्वयं वसन्तक को ढूँढकर राजा के पास भी यह समाचार मिजवा देती है। राजा अपनी पत्नी का दुःखद समाचार सुनकर समुद्रगृह में जाता है, जहाँ पद्मावती की शय्या लगाई गई थी। परन्तु वहाँ पद्मावती को न देख कर उसकी प्रतीक्षा में राजा उसी शय्या पर लेट जाता है और विद्रूपक शीत से बचने के लिए कम्बल लाने चला जाता है। इसी बीच वासवदत्ता वहाँ आती है। वह वस्त्रावृत राजा को पद्मावती समझकर उसी की बगल में लेट जाती है; पर उसके हृदय में एक अप्रुवं आनन्दोल्लास उठता है। वह इसका कारण ढूँढ़ना ही चाहती है कि राजा स्वप्न में वासवदत्ता का स्मरण करके कुछ बोलने लगता है। वासवदत्ता पलंग पर से उठ जाती है और अपने प्रियतम का मुँह निहारते हुए उसकी लटकती हुई मुजा को धीरे से शय्या पर रखकर बाहर चली जाती है। प्रियतमा के हाथ का स्पर्श पाकर राजा उठ जाता है और उसे पकड़ने के लिए लपकता है, पर दरवाजे से टक्कर खाकर गिर पड़ता है। विद्रूपक के लौटने पर राजा उससे कहता है कि वासवदत्ता अभी जीवित है। विद्रूपक इसे स्वप्न भ्रमवा भ्रमन्तिमुन्दरी नामक यक्षिणी का दर्शन बनाता है। इतने में मगधराज दशरु का भेजा हुमा कंचुकी भाकर उदयन में कहता है—‘घ्रापका सेनापति रुमग्गान् मगधेश्वर की सैन्य-भद्रापता से घ्राणि नामक शत्रु पर चढ़ाई करने जा रहा है। घ्राप शीघ्र तैयार हों।’ इस प्रकार सन्देश पाकर राजा युद्धोचित उश्माह दिखाने हुए सड़ाई के लिए प्रस्थान कर देता है।

छठा धंक—संग्राम में विजयी होने के बाद एक दिन उदयन को घोषवती नामक बीणा, जो वासवदत्ता को अत्यन्त प्रिय थी, सूर्यमुख नामक प्रासाद में किसी व्यक्ति में प्राप्त हो जाती है। राजा उसे गोद में लेकर विलाप करने लगता है। इसी बीच वासवदत्ता के पिता और माता द्वारा भेजे हुए कंचुकी और वासवदत्ता की घाई विजय के उपलक्ष्य में बधाई देने के लिए उदयन के पास आते हैं। कुशल-प्रश्न के अनन्तर वे राजा-रानी का सन्देश सुनाते हुए कहते हैं—‘यद्यपि वासवदत्ता भव नहीं है, फिर भी हम तुम्हें अपने पुत्रों के समान ही समझते हैं। जब तुम अपनी चपलता के कारण बिना विधिपूर्वक विवाह किये ही यहाँ से वासवदत्ता को लेकर भाग गये थे, तभी हमने तुम दोनों के चित्र लिखवा कर नकली विवाह करा दिया था। भव तुम यह चित्र देखकर चित्त को शान्त करो’। यह कहकर घाई राज के हाथ में चित्र समर्पित करती है। पद्मावती चित्र में लिखित महिला को देखकर राजा से कहती है कि मेरे विवाह में पूर्ण ठोक इसी स्वरूप की युवती को किसी संन्यासी ने अपनी बहन बता कर मेरे पास परोहर रख दिया था। वह भर्मा भी हमारे संरक्षण में रक्ष रही है। उसका नाम भवन्तिका है। यह सुनकर राजा उसे बुला लाने के लिए आज्ञा देता है। इसी बीच योगन्धरायण भी अपनी परोहर वापिस लेने के लिए उपस्थित हो जाता है। भवन्तिका के वेश में वासवदत्ता जब वहाँ साई जाती है तो उसकी घाई यमुन्धरा उसे पहचान कर कहती है—‘भरे! यह तो वासवदत्ता है। इस पर राजा अपनी आज्ञा से उसका पूँपट हटाता है। भवन्तिका देख कर योगन्धरायण भी अपना कल्पित वेश हटाकर राजा का जय-घोष करता है। वासवदत्ता भी उसके स्वर में स्वर मिलाती है। पद्मान् राजा से अपने भपराय के लिए क्षमा-याचना करने हुए योगन्धरायण रहस्योद्घाटन करता है कि किम प्रकार अपने स्वामी के कल्याण की दृष्टि में उसने दमन्धान् आदि मन्त्रियों की मत्ताह में ऐंगी योजना बनाई, जिनके अनुसार उगे वासवदत्ता को राजा के पास में हटाकर पद्मावती के पास परोहर रखना पड़ा। इसके बाद सब के उन्मथिनी जाने के प्रस्ताव के साथ भरत-बाबय दिगताकर नाटक समाप्त हो जाना है।

११—प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

(१) उदयन

उदयन स्वप्नवासवदत्त नाटक का सर्वगुणसम्पन्न नायक है। यद्यपि नाटकीय परिभाषा में वह धीरललित है, किन्तु धीरोदात्त नायक का लक्षण भी उसमें धटता है।

उसके गुण—वह एक पराक्रमशील युवक है। क्षात्र धर्म के सभी तत्त्व उसमें भलीभाँति विद्यमान हैं। उसमें रसिकता एवं गुणग्राहकता की अनोखी परख है। उसकी भ्रान्तरिक तथा बाह्य प्रकृति का सामञ्जस्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। वह समुद्र के समान गम्भीर-धीर एवं सुशीलता की प्रतिमूर्ति है। उसका हृदय अत्यन्त कोमल, दयालु तथा दृढ़निश्चयी है।

उसका पत्नीव्रत—वह एक विश्वसनीय पति है। उसका अपनी पत्नी के प्रति प्रेम बड़ा ही अचल एवं निष्कपट है। उसकी प्रियतमा वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने का प्रवाद प्रसारित हो जाता है। वह इस समाचार से इतना व्यथित होता है कि स्वयं को भी उसी अग्नि में मस्मसात् कर देना चाहता है। किन्तु मन्त्रियों द्वारा अग्नि में कूदने से रोक लिए जाने पर वह वासवदत्ता के जले हुए भ्राम्पणों को छाती से लगाकर मूर्च्छित हो जाता है। उसके इस अनन्य प्रणय का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी को भी कहना पड़ता है—

नैवेदानो तावुशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्विद्युक्ताः ।' (अंक १ श्लोक १३)

यह उसका वासवदत्ता-वियोग-जन्य सन्ताप बड़ा ही दीर्घ एवम् अशमनीय है। वासवदत्ता की आकृति उसकी आँखों में सर्वदा प्रत्यक्ष-सी दिखाई पड़ती है। वासवदत्ता को विस्मृत कर देना उसके लिए समस्या है, नितान्त असम्भव है। उसकी नवपरिणीता वधू पद्मावती का विशिष्ट सौन्दर्य भी उसके हृदय को भाकृष्ट करने में असमर्थ है। विद्रूपक से वह कहता है—

‘पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशोभमाधुर्यः ।

वासवदत्तायर्द्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥’ (अंक ४ श्लोक ५)

इसका मतलब यह नहीं है कि वह पद्मावती से कम प्रेम करता है । वह उसके सिर-दर्द की बात सुनकर व्याकुल होता है और मन में घनेक प्रकार की भासकार्य करते हुए कहता है—

‘रूपधिया समुदितां गुणसञ्च युक्तां

सग्न्या प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।

पूर्वाभिघातसद्योऽप्यनुभूतदुःखः

पद्मावतीमपि तथैव समर्चयामि ॥ (अंक ५ दलोक २)

उसकी विलासप्रियता—यद्यपि वह एक वीर एवं श्रेष्ठ पुरुष है तथापि उसमें प्रारम्भिक अवस्था की चञ्चलता कम नहीं है । वह इतना अधिक विलासी तथा कामप्रिय है कि वासवदत्ता के लावण्य में आसक्त हो जाने के कारण राज्य तक छो बैठता है । यहाँ तक कि पद्मावती के विवाहोपरान्त पुनः प्राप्त राज्य से उसे सन्तोष नहीं होता । उस समय भी वह वासवदत्ता के लिए आतुर दीप्त पड़ता है । स्वप्न में वासवदत्ता से प्रश्न का उत्तर मीमना उसकी आसक्ति की चरम सीमा है ।

‘हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।’

उसे कोई उत्तर नहीं मिलता है । फलस्वरूप वासवदत्ता के दृष्ट होने की सम्भावना करके तर्क-वितर्क करने लगता है—

‘किं कुप्तितासि ?’

×

×

×

‘यद्यकुप्तिता किमयं नालङ्कृतासि ?’

विद्वपक के कहने पर कि—वासवदत्ता की मृत्यु हो चुकी है, आपने स्वप्न देखा होगा—वह विमोर होकर कह उठता है—

‘यदि तावदय स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।

अवायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे सदा ॥’ (अंक ५ दलोक ६)

उसकी घोरता और व्यवहार-कुशलता—उदयन को पाण्डवों से उत्तराधिकार मे स्वाभिमान और शौर्य मिला था । वह पाण्डववंशीय राजा

शशांक का पुत्र और सहस्रांक का पीत था । भागवत के अनुसार भ्रजुन की छब्बीसवीं पीढ़ी में 'दुर्दमन' का नाम आता है । इसी दुर्दमन का नामान्तर उदयन है । वह राजोचित गुणों से सम्पन्न है । जब मगधराज का कञ्चुकी उसे युद्ध में चलने के लिए बुलाने आता है तो वह वीरोचित शब्दों में कहता है—

‘उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतोर्णे तमार्षीण दारणकर्मदक्षम् ।

विकीर्णबाणोपतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥’ (अंक ३ श्लोक १३)

यह वाक्य वीर और साहसी ही कह सकता है, भीरु या विलासी नहीं । महासेन का कञ्चुकी उदयन को बधाई देते हुए ठीक ही कहता है कि ‘प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।’

अर्जुनिका को लौटाने के समय साक्षियों की नियुक्ति उदयन के व्यावहारिक ज्ञान को प्रकट करती है । अज्ञातवास के बाद वासवदत्ता के पुनः प्रकट होने पर वह सन्देह का एक एन्द भी मुँह से नहीं निकालता है । समणवान् के रहस्य को नितान्त गोपनीय रखने पर वह आश्चर्य तो करता है, किन्तु उस पर क्रुद्ध नहीं होता । प्रमोदवन में अपने आसुषों का सत्य कारण इसलिए नहीं बताता कि उससे पद्मावती को दुःख होगा । मगध जाकर युद्ध के लिए दशक से महायत्ना प्राप्त करने में सकल हो जाना भी उसकी व्यावहारिक कुशलता का परिचायक है ।

(२) वासवदत्ता

वासवदत्ता नाटक की प्रधान स्त्रीया नायिका है । उसमें राजमहिषी के अनुरूप सावण्य, बुद्धिमत्ता एवं संवेदनायुक्त कोमलता है ।

उसका स्वाभिमान—यद्यपि वह एक निःस्वार्थ पत्नी है, पति के लिए सर्वस्व का त्याग कर सकती है तथापि उसमें एक प्रकार की आत्मसम्मान की भावना प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । प्रथमांक में उसका आत्मसम्मान एव स्वाभिमान अनेक स्थलों पर उद्दाम भावना के साथ जागरित हो उठा है । प्रारम्भ में तो वह पूर्ण आत्मसम्मानो महिला प्रतीत होती है । संन्यासीवेशधारी योग्यवराण के साथ प्रविष्ट होती हुई वह दो कर्मधारियों द्वारा ‘उत्तरत’

उत्तरत आर्याः !' का आदेश सुनती है। उस समय वह घबरेने भी हटाये जाने की आशंका से स्वाभिमान को ठेस लगाते देखकर तुरन्त योगन्धरायण से प्रश्न कर बैठती है—'अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामि ?' वह इस उत्सारणाजन्य अपमान को इतनी संवेदनशीलता से अनुभव करती है, कि हठात् उसके मुख से निकल जाता है—'आर्य ! तथा परिश्रमः परिवर्द्धं नोत्पादयति ययायं परिभवः ।'

उसकी पतिपरायणता—वासददत्ता पति के प्रेम में आत्मत्याग की मूर्ति है। साथ ही वह अत्यन्त बुद्धिमती एवं कर्तव्यपरायण है। यह योगन्धरायण की योजना दिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकार कर लेती है। योजना की सफलता-भूत अर्वाध पर्यन्त उसे अनेकशः कष्ट उठाने पड़ते हैं; किन्तु उसमें भी वह अनुपम आनन्द का ही अनुभव करती है, क्योंकि उसमें उसके पति का हित निहित है। उसके लिए पति का सुख ही सर्वस्व है। नवविवाहिता पद्मावती रुग्ण हो जाती है। इस समाचार से उसे अवह्य पीड़ा होती है; क्योंकि उसका पति बहुत दुःखी है। एक तो उसका विधोग, दूसरा मनोविनोद के एकमात्र साधन (पद्मावती) का अभाव। वह कह उठती है—'आर्यपुत्रस्य विश्रामस्थान-भूता इयमपि नाम पद्मावती अस्वस्थ्या जाता।' उसकी पतिपरायणता के कारण ही तो राजा उसकी कल्पित मृत्यु पर घबरेने प्राण देने को उतारू हो जाता है। ब्रह्मचारी ने ठीक ही कहा है कि अन्य है वह स्त्री जिसका पति उसे मरने के पश्चात् भी इस प्रकार स्मरण करे—

'धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता ।

भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥'

उसकी नारी-मुलभ ईर्ष्या—उदयन के हृदय की एकमात्र अधिकारिणी वामवदत्ता अपनी भगनी (सौन) की सरक्षकता में जीवन-यापन कर रही है। ऐसी परिस्थिति में उसके अन्तस् में धिरे ईर्ष्या के भाव कभी-कभी उसे कोसने से लगते हैं। 'आर्यपुत्रोऽपि परकीयः सवृत्तः' व्यथा के कितने गहरे-भाव हैं ! उसके हृदय-मन्दिर का देव अन्य में प्रतिष्ठित होने जा रहा है, यह उसके लिये नितान्त असह्य है। इसलिए वह पद्मावती के विवाह-संस्कार के समय स्वयं को प्रमोदवन में प्रचण्ड रखती है। इतने पर भी वह प्रतिक्षण सचेष्ट

रहती है कि कहीं योगन्धरायण की योजना निष्फल न हो जाय । जीवित रहते पति के मुख से 'वासवदत्ता बद्धं न तावन्मे मनो हरति' सुनकर अपार आनन्द मिलता है । वह कह उठती है—'वत्तं वेतनमस्थ परिखेवस्य, ग्रहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।'

वास्तव में वासवदत्ता नारी-सुलभ समस्त गुण-दोषों से युक्त है, तथापि वह एक आदर्श महिला है, विधाता की कमनीय कला का विशुद्ध उदाहरण है ।

(३) पद्मावती

पद्मावती नाटक की दूसरी स्वीया नायिका है । नाटक में इसका दर्शन सर्वप्रथम कन्यामाव में होता है ।

यह मगध-नरेश दशक की भगिनी है । यह बड़ी ही उदार-हृदय राजकुमारी है । धर्मप्रियता का पूर्ण सञ्चार इसकी हृत्तन्त्री को झंकृत करता रहता है । यह प्रतिज्ञापालन, सहानुभूतिशील एवम् प्रतिभासम्पन्न महिला है ।

सहृदयता—पद्मावती का स्वभाव अत्यन्त ही स्नेह तथा सौहार्द से परिपूर्ण है । न्यास रूप में वासवदत्ता की प्राप्ति पर वह तुरन्त कह उठती है—'भवतु, भवतु । आर्या आत्मीयेदानीं संबृत्ता ।' दोनों का पारस्परिक स्नेह बड़ा ही प्रगाढ़ हो जाता है । ग्रहचार्य द्वारा जब वह उदयन का शोक सुनती है, उस समय उसे महती क्लान्ति का अनुभव होता है । जब उसकी मोहमुक्ति का समाचार सुनती है तो कहती है—'विष्ट्या ध्रियते । मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् ।'

पति-स्नेह—अपने पति के लिये उसके हृदय में अपार एवं साद्वत्त प्रेम है । अपने पति में किसी प्रकार का दोष देखना या सुनना नहीं चाहती । स्वयं कष्ट उठा कर उसे मुक्ती देखने के लिए यत्नशील रहती है । घेटी एक बार जब उदयन को पद्मावती की अपेक्षा वासवदत्ता पर अधिक प्रेम प्रकट करने के कारण अदाशिव्य कह देती है तो वह तुरन्त घेटी को रोकते हुए कहती है—'हस्ता । मा मेवम् । सदाशिव्य एवायं पुत्रः य इदानीमप्यपि अज्ञातवासोऽप्यत्र गुणान् स्मरति ।'

नारी-मुक्तमईर्ष्या का प्रभाव—अपनी सीत वासवदत्ता के प्रति उदयन का प्रेम देखकर वह न दुःखी होती है न ईर्ष्या करती है । प्रत्युत वासवदत्ता के प्रति आदर का भाव रखते हुए जब भी उसका नाम लेती है तो उसके नाम से पूर्व 'आर्या' शब्द का व्यवहार अवश्य करती है । इतना ही नहीं, चित्रफलक में प्रवर्तिका के समान वासवदत्ता का रूप देखकर वह वासवदत्ता के जीवित होने के विचार से गद्गद हो जाती है । फिर वासवदत्ता के प्रकट होने पर वह अपनी ईर्ष्या-शून्यता एवं सहज स्नेह का परिचय देते हुए उसके पैरों पर गिर कर क्षमा मांगते हुए कहती है—'आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणातिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।'

उसके विषय में विद्वपक कहता है—'तत्रभवती पद्मावती लक्ष्मी, वर्रागोपा, अकोपता, अनहंकारा, मधुरवाक्, सदाक्षिण्या ।' ये हैं उसके गुण ।

(४) योगन्धरायण

यह वत्सराज उदयन का मंत्री श्रीर राजनीति में चाणक्य के तुल्य दूरदर्शी हैं । यह नाटक का एक प्रकार से केन्द्र-बिन्दु है ।

स्वामि-भक्ति—यह एक पूर्ण स्वामिभक्त मंत्री है; [अपने स्वामी तथा राज्य के हित के लिए सर्वस्व त्याग सकता है । स्वामी के लिए यह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनेक प्रकार की भापत्तियों को सहन करता है । स्वयं उदयन ने उसकी प्रशंसा की है—

'मिष्योन्मादंश्च पुद्गंश्च शास्त्रदृष्टंश्च मन्त्रितः ।

भवद्यत्नैः खलु ययं मग्जमानाः समुद्धृताः ॥'

चातुर्य—योगन्धरायण एक प्रखर प्रज्ञावान् तथा कार्य-कुशल व्यक्ति है । जब पद्मावती दान की घोषणा करती है, वह तुरन्त प्रणीत बनकर उपस्थित हो जाता है और इसी के बल पर वासवदत्ता पद्मावती के पास गुप्त रूप में रहती है । उसी की प्रज्ञा का परिणाम है, जो उदयन का राज्य उन्हें पुनः प्राप्त हो जाता है ।

गुणप्राहिता—उसमें दूसरे के गुणों की पहचान करने की अद्भुत क्षमता है । हमेशा के किये गये परिश्रम को सुनकर वह उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करता है— 'ग्रही महद्मारमुद्धतिं हमश्वान् । कुतः'

‘सविधमो ह्ययं भारः प्रसवतस्तस्य तु श्रमः ।

तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥’ (अंक १ श्लोक १५)
यह है उसकी गुणग्राहकता ।

समस्त नाटक में यद्यपि योगन्धरायण के दर्शन केवल दो ही स्थलों पर होते हैं तथापि हम उसे एक प्रकार से नाटक का वह सूत्र कह सकते हैं जिसमें से पूरे नाटक की एक-एक घटना की व्याख्या निकलती है ।

(५) वसन्तक

वसन्तक नाटक का विदूषक है । इस नाटक में विदूषक मास के अन्य नाटकों के विदूषकों की अपेक्षा अधिक गम्भीर है । केवल दो ही अंकों में वह दिखाई पड़ता है ।

उसकी सजगता—वसन्तक केवल हास्य-रस-साधन अथवा भोजन-भट्ट ही नहीं है, वरन् वह सर्वदा राजा के साथ रहकर उसके प्रत्येक कार्य में सतर्कता-पूर्ण प्रहरी का-सा साहाय्य देने वाला पात्र है । वह अपनी सजगता के कारण राजा को सभी विषम परिस्थितियों से बचा लेता है और सन्मित्र की भाँति उसे अपने कर्त्तव्य कर्मों में प्रेरित करता रहता है । जब राजा वासवदत्ता की याद हो आने से रोने लगता है और वहाँ पद्मावती एकाएक आ जाती है, उस समय वह बड़ी सावधानी से पद्मावती को राजा की आँखों में आँसू आने का कारण बताते हुए कहता है—‘भवति ! यातनीतेन काशकुसुमरेणुना अक्षिनिपतितेन साधुपातं खलु अन्नभवतो मुखम् । तद् गृह्णतु भवतो इव मुखोदकम् ।’ फिर वह राजा को स्मरण दिलाकर कि ‘आपको मगधेश्वर के साथ स्वागत-समारोह में चलना है, शीघ्र प्रस्थान कीजिये’ वहाँ से हटा देता है । इतना ही नहीं, वह अधिक भोजन के प्रति भी सावधान रहता है कि कहीं अजीर्ण न हो जाय । चेटी के पूछने पर भोजन न करने का कारण बताते हुए कहता है—‘अधन्यस्य यम कोकिलानाम् अक्षपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संयुक्तः ।’

पूर्ण स्वामि-भक्ति—वह बड़ा ही स्वामिभक्त सेवक है । मानव के सभी सौजन्य, सहानुभूति आदि गुण उसमें पूर्णरूपेण विद्यमान हैं । वह राजा के दुःख में दुःखी तथा सुख के अवसर पर स्वयं को भी सुखी समझता है । इसलिए राजा भी उस पर इतना अधिक विश्वास करता है कि उससे अपनी सब बातें

बता देता है। यहाँ तक कि अपनी दोनों पत्नियों के सम्बन्ध में भी अपने विचारों को व्यक्त कर देता है।

१२—स्वप्नवासवदत्तम् का नामकरण

इस नाटक के नामकरण में कवि की मूढमान्वेपिणी प्रज्ञा का प्रदर्शन है। इसमें स्वप्न का दृश्य अत्यन्त ही मानपूर्ण और नाटकीय महत्त्व से भरा हुआ है। यह स्वप्न पाँचवें अंक में घटित होता है। राजा वासवदत्ता के प्रथम प्रेम में विह्वल होकर उसके रूप-सौन्दर्य के चिन्तन में मग्न है। उसे नीद आ जाती है। वह स्वप्न देखने लगता है। स्वप्न में उसे अपनी प्रियतमा का साक्षात्कार होता है। वासवदत्ता उसके प्रश्नों का उत्तर देती है। इस घटना के पश्चात् राजा को अपनी प्रेयसी के जीवित रहने और कालान्तर में प्राप्त होने की दृढ़ भाशा बँध जाती है। स्वप्नोद्भूत यह भाशा ही पति-पत्नी के निश्चित साहचर्य का मार्ग प्रशस्त करती है, जो नाटक का अन्त है। कवि इस स्वप्नदृश्य से इतना प्रभावित या प्रसन्न है कि इसी के नाम पर नाटक का नाम रख देता है, जो अत्यन्त उपयुक्त है।

१३—स्वप्नवासवदत्तम् का मूल्याङ्कन

‘भाग-नाटक-श्वश्रेष्ठपिच्छैः शिप्ते परीक्षितुम्।

स्वप्नवासवदत्तास्य बाहूकीभून् पायकः॥ राजशेखर (१६वीं शताब्दी)

समालोचकों ने मास के नाटकों की परीक्षा के लिए उन्हें समालोचना के अग्नि में तपाया, परन्तु ‘स्वप्नवासवदत्त’ नामक नाटक उस अग्नि में न जला अपितु परीक्षणोपरान्त श्रेष्ठ सिद्ध हुआ।

‘स्वप्नवासवदत्त’ महाकवि मास की नाट्यकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। छह अंकों का सर्वगुणसम्पन्न यह अकेला नाटक ही मास की प्रौढ़ प्रतिभा का पूर्ण परिचय दे देता है। सब बात तो यह है कि रगमंच की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्ता, सत्कृत का सर्वश्रेष्ठ सफल नाटक है।

इस नाटक की कथावस्तु में उदयन के नायक होते हुए भी कथावस्तु के विकास में मंत्री योगन्धरायण विशेष रूप में प्रोत्-प्रोत् है। ‘अवन्तिभूपारी महाराज्ञी वासवदत्ता अग्नि-दाह में मरम हो गई साथ ही मंत्री योगन्धरायण

भी जल गया' इस प्रवाद के प्रचारित हो जाने के उपरान्त मंत्री की योजना के अनुसार वत्सराज उदयन का मगधराजकुमारी पद्मावती के साथ विवाह हो जाता है और उसके भाई दशक की सहायता से उदयन अपने खोए हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। बस, इतने से कथानक को कवि ने छह अंकों में विभाजित तथा नाटक के प्रधान गुणों—घटना की एकता, घटना की सार्थकता, घटनाओं का घात-प्रतिघात तथा गति, कवित्व, चरित्र-चित्रण और स्वभाविकता—से मण्डित करके अपनी अलौकिक प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है। डा० सुक्यांकर का परीक्षण बड़ा ही यथार्थ है—'नाटककार का मुख्य उद्देश्य है, एक ओर तो उस आदर्श रानी के पूर्ण आत्मत्याग को रूपाङ्कित करना जो अपने पति के कल्याणार्थ आनन्दमय सन्तोष के साथ आत्म-बलिदान करती है, दूसरी ओर उसके पति का चित्र खींचना जो हृदय से तो अपने प्रेम (पत्नी-प्रेम) के प्रति निष्ठावान् है परन्तु अनचाहे राज्य-जीवन की आवश्यक मांगों के प्रति आत्मार्पण कर देता है। कहानी का प्रमुख विषय है—अटल, दृढ़ और अमर प्रेम की विजय, जिसके लिए किसी भी प्रकार का महान् बलिदान साधारण ही है।

नाटक में चरित्रों का उत्तरोत्तर विकास-क्रम बड़ा ही रुचिकर एवं समीचीन है। पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ी सफाई से किया गया है। नायक 'उदयन' का चरित्र पत्नी-व्रत का पवित्र आदर्श है। वासवदत्ता निःस्वार्थ पतिपरायणा तथा पति-हित के लिए सर्वस्व त्याग देने वाली आदर्श पत्नी है। उसी प्रकार उच्च विचारों वाली राजकुमारी पद्मावती भी नारी-जगत् का शृंगार है।

मास के नाटकों में रसाभिर्व्यक्ति बड़े ही शिष्ट एवं परिष्कृत ढंग से हुई है। स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायोगन्धरायण, अविमारक एवं चारुदत्ता यदि नाटकों में मुख्यतया शृंगार तथा करुण रस का परिपाक विशेष रूप से हुआ है। करुण रस का प्रवाह देखने के लिए प्रतिमा-नाटक पर्याप्त है। दूतघटोत्कच, दूतवाक्य तथा ऊरुमंग में वीर रस का पूर्ण परिपाक देखने को मिलता है। विभिन्न नाटकों में विदूषक की उक्तियाँ सहज ही हास्य रस का स्रोत बहाती हैं। उनके नाटकों का हास्य पूर्ण रूप से परिष्कृत एवं संयमित है। मास

ने अपने तेरह नाटकों में २४ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है और श्लोकों की कुल संख्या १०६० है, जो भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य के बराबर है। समस्त नाटकों में ४३७ अनुष्टुप्, १७६ वसन्ततिलका, ६२ शार्दूलविक्रीडित, ६१ उपजाति तथा ७२ मालिनी छन्दों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने वैश्वदेवी सुवदना, दण्डक, चैतालीय आदि अप्रचलित छन्दों का प्रयोग भी अपनी कृतियों में किया है। भास की लोकोक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं—

‘कालव्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रार्पणितरिव गच्छति भाग्यपणितः’,
‘न हि सिद्धवाग्दान्मुत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि’, ‘स्त्रीत्वभावस्तु
कातरः’, ‘प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते’ ।

‘भास के नाटकों की संख्या तथा उनके वर्ण्य विषय की विविधता से स्पष्ट मालूम होता है कि उनकी प्रतिभा मौलिक थी तथा उनका मस्तिष्क अत्यन्त उर्वर था।’—जैकोबी का यह कथन बहुत ही ग्याय-संगत एवं समीचीन है। यद्यपि व्याकरण तथा साहित्य-शास्त्र के अनुसार भास के नाटकों में कतिपय त्रुटियाँ पायी जाती हैं तथापि वे संस्कृत नाटककारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी शैली बड़ी ही सहज है। मधुर शब्दावली, भावों का सीधा प्रवाह तथा रसों का पूर्ण परिपाक उनकी अपनी विशेषता है। कही भी कृत्रिमता का आभास नहीं। कालिदास, भवभूति आदि नाटककारों की भाँति उनमें कल्पना की उड़ान नहीं है, प्रत्युत उनके नाटकों में मानव-जीवन की उदात्त विवेचना सहज ही प्राप्त होती है। उच्च से उच्च भावों को सरल से सरल भाषा में व्यक्त कर देना उनकी प्रमुख विशेषता है—

गुणानां वा विनाशानां सत्कारणानां च नित्यदाः ।

कर्तारः सुतमा लोके विनाशतारस्तु दुर्लभाः ॥ (स्वप्न० ४, ६)

निम्न विशेषतायें भास की कौटिल्य-कौमुदी को सर्वदा धनुष्मन् रखने में पूर्ण शक्त हैं—

१. अनेक तथा विविध-प्रकार के नाटकों की रचना ।

२. प्राचीन तथा पौराणिक कथानक को धार्मिक कल्पना से अनुरञ्जित करके मौलिक रूप देना ।

३. मानव-जीवन की उदात्त विवेचना ।
४. प्रकृति का नैसर्गिक चित्रण ।
५. नाटकों में पुरुष पात्रों की बहुलता है ।
६. पाठक के अन्तःपटल पर भावों का स्पष्ट प्रभाव डालने की पूर्ण क्षमता ।
७. वैयक्तिक स्वभाव तथा गुणों का विशिष्ट निरूपण ।
८. पवित्र तथा उच्चादर्शों की स्थापना ।
९. अमिनेय नाटकों की रचना ।
१०. संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम एकांकी तथा दुःखान्त नाटक लिखना ।

भास की नाट्यकला

संस्कृत नाट्य साहित्य में किसी भी अन्य नाटककार का इतने विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश नहीं है जितना भास का । उनके द्वारा पुराण-इतिहास, महाभारत, आख्यायिका ग्रन्थ और लोक में प्रचलित कथानकों का अपने नाटकों में उपयोग किया गया है । अब तक के प्राप्त साहित्य में वे संस्कृत के सर्वप्रथम नाटककार कहलाने के अधिकारी हैं । उनके नाटकों में मौलिकता तथा कल्पनावैचित्र्य विशेष रूप से पाया जाता है । भरतमुनि प्रतिपादित नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से पालन न होते हुए भी उनके नाटक अत्यन्त रोचक हैं तथा रंगमंच की दृष्टि के विशेष सफल हुए हैं । भास के नाटकों में ये विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं—

१—भाषा की सरलता ।

२—अकृत्रिम शैली ।

३—वर्णनों में यथार्थता ।

४—नाटक के पात्रों के चरित्र-चित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य और नाटकीय गुणप्रवाह ।

५—सजीवता एवं शक्तिमत्ता ।

रामायण के आधार पर रचित प्रतिमा नाटक में भास की मौलिकता और कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है । महाभारत के आधार पर लिखित नाटक उनकी कल्पना-शक्ति तथा रमणीयता के चोख हैं । इन नाटकों में और

रस की अभिव्यक्ति में भास को अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। इनके नाटकों में नव रसों का अस्तित्व लक्षित होता है। वीर, शृंगार तथा करुण ये नाटकों में भंगी हैं। विद्रूपक द्वारा हास्यरस की स्थिति बनी रहती है। अन्य रसों का भी यथावसर समावेश रहता है। जयदेव के अनुसार वे कविता-कामिनी के हास हैं। भले ही हास्यरस भंगी न हो पर उसका वर्णन अत्यन्त उदात्त है। उदाहरणार्थ-अतिजायोगन्धरायण का विद्रूपक उद्धत हास्य का प्रदर्शन करता है तो स्वप्नवासवदत्तम् के विद्रूपक में सुकुमार हास्य के दर्शन होते हैं। इस प्रकार इनके नाटकों में हास्य एवं व्यंग्य प्रचुर मात्रा में मिलता है।

भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से अत्यन्त सफल हैं। संस्कृत के अन्य नाटक भले ही अभिनय के लिए पूर्णतः उपयुक्त नहीं पर भास की ऐसी स्थिति नहीं है। उनके नाटक सभी दृष्टियों से अभिनेय हैं। कथानक, पात्र, भाषा, दृष्टी, देशवास, संवाद आदि सभी तत्त्व इसकी अभिनेयता के अनुकूल हैं। बाद के नाटकों में पाई जाने वाली कृत्रिमता उनके नाटकों में नहीं है। सम्बन्ध-तन्त्रे समास तथा अलंकारों की भरमार नहीं है। भास ने ही संस्कृत में सर्वप्रथम एकांकी नाटक लिखा है। उनके एकांकी ये हैं :—

दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, ऊरुमग, कर्णमार तथा मध्यमव्यायोग।

भास पात्रों के चरित्र-चित्रण में अत्यन्त कुशल है। उन्होंने सर्वत्र उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया है। पात्रों का चरित्र उज्ज्वल प्रदर्शित करने के लिए कथानक में परिवर्तन करने में भी वे संकोच नहीं करते। नायक-नायिका, धृमात्मा, विद्रूपक, ऋचुकी, गणिषा आदि सभी का उन्नत चरित्र दिखाया गया है। उनके प्रत्येक पात्र का अपना व्यक्तित्व है। इन नाटकों में पुरुष-पात्रों की प्रभिकता है।

पात्रों के त्वारों में भी भास की कुशलता दिखाई पड़ती है। संवाद प्रायः सधु हैं। सरस तथा प्रसन्न भाषा का प्रयोग किया गया है। नाटक देखने वाले परिपुष्ट और आरिपुष्ट दोनों प्रकार के होते हैं। अतः नाटककार की ऐसी भाषा लिखनी चाहिये जो सरस तथा आश्चर्यजनक में समर्थ हो। इस

दृष्टि से भास सफल हैं।^१ भास कही-कही नाटकीय पात्रों का संवाद श्लोक में ही कराते हैं। एक ही श्लोक में एक पाद या उपपाद को एक पात्र बोलता है और दूसरे को दूसरा। इस प्रकार संवाद एक ही श्लोक में पूर्ण हो जाता है। इस सम्बन्ध में प्रतिमा नाटक, अंक तृतीय का निम्न प्रथम श्लोक द्रष्टव्य है—

भरतः—पितुर्मे को व्याधिः ।

सूतः—हृदयपरितापः खलु महान् ।

भरतः—किमाहुस्तं वंशाः ।

सूतः—न खलु भियजस्तत्र निपुणाः ।

भरतः—किमाहार भुङ्क्ते शयनमपि,

सूतः—भूमौ निरशनः ।

भरतः—किमाशा स्याद्,

सूतः—दंवं

भरतः—स्फुरति हृदयं वाहय रयम् ॥१॥

उनके नाटकों में संवाद तथा उत्तर प्रत्युत्तर अत्यन्त संक्षिप्त एवं प्रभावोत्पादक हैं। उनके वर्णन बड़े सजीव एवं यथार्थ हैं। जैसे सन्ध्या, रात्रि, तपोवन मध्याह्न आदि के वर्णन सूक्ष्म अन्वीक्षण के परिणाम प्रतीत होते हैं। इन वर्णनों में यथार्थता, सजीवता एवं शक्तिमत्ता के दर्शन होते हैं। उनका प्रयोग कथानक में प्रसंगोपात्त होने पर ही किया है। पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा आकार-वृद्धि के लिए नहीं।

भास के नाटकों में अलंकार-विधान भी दर्शनीय है। उपमा, उत्प्रेक्षा अर्थान्तरण्यास, स्वभावोक्ति, परिसंख्या आदि अलंकारों का अत्यन्त सफल प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपने कई नाटकों में प्रथम अंक के प्रथम श्लोक में ही मुद्रासंस्कार का प्रयोग किया है अर्थात् नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम का भी मंगलाचरण में उल्लेख कर दिया है। जैसे 'स्वप्नवासवदत्तम्' का प्रारम्भिक श्लोक हैः—

१—महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने भास की रचना की इस प्रकार प्रशंसा की है :—

'The sentences are evrywhere replete with a wealth of ideas beautifully expressed, which cultured minds appreciate. Critical study. P. 27

उदयनवेन्दुसवर्णावातवदस्तावती वलस्य त्वाम् ।

पद्मावतीर्णपूर्णा वसन्तकस्तो भुजो पाताम् ॥

इस श्लोक में वासवदत्ता, उदयन, वसन्तक तथा पद्मावती आदि प्रमुख पात्रों की सूचना अत्यन्त निपुणता से दे दी गई है ।

इन नाटकों में पताकास्थान की योजना द्रष्टव्य है । इसके द्वारा आश्चर्य-भावना उत्तेजित होती है । जैसे 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण' में महासेन अपनी रानी के साथ परामर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के उपयुक्त कौन वर है ? उसी समय सहसा कंचुकी प्रविष्ट होकर कहता है 'वत्सराज' अर्थात् उदयन । वह कहना चाहता था कि वत्सराज बन्दी बनाकर लाया गया है । "नाटक की सफलता के लिए उनमें ६ गुणों की सत्ता आवश्यक होती है—(१) घटना की एकता, (२) घटना की सार्थकता (३) घटनाओं का घात-प्रतिघात तथा गति, (४) चरित्र चित्रण में व्यक्तिवचित्र, (५) स्वामाधिकता, (६) कवित्व । ये सभी गुण मास के नाटकों में उपलब्ध होते हैं । प्रत्येक नाटक की कथावस्तु को इस प्रकार प्रभावोत्पादक घटनाओं में विकसित किया गया है कि उनमें स्वामाधिकता और गतिशीलता के साथ ही गाय रमनरिपाक भी समुचित रूप से होता गया है । ऊपर दिये गये तर्क नाम को एक कुशल और सफल नाटककार निश्चय करते हैं ।

पात्रों का चरित्र-चित्रण-वैशिष्ट्य

नाम के द्वारा सभी प्रकार के पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त कुशलता से किया गया है । पीरोद्धत, पीरोक्षत, पीरसतिन, देवी, घागुरी, राम मनी प्रकार के पात्र इन नाटकों में मिलते हैं । बाण के अनुसार नाग के नाटकों में बट्टन में पात्रों का समावेश हुआ है । पर विमोचना यह है कि कथानक में एक भी पात्र अनावश्यक (यासू) नहीं माना पड़ता । उनके पात्रों का वर्णन अत्यन्त विस्तृत है । सभी वर्ग के पात्र इसमें समाविष्ट हैं । अनुशशी तरुपात्र श्रेष्ठ में पाये हैं । मानवों में भी सभी वर्ग के पात्र हैं । उनकी यह एक बड़ी विशेषता है कि शिव वर्ग के पात्र की मूर्ति भी है, उन्हीं अनुशशी वर्गों

का सफलतापूर्वक सन्निवेश किया है। उदाहरणार्थ देव के पात्र में देवत्व का पूर्णतया समावेश किया है। वैसे ही दानव वर्ग के पात्र में दानव के अनुरूप सभी गुणदोषों को दिखाया है। पात्रों के प्रशिष्ट व्यवहार को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि पाठकों की सहानुभूति उस पर हो। भास पात्रों को उज्ज्वल दिखाने के उद्देश्य से लोक-प्रसिद्ध कथानकों में भी परिवर्तन करने से नहीं हिचके हैं। उदाहरणार्थ ब्राह्मण का शाप सत्य करने के लिए कैंकेयी ने राम के लिए वनवास का वर महाराज दशरथ से माँगा था।

नाटक के अनुकूल ही उन्होंने नायक का चयन किया है। प्रत्येक पात्र का सजीव भ्रंजन हुआ है। कृत्रिमता लेशमात्र भी नहीं है। कथोपकथन में उनकी कुशलता दृष्टिगोचर होती है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक मनोगत भाव को सरल भाषा में व्यक्त किया गया है। परिस्थिति के अनुकूल पात्र की भावदशा का ज्ञान भास को भली-भाँति है। दर्शक को सर्वत्र परिचित व्यक्ति तथा वातावरण दिखाई पड़ेगा। उनके पात्र सामान्य घरातल पर अवस्थित हैं। बुरे पात्रों में भी यथासमय आदर्श गुणों का ही सन्निवेश किया गया है। भरत आदर्श भाई हैं, वासवदत्ता तथा पद्मावती आदर्श सख्तियाँ हैं। सुमंत्र योगन्धरायण आदर्श भ्राता हैं। उदयन तथा चारुदत्त आदर्श प्रेमी हैं। सर्वत्र आदर्श ही आदर्श है। भरती उत्कृष्टता एवं विशदता के कारण ये सदैव चिरस्मरणीय रहेंगे।

१४---भास की शैली

भास के नाटकों की शैली का भरना एक विशेष महत्व है। इनकी शैली में (१) व्यञ्जकता तथा प्रभावोत्पादकता—का मणिकाचन समुयोग है। गंभीर तथा रसपेशल भावों को छोटे-छोटे वाक्यों में अभिव्यक्त करने की उनकी अद्भुत क्षमता है। महाकाव्य में लम्बे समासयुक्त दुल्ह पशों की योजना भले ही महत्वपूर्ण हो पर नाटक में गरल और छोटे वाक्य ही समादृत होने हैं।

(२) गुण व रीति—भास की शैली में प्रमाद, भावुर्य और भोत्र तीनों गुण पाये जाते हैं। उनके नाटक ममास-बाहुल्य-विलष्टता, अस्वामाविकता आदि दोषों में सर्वथा मुक्त हैं। भाषा में सरलता, सरसता, सुबोधता तथा स्वाभाविकता

भौर प्रवाहप्रयता के दर्शन होते हैं । भास अपने भावों की अभिव्यक्ति में इतने कुशल हैं कि कहीं भी विवक्षित भाव दब नहीं सकता । प्रवसर के अनुकूल वे अपनी शैली में ऐसा मोड़ ला देते हैं जो प्रभावात्मकता तथा व्यञ्जकता की वृद्धि में सहायक हो । अभीष्ट अर्थ का थोड़े शब्दों एवं सरल भाषा में बोध कराने की उनमें प्रदम्भत समता है ।

(३) सरलता—भास की यह एक बड़ी विशेषता है कि वे प्रलंकार रहित सरल भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं । इसी गुण के कारण दर्शक का हृदय उनके नाटकों की ओर बरबस खिचता है । उनके कर्थापकरण में उनकी शैली की विशेषता दृष्टिगोचर होती है । इस प्रसंग में प्रतिज्ञायौगन्धरायण में यौगन्धरायण तथा भरतरोहक के सवादों का उदाहरण द्रष्टव्य है । वार्तालाप के मध्य कभी-कभी ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ आ जाती हैं जिससे नाटक में रसनिवृद्धि हो जाती है । उदाहरणार्थ अभियेक नाटक में रावण द्वारा सीता से पूछे जाने पर कि 'इन्द्रजित ने राम और लक्ष्मण को मार डाला । अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा ।' उसी समय एक राक्षस आकर कहता है 'राम' । यद्यपि यह यह कहना चाहता था कि 'राम' ने इन्द्रजित् को मार डाला ।' इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं । ऐसी प्राकस्मिक उक्तियाँ भास की अपनी विशेषता है ।

(४) वर्णन-कुशलता—भास द्वारा अपने वर्ण्यविषय बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किये जाते हैं । विस्तृत विवरण उन्हें दबिकर नहीं है । आर्यदत्त नाटक में दक्षिणता का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एवं वारीक है । यदि वे किसी दृश्य का वर्णन करने लगते हैं तो उनका चित्र वर्णनों के माध्याम से चित्रित होता है जिससे पाठक दर्शक मूर्धन्य और तल्लीन हो जाते हैं । उदाहरणार्थ प्रतिमा नाटक में राज्याभियेक का वर्णन, क्रुद्ध लक्ष्मण का वचन, भरत का कैंकेयी को घिरकारना आदि का गूढ़ एवं स्वाभाविक चित्र वर्णित गया है । स्वप्नवासव-दासम् की यह पंक्ति 'अस्मिन्निर्दिष्टे अस्मिन्निर्दिष्टे' अर्थात् लोगों का भाव्यचक्र पहिले के घरों के समान क्रमानुसार घूमता चलता है । चित्रता स्वाभाविक

एवं हृदयग्राही है । इसी प्रकार सन्ध्या^१-वर्णन, मध्य^२ रात्रिवर्णन, कृष्ण^३ रात्रि-वर्णन, मध्याह्नवर्णन, वनवर्णन, तारुण्य-वर्णन आदि में मास की सफलता दर्शनीय है ।

(५) भावों का व्यक्तिकरण—मास के नाटक भारतीय भावों से ओत-प्रोत हैं । इनमें पितृ^४ भक्ति, भ्रातृप्रेम, पातिव्रत्य, क्षमाशीलता, त्याग आदि का आदर्श प्रचुर मात्रा में पाया जाता । उदाहरण—

अनुचरति शशांकं राहुदोषेऽपि तारा

पतति च वनवृक्षे याति भूमिं सता च ।

त्यजति न च करेणुः पंकलग्नं गजेन्द्रं

व्रजतु चरतु धर्मं मर्तुं नाया हि नार्यः ॥ प्रतिमा० ॥ १.२५ ॥

कृतः श्रोथो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् । प्रतिमा० ६.६ ॥

अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम् । स्वप्न० अंक ३ ॥

(१) पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता

सन्ध्यादग्ना भाति च पश्चिमाशा ।

द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं

यात्यर्थनारीश्वररूपशोभाम् ॥ अवि० २ । १२

तथा

लगा वासोपेता सतिलमवगाढो मुनिजनः

प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।

परिभ्रष्टो दूराद्बहिरपि च संसिप्तकिरणो

रयं ध्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ स्वप्न० १ । १६ ॥

(२) तिमिरमिव वहन्ति मार्गं नद्यः

पुत्तिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।

समसि वशादिशो निमग्नरूपाः

प्लवतरणीय इवायमग्न्यकारः ॥ अवि० ३ ॥ ४ ॥

(३) लिम्पतीव तमोऽङ्गानि ययंतोऽंजनं नभः ।

असत्पुरुषसेवेव दृष्टिनिष्कसता गता ॥ चारुदत्त ॥ १।१६ ॥

(४) स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्मयि वचः कस्तत्र भो विस्मयः ॥ प्रतिमा ॥ १।५ ॥

(६) सरलता और रम्यता—मास के नाटक सरलता और रम्यता के कारण अत्यन्त लोकप्रिय बन गये हैं। स्वप्नवासवदत्तम् का यह श्लोक देखिये—

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।

कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥४६॥

(७) भाषा—इनकी भाषा प्रसादगुणसंयुक्त ।^१ रसपेक्षलता, भावों की सम्पक् भूमिव्यक्ति, मनोरंजकता, गंभीरता, औदात्य, तथा माधुर्य इनकी शैली के गुण हैं। अवस्था तथा पात्र के अनुसार उग्रता एवं संयम का प्रयोग इनके नाटकों की विशेषता है। हास्य की सम्पक् योजना भी इनकी शैली की सफलता का कारण है। एक ओर तो इस प्रकार की सरल भाषा का प्रयोग है—

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।

राम इत्यक्षरैररुपैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥ प्रतिमा० ५-१४ ॥

दूसरी ओर समयानुकूल भाषा क्लिष्ट एवं कठोर वर्णों में युक्त है। जटायु के घातप्रतिघात से क्रुद्ध होकर रावण कहता है—

मदभुजाकृष्टनिस्त्रिशकृतपक्षक्षतध्वतैः ।

रधिरैराद्रिं गात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ॥ प्रतिमा० ॥५-२२

मास का व्यंग्यप्रयोग असाधारण एवं भाषिक होता है। कँकेयी के ऊार किया गया व्यंग्य कितना कठोर है—

घनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।

घने व्याघ्री च कँकेयी त्वया किं न कृतं त्रयम् ॥ प्रतिमा० ॥२-८॥

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने उनकी वाच्यमण्डना की मुक्तकण्ठ में प्रशंसा की है। उनके अनुसार मास की तुलना अन्य किसी कवि से नहीं की जा सकती। पात्रों के परिचित्रण में वे इतने कुशल हैं कि वास्तविकता का मान तक नहीं होता। वे भारतीयता के प्राचार्य हैं। उनकी भाषा में स्थानाधिक प्रवाह है, गरल, उबकान्द गति है तथा वह भाव, रस, देन-काल एव पात्रों की अनुगामी है।

(८) स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता—भास की शैली में कृत्रिमता का अभाव है। उसमें स्वाभाविकता है। उनकी दृष्टि में समासरहित भाषा गद्य-साहित्य में उच्च आसन पा सकती है। उन पर रामायण का प्रभाव लक्षित होता है। उन्होंने अलंकारों पर विशेष बल नहीं दिया है। वे रसाभिध्वक्ति तथा भावव्यंजना को ही विशेष महत्व प्रदान करते हैं। उनकी शैली की प्रशंसा महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने की है। वे इन नाटकों की शैली को अद्वितीय समझते हैं।^१ उन्होंने उद्दाम भावनाओं का अत्यन्त सशक्त वर्णन किया है। आपत्तियों का सजीव चित्र खींचने में वे बड़े कुशल हैं। नाटकों में अलंकारों का प्रयोग अभिनेयता में बाधक होता है अतः उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

भास को मानवीय मनोवृत्तियों का पूर्ण ज्ञान था। उनका मनोवैज्ञानिक विवेचन उच्चकोटि का है। स्वप्नवासवदत्तम् के चतुर्थ अंक के पष्ठ श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे मनोभावों के सूक्ष्मे पारखी थे।

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः

स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।

यात्रा त्वेषा यद्विमुच्येह बाष्प

प्राप्तानुष्ठा याति बुद्धिः प्रसादम् ॥

और भी प्रथम अंक का सप्तम श्लोक :—

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।

(९) व्याकरणविषयक ज्ञान एवं पाण्डित्य—भास के व्याकरण विषय के ज्ञान एवं शास्त्रीय विद्वत्ता का परिचय यथास्थान प्राप्त होता है। निम्नलिखित श्लोक उनके व्याकरण संबंधी ज्ञान का द्योतक है :—

घनः स्पृष्टो घोरः ममदवूषभस्तिग्धमधुरः

कलः कंठे वक्षस्यनुपहतसंचाररभसः ।

1. The superior excellence of sentences, which are not subject to the restriction of verification, is everywhere to be observed in these Rupakas. It really surpasses in grandeur, the style of other works is incomparable.

यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया

चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ॥ प्रतिमा० ४-७॥

उनकी शास्त्रीय विद्वत्ता इस श्लोक में द्रष्टव्य है । जहाँ उन्होंने रावण के मुख से कहलवाया है :—

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा

खरवधकृतव्रं राघवं बञ्चयित्वा ।

स्वरूपदपरिहीणां हव्यधाराभिवाहं

जनकनृपसुतां तां हतुकामः प्रयामि ॥ प्रतिमा० ॥५-७॥

माययापहृते रामे सीतामेकां तपोवनान् ।

हरामि ददतीं बालाममंश्रोक्तामिवाहुतिम् ॥ प्रतिमा० ॥५-१६॥

ये दो श्लोक महर्षि पतञ्जलि द्वारा महाभाग्य में उद्धृत 'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या-प्रयुक्तो न तमयमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥' के आशय को लेकर रावण के मुख से कहलवाया गया है ।

अपने भावों की प्रति संक्षेप में किन्तु प्रभावोत्पादक रूप में रखने की भास की अद्भुत क्षमता निम्नलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है:—

जहाँ राम के प्रति भरत का सारा भाव व्यक्त कर दिया गया है ।

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियताहसः ।

भक्षितमानाग्नः कश्चिन् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ प्रतिमा० ॥४-५॥

नाटकीय घटनाचक्र का स्थानानुरूप परिवर्तन करना भास की कुशलता का परिचायक है जो मुमय की इस उक्ति में देखी जा सकती है :—

सुग्रीवो भक्षितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन वासिना ।

हृतदारो वसन् शले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ॥ प्रतिमा० ॥६-१०॥

भास की अमाधारण प्रतिमा का परिचय उनके नाटकों से प्राप्त होता है । उन्होंने तेरह नाटकों का प्रणयक किया जिनमें कुल मिलाकर १००२ श्लोक हैं । इनमें बिभिन्न २४ छन्दों के प्रयोग पाये जाते हैं । कुछ कम प्रचलित छन्दों का भी प्रयोग दिया गया है, जैसे वैश्वदेवी, सुवदना, दंडक, वंशलीय आदि ।

वृत्तरचना में उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता दिखाई है तथा सर्वथा नये छन्दों का भी प्रयोग किया है ।

उनकी लोकोक्तियाँ अत्यन्त मनोहर एवं मार्मिक हैं । स्वप्नवासवदत्तम् में प्रयुक्त ये लोकोक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं ।

‘अनतिक्रमणीयो हि विधिः ।’ ‘आगमप्रधानानि सुतभर्ष्यवस्थानानि महापुरुष-
हृदयानि भवन्ति ।’ ‘न हि सिद्धवाक्पान्पुत्रकम् गच्छति विधिः सुपरोक्षितानि ।’
‘स्त्रीस्वभावस्तु कातरः’ आदि ।

(१०) प्रकृतिचित्रण—भास का वाह्य प्रकृति और अन्तःप्रकृति दोनों का चित्रण अत्यन्त हृदयग्राही है । प्राकृतिक दृश्यों का उनका सूक्ष्म पर्यवेक्षण है । वे उनका ऐसा सांगोपांग चित्र खींचते हैं कि पाठक उनमें तल्लीन हो जाता है । उनके वर्णन बड़े मधुरार्थ, रोचक एवं व्यापक हैं । प्रकृति-वर्णन में वे काव्य-कारों की भाँति स्वतंत्र नहीं हैं । नाटककार के नाते उनकी परिधि सीमित है । नाटकोपयोगी अंश को ही वे स्यान देते हैं । प्रसंगक्रम से प्राप्त दृश्यों का सूक्ष्म तथा मनोहर वर्णन दर्शक तथा पाठक की चित्तवृत्ति को रसमग्न कर देता है । इस वर्णन में कहीं-कहीं अलंकार-योजना सौन्दर्य तथा रमणीयता में चार चाँद लगा देती है ।

उदाहरणार्थ स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक के निम्नलिखित अन्तिम श्लोक में वनप्रान्त की सन्ध्या का वर्णन अवलोकनीय है :—

लगा यासोपेताः सलिलमयगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिश्रष्टो दूराप्रविरपि च संश्लिप्तकिरणो
रसं व्यापयत्पासी प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१-१६॥

अभिनेक नाटक का मूल्यांश वर्णन देखने ही अनन्त है :—

अस्ताश्रितस्तवगतः प्रतिसंहृतांगः
सन्ध्यालुरन्तितवपुः प्रतिमानि मूर्धः ।

रक्तोज्ज्वलांशुककृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको ययंव ॥ ४-२३ ॥

चारुदत्त नाटक में रात्रि के मधन अन्धकार का वर्णन कितना हृदयग्राही है:-

तिम्पतीव तमोऽङ्गानि धरतीवाञ्जनं नभः ।
अस्त्युदयसेवेव दृष्टिर्निष्कलता यता ॥ १-१६ ॥
सुलभशरणमाधयो भयानां
धनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव ।
उभयमपि हि रसातेऽन्यकारो
जनयति यदच भयानि यदच भीतः ॥ १-२० ॥

इसी प्रकार अविमारक के द्वितीय अंक के बारहवें श्लोक में सन्ध्या तथा रात्रि के आगमन का बड़ा ही मनोहर वर्णन मिलता है ।

चारुदत्त में चन्द्रोदय का वर्णन दर्शनीय है—

उदयति हि शशांकः शितन्नलज्जूरपाण्डु-
युंश्चतिजनसहायो राजमार्गप्रवीपः ।
तिमिरनिक्षयमध्ये रश्मयो यस्य गौरः
हृतजल इव पद्मे क्षीरपाराः पतन्ति ॥ १-२६ ॥

स्वप्नशामवदत्तम् नाटक में तपोवन का वर्णन कितना मनोहर है :-

विलम्ब हरिणाश्चरन्त्यजकिता वेदागतप्रत्यया
बुक्षाः पुष्पफनः समूढविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूमिच्छं कपित्थानि मोक्षुलधनान्यशेषवत्यो दिशो
निःसन्धिगमिवं तपोवनमयं धूमो हि बहुध्रुवः ॥ स्वप्न० १-१२

धर्मप्रेर नाटक में समुद्र का वर्णन माग द्वारा धत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि के साथ किया गया है ।

श्चक्षिन् केनोदगारी श्चक्षिदपि च मोनाकुलजलः
श्चक्षिच्छद्मकीर्णः श्चक्षिदपि च मोलाम्युदनिभः ।
श्चक्षिन्मोक्षीमासः श्चक्षिदपि च नक्षत्रनिभयः
श्चक्षिद्भीमावतः श्चक्षिदपि च निष्कम्पगतिभः ॥ ४-१७ ॥

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में उड़ी हुई बसुलो की पक्ति का वर्णन करते हुए उदयन कह रहा है :—

श्रृज्यापतां च विरतां च नतोन्नतां च
सप्तपिण्डशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्थ
सीमागिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥ ४-२ ॥

भास की रचनाओं में अनेक पद्य प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से भरे पड़े हैं । कुछ उद्धरण दिग्दर्शनमात्र के लिए पर्याप्त हैं । जो भास के प्राकृतिक दृश्यों से घनिष्ठ संबंध की सूचना देते हैं । इन वर्णनों में प्रकृति के सभी अंगों का समावेश पाया जाता है । प्रकृति के किसी भी रूप के प्रति चाहे वह सुन्दर हो अथवा असुन्दर उनका कोई विशेष पक्षपात नहीं है । वे प्रसंगवश प्राप्त सभी का यथोचित चित्रण करने में नहीं हिचकते ।

रस—भास की कृतियों में रसों का परिपाक बहुत स्वामाविक हुआ है । 'नाट्येष्टी रसाः स्मृताः' भरतमुनि के इस सिद्धान्त को भास ने अपनी कृतियों में पूर्णतया चरितार्थ किया है । जहाँ तक 'वासवदत्तम्' का प्रश्न है, इस नाटक में संयोग और विप्रलम्भशृंगार ही आये हैं, जो कि भारतीय नाटक-परम्परा की प्रमुख विशेषता रही है । इसमें शृंगार की अनेकानेक परिस्थितियाँ मर्म-स्पर्शी बनकर आती हैं; क्या संचारी भाव, क्या, विभाव, क्या अनुभाव सभी बिना प्रयत्न के पात्रों की नाट्यकला में अवतरित हुए हैं । रस की पूर्ण अभिव्यक्ति, रसाभास, भावभास और भावशब्दों से इस नाट्यकृति के लघुकलेवर में बड़ी सफाई से प्रतिष्ठित कर दिये गये हैं ।

पहले अंक में छठे अंक के प्रारम्भ तक केवल विप्रलम्भ शृंगार के भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की विविध अभिव्यक्ति वासवदत्ता और उदयन को परस्पर आलम्बन और आश्रय मान कर की गयी है । छठे अंक के समाप्त होते संयोग शृंगार का प्रसंग आता है, जो बहुत कम है । प्रस्तावना के बाद नाटक का प्रारंभ ही विप्रलम्भ की परिस्थिति लेकर होता है । वहाँ वागवदत्ता आश्रय रहनी है । फिर ब्रह्मचारी के सवालों में कवि-निबद्ध यक्षा

के रूप में उदयन आश्रय रहता है । एक तरह से 'वासवदत्ता' का कथानक और इसका विप्रलम्भ दोनों सहजात हैं और जहाँ उदयन तथा वासवदत्ता के वियोग का अन्त होता है वही कथानक पूरा हो जाता है । शत्रुओं का नाश और वत्सराज्य की प्राप्ति को वासवदत्ता की वियोग-कथा से सम्बन्धित करके मास ने कथावस्तु के संघटन का अद्भुत कौशल दिखाया है । अपने आप आदि से अन्त तक वियोग शृंगार की अभिव्यंजना होती रहती है । इतनी निसर्ग-जात अभिव्यक्ति अन्यत्र देखने को नहीं मिलती । पद्मावती का विवाह भी वासवदत्ता के विप्रलम्भ की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वतः बन जाता है; क्योंकि वासवदत्ता उसी के पास है ।

विप्रलम्भ शृंगार के अतिरिक्त शेष रसों में कहीं-कहीं केवल हास्य की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, विदूषक के प्रसंगों में । कहीं-कहीं विप्रलम्भ भी अधिक व्यापक होकर कष्ट और शान्त रस के रूप में अभिव्यक्त होने लगता है ।

मास की रसाभिव्यक्ति में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शब्दावली स्वभाविक और सरल है । उसमें आढम्बर और कृत्रिमता नहीं है ।

विप्रलम्भ शृंगार का यह उदाहरण देखिये—

कामेनोज्जयिनीं गते मयि यदा कामाव्यवस्थां गते,

वृष्ट्वा स्वरमवन्तिराजतनयां पञ्चेपथः पातितः ।

तैरघ्रापि सशल्पमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं,

पञ्चेपुमंदनो यदा कथमयं पृष्ठः सरः पातितः ॥ (अंक ४ दृश्य १)

वासवदत्ता के अमाव में उसकी वीणा की जो दुर्दशा हुई उसे देखकर राजा का हृदय वासवदत्ता के अमाव-जनित विप्रलम्भ से अभिमूढ हो रहा है—

श्रुतिसुखनिनदे कथं नु देव्याः स्तनपुगले जघनस्थले च मुक्ता ।

विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमभ्युषितास्परण्यवासम् ॥

(अंक ६ दृश्य १)

वासवदत्ता के वियोग में उदयन की भावराजसता का यह चित्र देखिये—

प्रहमवन्तः पूर्वं तावत् मुतः सह तासितो

दृग्मपहृता कन्या भूपो मया न च रक्षिता ।

निघनमपि च श्रुत्वा तस्मास्तथैव मयि स्वता

ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ॥ (अंक ६ श्लोक ८)

वासवदत्ता को आश्रय रखकर विप्रलम्भ की उतनी अच्छी अभिव्यक्ति नहीं हो पायी है, जितनी उदयन के आश्रय में हो सकी है। वासवदत्ता-आश्रित विप्रलम्भ का एक उदाहरण देखिये—

विवाहामोदसङ्कुले चतुश्शाले परित्यज्य पद्मावतीम् इह आगतास्मि प्रमद-
यनम् । यावत् इदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि । (परिक्रम्य) अहो
अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि परकीयः संवृत्तः । यावत् उपविशामि । (उपविश्य)
यस्या खलु चक्रवाकवधूः या अत्योऽन्यविरहिता न जीवति । आर्यपुत्रं पश्यामि
इति एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा । (३ य अंक)

कण्ठरसामास के अग सयोगशृंगार की यह अभिव्यक्ति भी देखिये; हृदय
भाव से आन्ध्यन्न हो उठता है—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।

वाप्ये प्रवृत्ते मयनान्तलग्नं स्नेहान्ममधोरसि पातयन्त्याः ॥

(अंक ५ श्लोक २)

शान्तरसामास का यह उदाहरण भी दर्शनीय है—

रूपधिया समुदितां गुणतश्च युक्तां लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।

पूर्वाभिघातसहजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥

(अंक ५ श्लोक २)

अलङ्कार—‘स्वप्नवासवदत्तम्’ की भाषा प्रसादगुणमुक्त है। मास ने ऐसी
भाषा का प्रयोग किया है, जो उस समय की प्रायः बोलचाल की ही भाषा प्रतीत
होती है। मम अलंकारों के प्रयोग में नहीं उलझे हैं। फिर भी भाषा के
स्वामाविक प्रवाह में, जैसे नीचे के श्लोक में, वृत्त्यनुप्रास का अच्छा प्रयोग अपने
आप हो गया है—

मधुमदकला मधुकरा मननार्ताभिः प्रियाभिरुपगुडाः ।

पादग्याताविपण्णा धममिय कान्तायिपुशताः स्युः ॥

(अंक ४ श्लोक ३)

वैसे ही भास के स्वभाविक अर्थ-निबन्धन में उपमा, व्यतिकर, स्वभावोक्ति, परिसंख्या और अर्थान्तरन्यास भ्रलंकार अपने आप जहाँ-तहाँ आ गये हैं। वे भी कवि-निबद्ध नहीं प्रतीत होते, बल्कि पाशों के संवाद-प्रवाह में घुले-मिले हैं। उपमा का प्रयोग नाटक में कई स्थानों पर आया है। एक उदाहरण देखिये—

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चकारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥

(अंक १ दलोक ४३)

परिसंख्या के साथ अर्थान्तरन्यास का यह उदाहरण कवि की समर्थ वाणी का साक्ष्य देता है—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।

एवं लोकहनुष्यपमो वनानां काले काले विप्रते रहते च ॥ (अंक ६ दलोक १०)

यहाँ पूर्वाध में परिसंख्या भ्रलंकार है और उत्तराध में एक सामान्य बात कहकर पूर्वाध के सामान्य कथन का समर्थन किया गया है।

उपमा की भाँति ही स्वभावोक्ति भी कई बार नाटक में आया है। एक उदाहरण से भास की स्वभावोक्ति-मञ्जुलता का परिचय मिल जाएगा—

लगा बासोपेताः सतितमवशादो मुनिजनः

प्रवीप्तोऽग्निर्भाति प्रविधरति धूमो मुनिवनम् ।

परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो

रथं व्यापय्योत्तौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ (अंक ४ दलोक १६)

तपोवन का यह सायन्तन वर्णन भाडम्बर-विहीन होकर भी बहुत सजित है। विरोधतः छन्द का दूसरा तथा तीसरा चरण काञ्चुकीय जैसे साधारण पात्र का प्रवृत्त संवाद प्रतीत होता है।

व्यतिरेक का भी उदाहरण देखिये—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपोत्तमाभूयः ।

मातवदतामर्द्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥ (अंक ४ दलोक ५)

यहाँ मातवदता को पद्मावती से अधिक सिद्ध करने के लिए उसके मनोहरण रूप विशेष गुण की चर्चा करने के बजाय सरल सहजे में कर दी गई है।

नाटक में अनुज्ञा अलंकार का एक उदाहरण भी दर्शनीय है—

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।

अयायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे सदा ॥

यहाँ वासवदत्ता के मनोरम सहवास की कामना से उदयन ने स्वप्न और विभ्रम को भी अत्यधिक आदर दिया है ।

भास की आलोचना

भास संस्कृत साहित्य के एक जाज्वल्यमान भणि हैं । नाटककार के रूप में उनकी ख्याति अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है । सम्पूर्ण भारत में सुदूर दक्षिण से ध्रुव उत्तर तक तथा पूर्व से पश्चिम तक उनकी कीर्तिपताका फहराती थी । भास के नाटक 'नाट्यं भिन्नरचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्' (नाटक भिन्न-भिन्न रुचि वाले व्यक्तियों का एकत्र समाराधन है) कालिदास की इस उक्ति को सम्यक् परिपुष्ट करते हैं । 'नाटकान्तं कवित्वम्' नाटक कवित्व का चरम परिपाक कहा गया है । इसमें लोकत्रय के भावों का समावेश होता है । इस दृष्टि से विचार करने पर भास का महत्त्व और भी बढ़ जाता है । नाट्य साहित्य के इतिहास में यह एक चिरस्मरणीय बात है कि अत्यन्त प्राचीन समय में ही भास द्वारा तेरह नाटकों की सफलतापूर्वक रचना की गई जिसकी प्रशंसा महाकवि कालिदास तक ने की है । पहले भास के बारे में कतिपय प्रशस्तियाँ सुनाई पड़ती थी । लोग उनके नाटकों के स्वरूप से अपरिचित थे । सर्वप्रथम महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री द्वारा भास के नाटक प्रकाश में लाये गये । पर उनके विषय में लिखी हुई प्रशस्तियों से स्पष्ट है कि नाटककारों में उनका विशिष्ट स्थान बहुत पुराने समय से रहा है तथा लघु-प्रतिष्ठ कवि भी उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे । बाणभट्ट, दण्डी, जयदेव, वाक्पतिराज, राजशेखर आदि ने, भिन्न-भिन्न समय में होते हुये भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । वास्तव में वे संस्कृत के प्रथम नाटककार माने जाते हैं । परवर्ती सभी नाटककार उनके श्रेणी हैं । उनको भास से ही नई दिया मिली है ।

भारतीय मनीषियों के अतिरिक्त पाश्चात्य आलोचकों ने भी भास की भूतकण्ठ से प्रशंसा की है । पाश्चात्य आलोचक याकोबी का वचन है 'भास के

नाटकों की संख्या तथा उनके वर्ण्यविषय की अनेकरूपता से स्पष्ट द्योतित होता है कि उनकी प्रतिमा कितनी मौलिक तथा उनका मस्तिष्क कितना कर्मशील था ।" गणपतिशास्त्री के अनुसार—

The unrivalled merit of Bhasa lies in the deliberation of the real nature of things in their varied conditions by sweet, apt and lucid words suggestive of lofty ideals. In the Pratima the central sentiment is Dharmavira manifesting itself in the enthusiasm displayed by the hero cherishing the single thought of carrying out the Dharma fulfilling the mandates of his father."

इतना होते हुए भी उनके सभी नाटकों में एक-भी नाट्य-कुशलता नहीं दिखाई देती । रामायण से सम्बद्ध नाटकों का कथासंविधान अत्यन्त शिथिल है पर महाभारत से संबद्ध नाटक भास की प्रौढ़ प्रतिमा के परिचायक हैं । प्रतीत होता है कि महाभारत संबंधी इतिवृत्तों में उनका मन विशेष रमा है । उदयन से संबंध रखने वाले नाटकों में उनको सबसे अधिक सफलता मिली है । इसीलिए स्वप्नवासवदत्तम् एवं प्रतिज्ञायोग्यधरायण उनके उच्चकोटि के नाटक हैं जो बाद में हर्ष द्वारा अपनी रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नाटिकाओं के आधार बनाये गये हैं । संस्कृत नाटकों का मुख्य उद्देश्य रसानुभूति उत्पन्न करता होता है । इसी से यहाँ काव्यत्व अधिक पाया जाता है । भास के कवित्वपूर्ण श्लोक नाटकीय घटनाचक्र को गति देने में सहायक होते हैं । उनके संवादों की समासरहित सरल भाषा और पद्यों की प्रसंगानुकूल भावात्मकता से नाटकों की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि होती है । भास की शैली प्रसादगुणयुक्त है पर वीररस के वर्णनों में भोज का भी दर्शन होता है । शृंगार और वीररस की अभिव्यक्ति में उन्हें फलता मिली है । उनके पात्रों के चरित्र सर्वत्र उदात्त हैं । नायक-नायिका, अमात्य-विदूषक, कंचुकी, सेवक आदि सभी पात्र उन्नत चरित्र के ही प्रदर्शित किये गये हैं । उनके नाटक रसपरिपाक की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं । वीर, शृंगार तथा करुण ये तीन रस प्रायः भोगी बन कर धाये हैं । अन्य रसों का भी प्रयोग अवसरानुरूप किया गया है । उनके नाटकों में विभिन्न प्रकार की छन्द योजना दिखाई पड़ती है । अलंकारों का विधान भी यथावसर सफलतापूर्वक किया गया है । सुन्दर से सुन्दर उपमाएँ उनके नाटकों में मिल सकती हैं ।

अभिनेयता की दृष्टि से उनके नाटक अत्यन्त सफल रहे हैं । कथानक, पात्र, भाषा, शैली, देश-काल, संवाद आदि सभी तत्त्व इनमें पाये जाते हैं तथा अभिनेयता के अनुरूप हैं । उनकी शैली में व्यञ्जकता तथा प्रभावोत्पादकता का मणिकांचन योग है । वे सरल एवं सूक्तियों से युक्त भाषा के प्रयोग में कुशल हैं । उनकी भाषा पर्वतनिर्झरिणी के समान स्वामाविक गति से प्रवाहित होती है । उनमें किसी प्रकार की तड़क-मड़क नहीं है । कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है तथा वह भावबहुन में समर्थ है । महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने भास की वाक्यरचना की प्रशंसा इस प्रकार की है :—

“The sentences are everywhere replete with a wealth of ideas beautifully expressed, which cultured minds appreciate.”

भास प्रकृतिचित्रण में अत्यन्त दक्ष हैं । प्राकृतिक दृश्यों का उनका निरीक्षण बहुत सूक्ष्म है । उन दृश्यों का ऐसा सागोपांग चित्र खींचते हैं कि पाठक की चित्तवृत्ति उनमें पूर्णतया रम जाती है । वे उनका पूर्ण विम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा करते हैं । नाटककार के रूप में सीमित परिधि के भीतर ही उन्होंने प्रसंग-प्राप्त दृश्यों का अत्यन्त सूक्ष्म तथा मनोहर वर्णन किया है । (मालोचना सवधी विस्तृत जानकारी के लिए ‘भास की नाट्य-कला’ तथा ‘भास की शैली’ शीर्षक लेख द्रष्टव्य हैं ।)

भास की त्रुटियाँ—भास अत्यन्त प्राचीन नाटककार हैं अतः उनकी कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं जो दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करती हैं । कालिदास के नाटकों में जो प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है वह भास के नाटकों में उनकी उत्कृष्टता के साथ नहीं । उनकी कतिपय नाटकीय त्रुटियाँ ऐसी हैं जिनका उत्तरदायित्व भास पर ही है । उनकी शैली सक्षिप्त है जिसके फलस्वरूप कतिपय स्थलों पर उसका भाव धनष्ट हो गया है । जैसे प्रतिभा नाटक के तृतीय अंक में—‘संकेयी-प्रातः, सन्कलुषा ननु प्रष्टव्या’ का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट नहीं है । अभिसारी, प्राणिधर्मम्, धनुषाश्रमम्, क्रियामाधुर्यम्, महाकच्छः आदि अग्रचरित्त दृश्यों का प्रयोग किया गया है । भास के कितने ही ऐसे

१—आपृच्छामि भवन्तो ।

२—साधुजनहस्तगतंवा नोत्पृच्छति ।

प्रयोग है जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है 'स्मराम्यव—
न्याधिपतेः सुतापाः' में अनियमित सन्धि है। कुछ स्थानों पर परस्मैपद के स्थान
पर आत्मनेपद और आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद प्रयुक्त हुआ है। यथा—
परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद का प्रयोग 'अपरिचयात् न श्लिष्यते मे मनसि'।
आत्मनेपद के स्थान में परस्मैपद का प्रयोग 'आपूच्छामि भवन्तो'। कहीं-कहीं पर
अनियमित समास दिखाई पड़ता है—एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानाम्।

इनके अतिरिक्त अकर्मक धातुओं का कर्मक की भाँति प्रयोग, प्रेरणार्थक
के लिए साधारण का प्रयोग तथा अनियमित प्रत्यय का प्रयोग भी भास की
रचनाओं में मिलता है। इन प्रयोगों के लिए यह कहा जा सकता है कि भास के
समय तक ह्युपादिनि-व्याकरण पूर्ण रूप में प्रतिष्ठित और मान्य नहीं था।
संभव है उस समय व्यापणिनीय प्रयोग चालू रहे हों। छन्दोगंग के निवारणार्थ
कतिपय व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ रह जाना संभव है।

भास ने काल की अनियति पर ध्यान नहीं दिया। घटनाओं में बीपेंकालीन
समय बिगड़ा रहता है। स्वप्नवासवदत्तम्, बालचरित, आश्वदत्त आदि नाटकों
में कालान्धिति का अभाव सक्षित होना है। नाटकों में कञ्चुकी, धात्री और
पेटी आदि का प्रवेश शीघ्रता से कराया गया है। यद्यपि कथानक में सीधता
आने के लिए ऐसा किया गया है तथापि इनका आधिक्य घटावनीय है।
आकाशभाषित का प्रयोग भी आपत्तिजनक है। इसमें निरर्थक विस्तार होने
में यह जाना है पर वास्तविकता में दूर होने के कारण प्रभावशालिना नहीं रह
पानी।

रतमय पर अनुपमिण ताओं द्वारा भाष्य कराना अन्वयाभाविक है।
उदाहरणार्थ अग्नितापोन्यरायण में उदयन का वागवदत्त को लेकर भास जाने
की सूचना ऐसे स्वरूप द्वारा मिलती है जो रतमय पर नहीं है। भास के नाटकों
में ऐसे स्थलों की कमी नहीं है।

भास के नाटकों में कुछ पिथीरिटी उदाहरणों तथा श्लोकों का कई बार
प्रयोग किया गया है जिससे वे परम्परा में प्राण लगे हैं।

दक्षिण भारत के प्रदेशों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान बहुत सीमित था।
गामक्या वर्णन में रामेश्वरम् जैसे तीर्थ का उल्लेख नहीं किया गया है जिसमें

इस बात की पुष्टि होती है। प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत का जो कुछ भी उन्हें ज्ञान है वह प्रसिद्ध ग्रंथों पर ही आधारित है।

दूतवाक्य में कृष्ण के मुख से तथा पंचरात्र में द्रोण के मुख से अपशब्द कहलवाना शोभा नहीं देता। अविमारक में पराक्रमी नायक-नायिका का आत्म-हत्या के लिए प्रस्तुत होना तथा प्रतिमानाटक में राम का वन जाते समय अपने पिता दशरथ से न मिलना एक ऐसी त्रुटि है जो पाठक एवं दर्शक को खटकती है। पर उनकी ये न्यूनताएँ उनके विशाल साहित्य को देखते हुए नगण्य हैं। इन दोषों के कारण मास के महत्त्व में किसी प्रकार की कमी नहीं हो सकती। वे एक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र हैं जिनका प्रकाश देश तथा काल से परे है। ये दोष इतने साधारण हैं कि उनके गुणों के प्रकाश में विलीन हो जाते हैं।

भासविषयक प्रशस्तियाँ

भास की महनीयता

मास उन प्रसिद्ध नाटककारों में से हैं जिनकी प्रशंसा संस्कृत के प्राचीन कवियों तक ने की है। महाकवि कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में मास का उल्लेख इस प्रकार किया है—

(१) 'प्रयितयशसां भाससीमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृती बहुमानः।

अर्थात् लब्धप्रतिष्ठ भास, सीमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के प्रबन्धों को त्याग कर वर्तमान कवि कालिदास की रचना का इतना सम्मान कैसे (हो रहा है) ?

महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में भास की इस प्रकार प्रशंसा की है :—

(२) सूत्रपारकृतारम्भेर्नाटिकंबहुभूमिकेः।

सप्तार्कंशो तेभ्ये भासो देवकुलैरिव ॥

अर्थात् सूत्रपार से प्रारम्भ किये गये बहुत भूमिका वाले तथा पताका से सुशोभित देवालयों की भाँति भास ने अपने नाटकों द्वारा बहुत कीर्ति पाई।

मास के सम्बन्ध में राजशेखर का निम्नलिखित कथन है :—

(३) भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दशकोऽभून् पावकः ॥

अर्थात् भास के नाटकों की परीक्षा करने के लिए उन्हें विद्वानों द्वारा (समासोचनारूपी) अग्नि में डालने पर अग्नि स्वप्नवासवदत्तम् को न जला सका । इससे यह बात सिद्ध होती है कि भास की सभी रचनाओं में स्वप्नवासवदत्तम् ही श्रेष्ठ है । इसी से उनकी कीर्ति अद्यावधि अक्षुण्ण है ।

(४) दण्डी ने सातवीं सती के उत्तरार्ध में अपनी कृति अवन्तिसुन्दरी कथा की भूमिका के ग्यारहवें श्लोक में भास को नाटकों रूपी शरीर द्वारा अवस्थित माना है :—

सुविभक्तमूखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।

परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरंरिव नाटकैः ॥

अर्थात् भास दिवगत होते हुए भी मुख आदि अवयवों के समुचित विभाजन वाले तथा लक्षण प्रौर वृत्ति की उचित व्यवस्था वाले नाटक रूपी शरीर से अथ भी जीवित हैं । तात्पर्य यह है कि जैसे मुख आदि इन्द्रियो तथा वृत्तियों द्वारा शरीर का स्पष्ट दर्शन तथा उसकी सत्ता स्वीकार की जाती है, उसी प्रकार मुख आदि संधियों व अंगों के समुचित विभाजन के माध्यम से नाटकीय लक्षणों एवं वृत्तियों की उचित व्यवस्था में विभूषित नाटकों की रचना करके भास अमर हो गये हैं ।

(५) वाक्यतिराज ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'गडहबहो' में भास को जलन-मित (ज्वलनमित्र) पद से अभिहित किया है :—

भासाम्मि जलनसे कुन्तीदेवे भजस्त रघुधारे ।

सो वन्द्यवे च वन्द्यमि हारिप्रन्दे च धान्दो ॥

(भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुधारे ।

सौवन्द्यवे च वन्द्ये हारिचन्द्रे च धानन्दे ॥)

वाक्यतिराज का भास को 'ज्वलनमित्र' की उपाधि से विभूषित करना सर्वथा उपयुक्त है । भासरचित नाटकों की कथा में यज्ञित अग्निदाह के दृश्य अनेक हैं । स्वप्नवासवदत्तम् में सावाणकग्राम में अग्निदाह, पंचरात्र

में दावानल, अभिषेक नाटक में सीता का अग्नि-प्रवेश, अविमारक में नायक का स्वयं को अग्नि में फेंकने इत्यादि सर्वत्र अग्निदाह का वर्णन है पर सभी नाटकों में यह सहायक ही सिद्ध हुआ है। कहीं भी हानिकारक नहीं।

कथा का विकास होकर उदयन की राज्यप्राप्ति, सीता के सतीत्वरक्षा की घोषणा, अग्नि-स्फुलिंगों का चन्दनशीतल होना ये सब अग्निदाह के ही परिणाम हैं। इस प्रकार आग सर्वत्र मित्र बनकर व्यवहार करती रही है। अतः भास को ज्वलनमित्र (आग का मित्र) कहना सर्वथा युक्ति-संगत है। प्रसन्नराघव-कार जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास माना है।

(६) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

भास का हास तथा कविकुलगुरु कालिदास का विलास प्रशंसनीय है।

हास्यरस का चरम परिपाक भास के नाटकों में उपलब्ध होता है। वासवदत्तम् अविमारक आदि में वसन्तक का हास केवल आमोद-दायक ही नहीं है अपितु चिन्तित क्षणों में जीवनी शक्ति का भी संचार कर देता है। हास्यरस के प्रयोग में भास सर्वोत्कृष्ट हैं। श्लिष्ट, साधारण एवं अनिन्द्य हास्य प्रस्तुत करने में कोई भी कवि उनकी समानता नहीं कर सकता।

भास के बालचरित नाटक^१ की भूमिका में अज्ञात श्लोक उद्धृत किया गया है :—

(७) भासमानमहाकाव्यः कृतविंशतिनाटकः ।

अनेकान्तविधाता च भूनिर्भासोऽभवत्कविः ॥

इस श्लोक में भास को बीस नाटकों का रचयिता कहा गया है तथा अनेकान्तविधाता और उज्ज्वल महाकाव्यों के रचयिता भासभूनि नाम से अभिहित किया गया है।

(८) आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने ग्रन्थ नाट्यशेखरकृति में (जो नाट्य शास्त्र की टीका है) वासवदत्ता उल्लेख किया है :—

‘यथा बबधिरकीडा । यथा वासवदत्तायाम् ।

(६) काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में (व्याजोक्ति के उदाहरण में आचार्य वामन द्वारा) ईसा की नवीं शताब्दी में स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है:—

शारच्चन्द्रांशुगोरेण धाताविद्वेन भामिनि ।
कणपुष्पलवनेदं साभूपातं मूलं कृतम् ॥

(१०) निम्नलिखित विद्वानों ने मास की रचनाओं से श्लोक उद्धृत किये हैं भयवा उनके विचारों के आधार पर अपनी भाषा में प्रस्तुत किये हैं:—

- (क) भोजदेव ।
- (ख) शारदातनय ।
- (ग) रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र ।
- (घ) सर्वानन्द ।
- (ङ) सागरनन्दिन् ।
- (च) साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ।

ईसा की ११ वीं शती में भोजदेव ने अपने ग्रन्थ शृंगारप्रकाश में स्वप्न-वासवदत्तम् के भाव के प्रसंग का उद्धरण किया है, जैसे :—

पद्मावतीमस्यस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः । पद्मावतीरहितं च तबल्लोच्य तस्या एव शयने सुप्वाप ।

१२वीं शती में शारदातनय ने 'भावप्रकाश' में प्रधानतः नाटक के प्रसंग में 'स्वप्नवासवदत्तम्' के कथानक का निर्देश किया है ।

१२वीं शती में रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र हुए नाट्यदर्पण में स्वप्नवासवदत्तम् नाटक तथा उसके रचयिता का नाम उल्लिखित किया गया है । यथा—

भासकृते स्वप्नवासवदत्ते दोषालिका-शिलातलमवलोक्य धत्तराजः....—
'धत्तराजोऽतीकामर्षस्व' में सर्वानन्द ने उदयन के विवाह-प्रसंग में शृंगाररस के तीन भेदों का उल्लेख किया है । यथा :—

'त्रिविधः शृंगारः धर्माधिक्यामभिन्नः ।'

सागरनन्दिन् द्वारा अपने ग्रन्थ नाटक सदाश रत्नकोश में स्वप्नवासवदत्तम् के भाव को ग्रहण करके अपनी भाषा में व्यवस्त किया गया है, यथा:—

स्वप्ने वासवदत्ते नेपथ्ये सूत्रधारः उत्सारणां श्रुत्वा पठति अथ कथं तपोवनेऽप्युत्सारणा.....।

विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण में नान्दी की परिभाषा के अनन्तर 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' का प्रसंग भी प्राप्त होता है जो भास की स्पष्टछाप प्रतीत होती है।

(ख) भास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव

श्रव्यकाव्य के आदिकवि वाल्मीकि के समान भास ने नाटक के क्षेत्र में नई दिशा प्रदान की तथा नाट्यकला को उत्कृष्ट रूप दिया। कालिदास तक ने इनकी रचनाओं की उत्कृष्टता स्वीकार की है। संस्कृत के परवर्ती नाटक-कारों पर भास का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जो उनकी रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से प्रमाणित है। कालिदास यों तो भरत-नाट्यशास्त्र की परम्परा के अनुयायी हैं पर भास के भावों, विचारों, घटनाओं, शब्दों, परिस्थितियों आदि के मूलतत्त्व उनमें पाये जाते हैं। कालिदास अपनी समुन्नत प्रतिभा के बल पर दूसरे के भावों को परिवर्तित या परिष्कृत रूप में ग्रहण करते हैं जिससे स्पष्ट साम्य दिखाना संभव नहीं। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त द्वारा आश्रमवासी सपत्नियों को कष्ट न देने का आदेश दिया जाता है। वही बात स्वप्नवासवदत्त नाटक में कांचुकीय के मुख से कहलाई गई है। दोनों नाटकों में तपोवन-वर्णन में पर्याप्त समानता संक्षिप्त होती है। तपोवन के मृगों^१ के प्रति स्नेहभाव दोनों में एक-सा मिलता है। स्वप्न-वासवदत्तम्^२ में योषवतीवीजोपलब्धि उदयन को वासवदत्ता के प्रति शोका-

१. विश्रम्य हरिणाश्चरन्त्यवकिता देशागतप्रत्ययाः ।

निःसन्धिधमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्नाधमः ॥ स्वप्नवास० १-१२

यस्य स्वया व्रजविरोपणमिगुबीना

तंसं न्यपिष्यत मुखे कदासूचिविद्धे ।

ध्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति

सोऽयं न पुनरुक्तकः पदवीं मृगरते ॥

ध० शा० ४४

२. श्रुतिगुह्यनिन्दे कथं नु देव्या...

प्रतिभ्रममभ्युविताश्चरन्त्यवातम् ॥

स्वप्न० । ६।१-

तव गुह्यरितमंगुलीय मूनम् ...पदंगुलीषु ।

ध० शा० २१२

कथं नु त वन्पुरजोमतीर्णितं

ध० शा० ६११

तुर बना देती है उसी प्रकार शकुन्तल में अंगूठी मिलने पर दुष्यन्त अत्यधिक शोकसंतप्त होता है । तपोवन-वर्णन के साथ अतिथिसत्कार की भावना दोनों नाटको में समान रूप से व्यक्त की गई है । प्रतिमानाटक में बल्कल धारण की हुई सीता के सौन्दर्य की तुलना बल्कलधारिणी शकुन्तला से द्रष्टव्य है । अविमारक नाटक में शाप के कारण कुरंगी और अविमारक के विवाह में बाधा पहुँचती है । उसी प्रकार दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त को शकुन्तला की विस्मृति हो जाती है ।

अभिषेक नाटक में वन, लताग्री के प्रति मन्दोदरी की स्नेहभावना अभिज्ञान शकुन्तल में शकुन्तला का सतादि के प्रति प्रेम-भावना से साम्य रखती है । इसके अतिरिक्त कालिदास की अन्य कृतिषु में भावसाम्य के उदाहरण मिलते हैं । रघुवंश के श्लोकार्घ्य नाम पर भास का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है ।

‘स्वप्नवासवदत्तम्’ तथा ‘अभिज्ञानशकुन्तलम्’ दोनों में पद्यावली तथा शकुन्तला दोनों को अपने-अपने सौभाग्य की चिन्ता है । कल्याणाव की रमणीयता दोनों में सपानरूप से दिखाई देती है । इस प्रकार भास के साथ

१. काञ्चुकीयः—प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः । मा० भा० च० पृ० ८
राजा—भवतीनां सूनृतपर्व गिरा कृतमातिथ्यम् अ० शा० १२३

२. सर्वशोभनीय मुरूपं नाम । अलकरोतु भट्टिनी । तव खलु शोभते नाम । तोवणिक्प्रिय बल्कलं संवृत्तम् । मा० भा० च० पृ० २५३
द्वयमधिकमनोज्ञा बल्कलेनापि तन्वी, किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतोनाम् । म० शा १।१६

६. यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी ।

स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्जीवन्ति यस्यां भयात् । अभिषेक ३।१
पातुं न प्रथमं व्यवस्मति जलं युष्माव्यपोतेषु या, नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लयम् । अ० शा० ४६

४. सुरद्विपास्फातनकर्कशाङ्गुलिम्

कृतार्थः खलु पाकशासनः । कर्णभार १।२३

हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रम-सुरद्विपास्फातनकर्कशाङ्गुली रघु० ३।५५

भाव-साम्य को अनेक उदाहरण कालिदास के रघुवंश, कुमारसंभव तथा मेघदूत में प्राप्त होते हैं। यथा—

कौतुकमालां गुम्फत्वार्या ।

स्वप्न० अंक ३.

एव तपोवते तमवेक्ष्य किञ्चिद् विस्रंसिद्वर्षाङ्गुमधुकमालाः । रघुवत् ६, २५

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभि वपगूढाः

स्वप्न० ४।३

मधुद्विरेफः कुसुमंकपात्रे पयो प्रियां स्वामनुवतंभानः । कुमारसं० ३।३६

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः ।

स्वप्न० ४।६

विषवृक्षोऽपि संबध्यं स्वयं छेतुमसांप्रतम् ।

कुमार० २।५५

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ।

स्वप्न० १०४

कस्यैकान्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा नीर्धर्गच्छत्युपरि च वशा धर्मे-
निक्रमेण उत्तरमेघ ५२

मूच्छकटिककार शूद्रक मास से प्रभावित हैं। इसकी योजना मासरचित चारदत्त के आधार पर की गई है। उन्होंने क्यावस्तु तथा भावों का अंकन भी चारदत्त के ही समान किया है तथा दोषों का परिहार करके उचित परिष्कार के साथ वाक्यों को भी अपने नाटक में स्थान दिया है। उदाहरणार्थ—मूच्छकटिक में भुजाओं के लिए 'करिकरसमबाहु' प्रयुक्त हुआ है जो मास द्वारा दी गई भुजाओं की उपमा 'हाथी की भुजाओं' (मूँड़) के सदृश से साम्य रखती है। स्वप्न-वासवदत्तम् के छठे अंक में कंचुकी कहता है :—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।

प्रायेण हि नरेन्द्रोः सोत्साहेरेव भुज्यते ॥

इस श्लोक के उत्तरार्ध का भाव मूच्छकटिक में पाया जाता है जहाँ कहा गया है कि 'साहस में लक्ष्मी का वास है' ।

मधुमति भी मास के प्रभाव से ग्रस्त नहीं बचे हैं। उनके उत्तररामचरित में कतिपय स्थलों पर मास के भावों का साम्य पड़ता है। पथरात्र में 'प्रीतिपूर्वक मेघन' अर्थ में श्लोकाद्वारा प्रयुक्त 'समात्रयति' का प्रयोग उत्तररामचरित के प्रथम अंक में इसी अर्थ में हुआ है, यथा :—

‘स्नेहास्तभात्रपितुमेत्य इतिान्यनूनि’ ।

स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक की इस पंक्ति की छाया उत्तररामचरित के द्वितीय अंक के निम्नलिखित सातवें श्लोक पर स्पष्ट लक्षित होती है :—

‘आगमप्रधानानि सुतमपर्वशस्यानानि महापुण्यहृदयानि भवन्ति ।’

स्वप्न० अंक १.

‘वज्रावपि कठोराणि मूढानि कुसुमावपि ।

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥’

मालतीमाधव में अविमारक से प्रेरणा ली गई है। दोनों नाटक लोक-कथा पर आधारित हैं। दोनों की प्रकृतिवर्णनशैली में समानता पाई जाती है। अविमारक नाटक में हाथी के उत्पात का वर्णन किया गया है। तो मालतीमाधव में व्याघ्र का उपद्रव वर्णित है। अविमारक में विद्याधर ने उसके जीवन की रक्षा की तो मालतीमाधव में योगिनी के द्वारा जीवन रक्षा होती है। इन दोनों नाटकों में दण्डक छन्द का प्रयोग हुआ है। स्वप्नवासवदत्तम् में अग्निदहनोपरान्त भी वासवदत्ता पतिस्नेह के कारण जीवित कही गई है ‘दग्धाप्यदग्धा’ जली हुई भी नहीं जली है। ऐसा ही वर्णन मालतीमाधव में दो स्थानों पर पाया जाता है। जैसे—

त खलु स उपरतो यत्प वत्तभो जनः स्मरति । मा० मा० पु० ३
उपरताप्यनुपरता । मा० मा० प० ५६

‘प्रियङ्गु शिलापट्ट’ का वर्णन स्वप्नवासवदत्तम् तथा मालतीमाधव में समानरूप से उपलब्ध होता है ।

विद्यावदत्तरचित मुद्राराक्षस नाटक मास की नाट्यकला के अनुसरण पर ‘नाम्हन्ते’ से प्रारंभ होता है। नाबों, विचारों तथा शब्दों के प्रयोग में भी पर्याप्त साम्य है। इस नाटक में धर्ममत, काशपुष्प, सवाणम्, निवापाञ्जलि आदि शब्द मास के समान ही प्रयुक्त हुए हैं। मास के ‘सकाम’ शब्द का प्रयोग मुद्राराक्षस में भी विशेष महत्त्व दिखाने के लिए किया गया है :—

सकाम इदानीमार्ययोगधरायणो भवतु ।

स्वप्न०

स्वगतम् । एवमस्मात् गृह्यमाणेषु रवकार्यसिद्धिकामः सकामो भवत्यार्यः
मुद्रा० ३।३३ से पूर्व

मुद्राराक्षस एक ऐतिहासिक तथा राजनीतिक नाटक है । यह प्रतिज्ञायो-
गधरायण से प्रभावित है । इन दोनों नाटकों के प्रमुख पात्र चाणक्य और
योगधरायण में समान गुण लक्षित होते हैं ।

मृट्टनारायण ने वेणीसंहार नाटक, जो वीररस प्रधान है, की रचना
महामारत से उद्धृत आख्यान के आधार पर की है । यह नाटक भास के
वीर रस प्रधान एकाकी ऊरुभंग तथा द्रुतवाक्य से अत्यन्त प्रभावित प्रतीत
होता है, क्योंकि सम्पूर्ण आख्यान उसी प्रकार के प्रभावशाली वाक्यविन्यास
में प्रस्तुत किया गया है । वेणीसंहार तथा पंचरात्र के पात्रों में समानता है ।
भास का प्रभाव हर्ष के नागानन्द, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका पर भी दृष्टि-
गोचर होता है । स्वप्नवासवदत्तम् में उदयन के लिए 'शरचापहीनः कामवेवः'
प्रयुक्त हुआ है वैसे ही रत्नावली में भी 'प्रत्यक्ष एवापूर्वः कुसुमायुधः' कहकर
सादृश्य व्यक्त किया गया है । रत्नावली नाटिका में भास द्वारा चित्रित सान्ध्य-
कालीन चित्र की समानता द्रष्टव्य है :—

परिभ्रष्टो दूराद्भिरपि च संक्षिप्तकिरणो

रयं ध्यावार्धासी प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ।

स्वप्न १.१६

सन्ध्यामुष्टविशिष्टस्य फरपरिकरस्पष्टहेमारपङ्क्ति-

व्याकृत्यावस्थितोऽवस्थितिभूति नयतीर्षदक्षिणमर्कः ॥

रत्नावली ३।५

प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में वर्णित भगवत्पूजा भविमारक के चतुर्थ
अंक के आधार पर है । प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में सूक्ष्म मनोभावों का पात्ररूप
में वर्णन किया गया है जो बालचरित के शापादि के पात्रत्व-कल्पना से
मिलता-जुसता है । केरस के नाटकों पर भी भास का प्रभाव लक्षित
होता है । उनके उदयन के आख्यान के आधार पर वीणावासवदत्ता, उन्माद-
वासवदत्ता तथा तापसवत्सराजचरित आदि नाटकों का प्रणयन हुआ है ।

नाटककारों के अतिरिक्त मास का प्रभाव बाण, भारवि, माघ आदि कवियों पर भी पड़ा है। मरणोपरान्त वासवदत्ता के गुणों के स्मरण के समान ही बाणकृत कादम्बरी में भी गुणों का स्मरण वर्णित है, जैसे—

उपरतस्य तु न कमपि गुणमावहति । कादम्बरी पृ० २६५

मास द्वारा कतिपय स्थलों पर प्रयुक्त 'ध्रियते' का प्रयोग शिशुपालवध (माघकृत) के द्वितीय सर्ग में पाया जाता है।

ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कृतः सुखम् । माघ० २३५

भारविकृत किरातार्जुनीयम् के तृतीय सर्ग में मास के 'नरेन्द्रधोः सोत्साहैरेव भुज्यते' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है:—

'रम्या धरित्री तव विक्रमेण'

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्रायः सभी परवर्ती कवि मास से प्रभावित हुए हैं।

रंगमंच के पात्रों का परिचय

पुरुष पात्र

स्त्री पात्र

सूत्रधारः—नाटक का प्रारंभकर्ता रंग-मंच का अध्यक्ष।

भट्टी—पद्मावती के दो सेवक।

योग्यनारायणः—राजा का प्रधान मंत्री।

कांचुकीयः—महाराज दर्शक के अन्तः-पुर में रहने वाला सेवक। महाराज प्रद्योत का रम्य नामक मृत्यु।

ब्रह्मचारी—लावाणक ग्राम में वेदाध्ययन करने वाला एक विद्यार्थी।

राजा—वत्स देश का राजा उदयन।

विदूषकः—उदयन का मित्र वसन्तक।

वासवदत्ता—राजा की पटरानी, प्रद्योत की कन्या, भवन्तिका।

पद्मावती—भाग्येश्वर दर्शक की बहन, उदयन की दूसरी पत्नी।

तामसी—तपोवन में रहने वाली एक बूढ़ा स्त्री।

पेटी—पद्मावती की विश्वासपात्र परिचारिका।

पद्मिनिका— } पद्मावती की दो
मयुरिका— } सेविकायें।

धानी—पद्मावती की उपमाता।

धात्री—वासवदत्ता की वसुंधरा नाम की उपमाता।

विजया—उदयन की द्वारपालिका, प्रतीहारी।

केवल कथा-प्रसंग में आने वाले पात्रों का परिचय

वशंकः—मगधदेश का शासक, पद्मावती का भाई ।

प्रद्योतः—उज्जयिनी का राजा महासेन, वासवदत्ता का पिता ।

वसुधवन्—वत्सराज का मन्त्री और सेनापति ।

ब्रह्मदत्त—काम्पिल्य देश का शासक ।

आवणिः—उदयन का राज्य अपहरण करने वाला शत्रु ।

गोपालकः—प्रद्योत का पुत्र ।

पालकः—प्रद्योत का दूसरा पुत्र ।

पुष्पकः— } मविष्यवाणी करने
भद्रकः— } वाले दो सिद्ध ।

महादेवी—पद्मावती की माता ।

अवन्तिसुन्दरी—एक यक्षी ।

अङ्गारयती—प्रद्योत की राजमहिषी, वासवदत्ता की माता ।

कुञ्जरिका—पद्मावती की सेविका ।

विरचिका—उदयन की एक प्रेमिका ।

महाकविभासप्रणीतम्
स्वप्नवासवदत्तम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

(नान्दी-पाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

(Benediction; then enter the stage-manager)

प्रथम अंक में महाराज उदयन के अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त करने के निमित्त मंत्री योगन्धरायण लावाणक ग्राम में आग लगवा कर रानी तथा अपने को जल मरने की वार्ता प्रसारित करा देता है। वह रानी वासवदत्ता के साथ मगध राज्य से एक लपोवन में पहुँच कर राजकुमारी पद्मावती के पास उसे अपनी मगिनी कह कर धरोहर रूप में रख देता है। लावाणक ग्राम से आये हुए एक ब्रह्मचारी के मुख से राजा के अपनी रानी के प्रति अनन्य प्रेम को सुनकर वासवदत्ता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई साथ ही पद्मावती के मन में राजा के प्रति प्रेमाकुर उदय होता है।

टिप्पणी—(१) स्वप्नवासवदत्तम्—स्वप्ने दृष्टा वासवदत्ता स्वप्नवामवदत्ता मध्यमपदलोपी समास, स्वप्नवासवदत्ताम् अधिकृत्य कृतं नाटकम् इत्यर्थे स्वप्न-वासवदत्ता+अण्। इस नाटक का यह नामकरण पाँचवें अंक के स्वप्न-दृश्य के आधार पर हुआ है। यह स्वप्न-दृश्य अत्यन्त नाटकीय और भाव-विशिष्ट है। यहाँ उदयन वासवदत्ता के प्रथम प्रेम के चिन्तन में मग्न है, इतने में मौद आ जाती है। वासवदत्ता, जिसके विषय में वह स्वप्न देख रहा है प्रत्यक्ष रूप में आकर उसके प्रदनों का उत्तर देती है। भास अपने इस दृश्य से इतने प्रसन्न हैं कि इसी के आधार पर नाटक का नाम रख देते हैं। (२) नान्द्यन्ते—नान्द्याः अन्ते इति पष्ठो तत्पुरुष समास। नन्दयतीति नन्दः+नन्द्+अच् पचादित्वात्, नन्द एव नान्दः नन्द+अण् प्रज्ञादित्वात्, नान्द+डीप्=नान्दी। नाटक आरम्भ करने से पहले उसकी निविष्टन समाप्ति के लिए देवता आदि की जो स्तुति की जाती है, उसे नान्दी कहते हैं। इसका लक्षण यह है—‘भासीर्चनसयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते। देवद्विजनुपादीनां तस्मात्तान्दीति सज्जिता’ ॥ (साहित्यदर्पण) अर्थात्, देवता, ब्राह्मण

और राजा आदि की भारीवाँद युक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती है, घतः इसका नाम नान्दी पड़ा, नाट्य-प्रदोष में नान्दी का लक्षण लिखा है—‘नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः । यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी तन्मादियं ना कथितेह नान्दी’ ॥ अथवा मंगल गान-वाद्य को नान्दी कहते हैं जो इस नाटक में रंग-मंच पर न होकर नेपथ्य में (पदों के पीछे) होता है । अन्य नाट्यकारों से भास के नाटकों की यही विलक्षणता है । ‘नान्द्यन्ते’ में भाव में सप्तमी है । ततः—उसके बाद । यह शब्द प्रकृत स्थल में अनावश्यक प्रतीत होता है; क्योंकि ‘नान्द्यन्ते’ से ही ‘ततः’ का अर्थ प्रकट हो जाता है । ३) सूत्रधारः—सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति विग्रहे सूत्र+घृ+णिच्+अण् ‘कर्मण्यण्’ इति सूत्रेण । सूत्रधार उस प्रधान अभिनेता को कहते हैं, जो रंग-मंच पर घटित होने वाली घटना को नियमित रूप से चलाता है । वह रंग-मंच का अधिष्ठाता होता है । वह प्रस्तावना या स्थापना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है । इसकी परिभाषा यह है—‘नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सवीजकम् । रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः’ ॥ अर्थात् नाट्य की उत्पत्ति के साथ उसके अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं और (उसका धारण करने वाला तथा) रंग-मंच के देवता का पूजन करने वाला सूत्रधार कहलाता है ।

सूत्रधारः—उदयनवेन्दुसवर्णवासवदत्ताबली बलस्य त्वाम् ।

पद्मावतीर्णपूर्णो वसन्तकञ्चो भुजो पाताम् ॥१॥

अन्वय—उदयनवेन्दुसवर्णो आसवदत्ताबली पद्मावतीर्णपूर्णो वसन्तकञ्चो बलस्य भुजो त्वा पाताम् ॥१॥

संस्कृत टीका—उदये—उदयसमये, नवः—नवीनः, यः इन्दुः—चन्द्रः, तेन सवर्णो—तुल्यवर्णो तत्सदृशो घबली इति यावत्, आसवदत्ताबली—दत्तः अपितः आसवः मद्य यस्य सा आसवदत्ता तथाविधा अवला रेवती नाम्नी बलरामप्रिया याम्या तो अथवा आसवेन मद्येन दत्तम् उत्पादितम् आ समन्तात् बल शक्तिः ययोः तो पराक्रमशीली पद्मावतीर्णपूर्णो—पद्मा लक्ष्मीं शोभायामिति यावत् अवतीर्णो प्राप्तो तथाविधो च पूर्णो सामुद्रिकोक्तशुभलक्षणसम्पन्नो अथवा पद्मायाः लक्ष्म्याः अवतीर्णेन आविर्भावेन वासेन इति यावत् पूर्णो सनाथो सर्वदा श्रीसम्पन्नो इत्यर्थः, वसन्तकञ्चो—वसन्तऋतुरिव कञ्चो मनोहरो, बलस्य—बलरामस्य, भुजो—बाहु, त्वा—नाटकद्रष्टृवर्गं, पाताम्—रसताम् ॥१॥

सूत्रधार—उदयकालीन नवीन चन्द्र के समान (ललाई लिये हुई उजले) रङ्ग वाली, अपनी प्रिया रेवती को मद्य देनेवाली (अथवा मद्य पान से विशेष बलशाली), श्री तथा शुभ लक्षणों से सम्पन्न और वस्तुतः ऋतु के समान मनोहर बलदेव जी की दोनों भुजाएँ आप लोगों (दशक वृन्द) की रक्षा करें ॥१॥

Stage Manager—May the arms of Bala—which resemble the new rising moon, invigorated by the wine, satisfied by the incarnation of Padma (goddess of wealth) and beautiful like the spring season, protect you.

टिप्पणी—(१) उदयनवेन्दुसवर्णौ—उदीयमान नवीन चन्द्रमा के समान कान्ति वाली । नवश्चासी इन्दुः नवेन्दुः कर्मधारय समास, उदयकालिकः नवेन्दुः उदयनवेन्दुः मध्यमपदलोपी समास, समानः वर्णः कान्तिः ययोः तौ सवर्णौ 'समानस्य ऋद्धन्तस्यमूर्धप्रमृत्पदकौ' इति सूत्रेण ममानस्य म आदेशः, उदयनवेन्दुना सवर्णौ इति उदयनवेन्दुसवर्णौ तृतीया तत्पुरुष समास (२) आसवदत्तावली—दिया गया है मद्य जिसको ऐसी अबला बलरामपत्नी (रेवती) (१) अर्थात् अपनी प्रियतमा रेवती को मद्य देने वाली (२) (मद्यपान से विशेष बलशाली) दोनों भुजाएँ अथवा (३) जो (बलराम की) भुजाएँ मद्यपान के कारण बलहीन हो गई हैं । प्रथम व्याख्या से बलराम की भावुकता तथा प्रेमी-प्रकृति की मूचना मिलती है । दूसरी में मद्यपान से विशेष बलशाली भुजाएँ रक्षणक्षमता की द्योतक हैं । ये दो व्याख्याएँ युक्ति-संगत हैं पर तीसरी व्याख्या उपयुक्त प्रतीत नहीं होती, क्योंकि बलहीन भुजाएँ रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकती । दत्तः आसवः यस्य सा आसवदत्ता, बहुव्रीहिसमासे कृते 'वाह्तिगम्यादिषु' इति सूत्रेण दत्तशब्दस्य परनिपातः, आसवदत्ता चासी अबला कर्मधारय समास । किन्तु इस प्रकार समास करने से 'आसवदत्तावली' यह शब्द 'भुजौ' का विशेषण नहीं बनेगा । इसलिए आसमन्तात् बलम् आबलम् प्रादितत्पुरुष समास, आसवेन दत्तम् आसवदत्तम् तृतीया तत्पुरुष, तादृशम् आबलम् ययो बहुव्रीहि समास, तौ आसवदत्तावली—इस प्रकार समास करना ही उचित होगा । कोई यहाँ आसवेन दत्तम् अबलं=बलभावो याम्या तौ—इस प्रकार समास करते हैं । यद्यपि ऐसे समास से शब्दसिद्धि में कोई बाधा नहीं पहुँचेगी, पर इसका अर्थ मंगल के प्रधान उद्देश्य के विरुद्ध जाता है; क्योंकि बलहीन भुजाएँ किसी की रक्षा नहीं कर सकती । (३) आसव—मद्य । आस उपसर्गपूर्वक पुं (अभिपदे) घातु से भप् प्रत्यय । (४) अवतीर्ण—अवतार—पद्मायाः अवतीर्ण तै न पूर्णा—लक्ष्मी के अवतार से युक्त

अर्थात् श्री (शोभा) से सम्पन्न। अथवा पद्मस्य अवतीर्णम् अवतारः कमल के अवतरण से पूर्ण अथवा कमल के समान कोमल। तृतीया तत्पुरुष। अव/तृ+क्त् (त)। (५) वसन्तकम्प्री—वसन्त ऋतु के समान मनोहर। वसन्त इव कम्प्री उपमित समास। (६) कम्प्री—मनोहर, कमनीय/कम्+२ 'नमिकम्पित्यजसकर्महि-सदीपो रः' इति सूत्रेण। (७) बलस्य—बलराम की। (८) त्वाम्—तुमको आप लोगों को अर्थात् दशंकी को। (९) भुजौ—दोनों भुजाएँ। (१०) पाताम्—रक्षा करें अर्थात् बलराम की भुजाएँ तुम लोगो (दशंकी) की रक्षा करें।

यहाँ 'उदयनवेन्दुसवर्णी' इस विशेषण से रवमावतः गौर तथा मञ्जु-पान के कारण कुछ ललाई लिए हुए बलरामजी की भुजाओं का सौन्दर्य प्रकट किया गया है। 'वासवदत्ताबली' इस विशेषण से उनकी भुजाओं की रक्षण-योग्यता सिद्ध होती है। 'पद्मावतीर्णपूर्णी' इस विशेषण से यह दिखाया गया है कि बलरामजी की वाँहें आजानुलम्बी तथा शुभलक्षणशाली हैं। 'वसन्तकम्प्री' इस विशेषण से वसन्त के समान सर्वजनकमनीयता सूचित होती है।

इस श्लोक में कवि ने मुद्रालंकार द्वारा बड़ी निपुणता से उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती, वसन्तक आदि मुख्य पात्रों के नाम की सूचना दी है। उनमें भी उदयन प्रधान पात्र है। इसलिए पहले ही उसका नाम निर्दिष्ट हुआ है। मुद्रालंकार उसे कहते हैं, जहाँ प्रकृतार्थबोधक शब्दों से सूच्यार्थ की सूचना मिल जाती है या उन शब्दों से किसी नाम का बोध हो जाता है। यहाँ आर्या छंद है। इसका लक्षण यह है—'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थेऽपि पञ्चदश सा आर्या' ॥१॥

एवमार्यमिथान् विज्ञापयामि। अये ! किं नृ खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अंग ! पदयामि।

संस्कृत टीका—एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण, आर्यमिथान्—आर्याः कुलशील-दयाधर्मसत्त्वादिसद्गुणसम्पन्नाः सम्प्राः ते च ते मिथ्याः पूज्याः तान्, विज्ञापयामि आवेदयामि। अये ! आदर्शम्, मयि—सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे—आवेदनतत्परे, सति, किं नृ खलु—कुतो नृ खलु, शब्द इव—अव्यक्तः कलकल इव, श्रूयते—आकर्ष्यते। अंग—सम्भ्रमे, पदयामि—केन कुतः कीदृशः शब्दः कृतः इति सम्पक् प्रकारेण ज्ञापयामि इति भावः।

आप श्रीमानों से मेरा यह निवेदन है कि.....प्ररे ! निवेदन करने में मेरे व्यस्त होते ही यह शब्द कहाँ से सुनाई पड़ा ! अच्छा देखू ।

Thus I beg to inform the worthy gentlemen. Oh, why to be sure, some noise is heard when I am busy in making the request. Oh, I see.

टिप्पणी—(१) आर्यमिश्रान्—सम्मानित सदस्यों को । 'गौरवितास्त्वार्य-मिश्राः' इति त्रिकाण्डशेषः । आर्याश्च ते मिश्राः इति आर्यमिश्राः तान् कर्मधारय समास । अर्यंते सेव्यत्वेन गम्यन्ते इति आर्यः, √कृ+ण्यत् । वशिष्ठ के अनुसार आर्यं उसी को कहते हैं जो दृढ़ता से कर्तव्य कर्म का पालन और अकर्तव्य की उपेक्षा करते हुए अपने धर्म पर डटा रहता है—'कर्तव्यमाचरन् कर्म ह्यकर्तव्यमाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ॥' परन्तु भरत ने आर्य का लक्षण यह किया है—'कुलं गौल दया दान धर्मः मृत्यं कृतज्ञता । अद्रोह इति येव्वेतत्ता-नार्यान् संप्रचक्षते ॥' मिश्र—यह एक उपाधि है जो सम्भ्रान्त व्यक्ति के नाम के साथ लगायी जाती थी । यह सदा बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है । इसका प्रयोग विष्णुपुराण में भी मिलता है—'मरीचिमिश्रैः दक्षेण' √मिश्र+अच् । (२) विज्ञापयामि—निवेदन करता हूँ । वि+ज्ञा+णिच्, पुक् भागम+लट्—णिप् । (३) अये—यह क्रोध, आश्चर्य विषाद द्योतक सम्बोधनवाची अव्यय है । √इण्+एच् । (४) अंग—सम्बोधनवाची अव्यय शब्द, जिसके अर्थ होते हैं—'बहुत अच्छा', 'धीमन् ! बहुत ठीक', 'अवश्य', 'सत्य है', 'अंगीकार है' इत्यादि । √अण्+अच् (अ) । (५) पश्यामि—देखता हूँ, पता लगाता हूँ । उ० पु० ए० व० । यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इस मूत्र से भविष्य के अर्थ में लट् सकार हुआ । (६) विज्ञापनम्यग्रे—निवेदन करने में व्यस्त होने पर । (७) शब्द इव श्रूयते—कुछ इस प्रकार का अव्यक्त शब्द सुनाई पड़ता है । इव का यहाँ पर अर्थ है 'कुछ इस प्रकार का ।'

(नेपथ्ये)

उत्सरह उत्सरह श्रय्या ! उत्सरह [उत्सरत उत्सरत आर्याः! उत्सरत ।]

(नेपथ्य में) हटो, हटो, महाशयो ! हटो ।

(Behind the Curtain) Get away, get away, gentlemen, get away.

टिप्पणी—(१) नेपथ्ये—नेपथ्य शब्द पर्दा और पर्दे के पीछे रूप-धारण-

स्थल दोनों को कहते हैं—'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिः प्रसाधनम् इत्यजयः । 'आकल्पवेपी नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः । इसका लक्षण यह है—'कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते' अर्थात् जहाँ अभिनेता अपने को सजाते और अभिनयोचित वेष धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं । ✓नी+विच्, नेः नेता तस्य पथ्यम् । (२) उत्तरत—हटो (मार्ग छोड़कर दूर हो) उत्+सृ+लोट् म० पु० बहु० व० । मार्ग परित्यज्य दूरे भवत । यहाँ सम्भ्रम (हड़बड़ी) सूचित करने के लिए इस क्रिया का दो बार प्रयोग हुआ है । कहा भी है—'सम्भ्रमेण प्रवृत्तो यथेष्टम् अनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः' अर्थात् उद्विग्नता, त्वरा या भय की अभिव्यक्ति में किसी शब्द को दो बार या उतने बार तक दुहराया जा सकता है जब तक कि वक्ता का तात्पर्य अभिप्रेत व्यक्ति को स्पष्ट न हो जाय ।

सूत्रधारः—भवतु विज्ञातम् ।

भृत्यमंगधराजस्य स्निग्धः कन्यानुगामिभिः ।

घृष्टमुत्सार्यन्ते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥२॥ (निष्क्रान्तः)

अन्वय—तपोवनगतः सर्वो जनः मगधराजस्य कन्यानुगामिभिः स्निग्धः भृत्यैः घृष्टम् उत्सार्यन्ते ॥२॥

संस्कृत टीका—तपोवनगतः—मुन्याश्रमस्थितः, सर्वः—स्त्रीबृद्धबालपुरुषादिः, जनः—लोकः, मगधराजस्य—मगधाधिपतेः, कन्यानुगामिभिः—पुत्रीपरिचारकैः, स्निग्धैः—स्नेहपात्रैः, भृत्यैः—सेवकैः, घृष्टम्—घृष्टतापूर्वकम् उद्धत यथा स्यात् तथा, उत्सार्यन्ते—दूरीक्रियते ॥२॥

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया ।

मगधराज की पुत्री के पीछे-पीछे चलने वाले प्रिय सेवकमण तपोवन में रहने वाले लोगों को घृष्टतापूर्वक हटा रहे हैं ॥२॥ (चला गया) प्रस्तावना समाप्त ।

Stage Manager—Well ! I know. All the people in the penance grove are being rudely driven away by the loyal servants of the Magadh king who are following the princess. (Exit) (End of Prologue)

टिप्पणी—(१) भवतु विज्ञातम्—(विशेषण ज्ञातम्) अच्छी तरह जान गया । भवतु—मृ लोट्-प्र० मु० ए० व० । (२) तपोवनगतः—तप या तपस्या का वन अथवा तपस्या करने के लिए वन । तपोवन में रहने वाले । तपसः तपस्यार्थं वा वनम् तपोवनम् पठ्ठी-तत्पुरुष समास, जैसे 'अश्वस्य घासः अश्वार्थं वा घासः अश्वघासः' प्रयोग होता है

उसी तरह यह भी है । फिर तपोवनं गतः तपोवनगतः इसमें द्वितीया तत्पुरुषसमास हुआ । (३) मगधराजस्य—मगध देश या मगध-निवासियों के राजा का । मगधस्य राजा मगधराजः पण्डो तत्पुरुष, 'राजाहः सखिम्यटच्' इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय । (४) कन्यानुगामिभिः—कन्या के पीछे चलने वाले (सेवकों) द्वारा । कन्याम् अनुगन्तुं शीलं येषामस्ति इति विग्रहे कन्या अनु√गम्+णिनि=कन्यानुगामिनः, तैः । (५) स्निग्धैः—स्नेही । √स्निह्+क्त (त) । (६) भृत्यैः—नौकरों से । √भृ+क्यप्, 'ह्रस्वस्य णिनि कृति लुक्' इत्यनेन तुगागमः । (७) घृष्टम्—उच्छृंखलता से, योग्यायोग्य का बिना विचार किए गरदनियों आदि देकर । राजसेवक लोग राजकुमारी के कृपापात्र होने के कारण घमंडी थे । इसलिए वे तपोवनवासियों को अशिष्टता या बेमुरीवती से हटा रहे थे । उत्साप्ये—हटाया जा रहा है । उत्√सृ+णिच्+लट् (कर्मणि), यक् । (८) निष्क्रान्तः—निकल गया या चला गया । 'सभी लोग हटायें जा रहे हैं' यह कहता हुआ सूत्रधार रंग-मंच से चला जाता है । निस्√क्रम्+क्त (त) । (९) स्थापना—स्थाप्यते प्रस्तूयते कथावस्तु यस्या सा स्थापना, 'जिसमें नाटक की कथावस्तु स्थापित या प्रस्तावित की जाती है, उसे स्थापना या प्रस्तावना कहते हैं । इन्हीं को आमुख भी कहा गया है । क्योंकि तीनों के लक्षणों में समानता है । 'प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेत्ततः ।' (साहित्यदर्पण ६, २६) अर्थात् स्थापक प्रविष्ट होकर काव्य की (नाटकीय वस्तु की) स्थापना करे उसे 'स्थापना' कहते हैं । 'नटी विद्रूपको यापि पारिषाद्विक एव वा । सूत्रधारेण सहिताः सलाप यत्र कुर्वते । । चित्रं वाच्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मयिः । आमुख तत्तु विज्ञेय नाम्ना प्रस्तावनापि सा । । (साहित्यदर्पण ६, ३२) 'सूत्रधारी नटी व्रूते मारिप वा विद्रूपकम् । स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् । ।' (दशरूपक) अर्थान् जहाँ सूत्रधार विचित्र प्रकार से नटी, मारिप, विद्रूपक या पारिषाद्विक से ऐसी बात कहे, जिससे प्रस्तुत नाटक की कथा की सूचना हो जाय, उसे 'आमुख' कहते हैं, 'प्रस्तावना' भी उसी का नाम है । इस प्रस्तावना का नाम प्रयोगातिशय है । जैसा कि दर्पणकार ने लिखा है—'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते । तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ।'

नाम के तरह नाटकों में से ग्यारह नाटकों में इस 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है । केवल 'बालचरित' और 'कर्णमार' में इसका प्रयोग नहीं हुआ है ।

(प्रविश्य)

भट्टी—उत्सरह उत्सरह श्रय्या ! उत्सरह । [उत्सरत् उत्सरत् श्रय्याः ! उत्सरत् ।]

(प्रवेग कर) दो सिनाही—हटो, हटो, लोगो ! हटो !

(Entering) Two soldiers—Get away, get away gentlemen, get away.

[ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो योगन्धरायणः श्रावन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च]

(तदनन्तर संन्यासी का वेष धारण किये हुए योगन्धरायण और मालवा की स्त्रियों का-सा पहिनावा पहने हुई वासवदत्ता का प्रवेश)

(Then enter Yougandharayana in the garb of an ascetic and Vasavadatta, in the disguise of Avantika.)

टिप्पणी—(१) परिव्राजकवेषः—(कार्यवश) संन्यासी का वेष बनाने-वाला । परित्यज्य सर्वं ध्रजतीति परिव्राजकः=संन्यासी' परि+व्रज्+प्वल्—अक तस्यैव वेषो यस्य सः कार्यवशात् परिधृतसंन्यासिरूप इत्यर्थः बहुव्रीहि समास । (२) योगन्धरायण—वत्सराज उदयन का मंत्री । (३) श्रावन्तिकावेषधारिणी—अवन्ति देश की स्त्रियों का-सा वेष धारण किये हुए । अवन्तिजनपदसम्भवाः अङ्गनाः श्रावन्तिकाः तासामिव वेषं धारयतीति श्रावन्तिकावेष+धृ+णिनि+ङीप्, अवन्त्या मवाः श्रावन्तिकाः, अवन्ति+ठञ्—इक । (४) वासवदत्ता—उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री और उदयन की ज्येष्ठा पत्नी ।

योगन्धरायणः—(कर्णं दत्त्वा) कथमिहाप्युत्सार्पते ! कुतः,
धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यंश्चलं विस्मितः
कोऽयं भो निभूतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याजया ॥३॥

अन्वय—धीरस्य, वन्यः फलैः तुष्टस्य वसतः, वल्कलवतः, मानार्हस्य, आश्रम-
संश्रितस्य जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते । भो उत्सिक्तः, विनयादपेतपुरुषः, चलैः
भाग्यैः विस्मितः, अयं कः इदं निभूतम् तपोवनम् आजया ग्रामीकरोति ॥३॥

संस्कृत टीका—(अन) धीरस्य—धैर्यवतः, धर्मैः—धनोत्पत्तैः फलैः, पुष्टस्य—
तृप्तस्य, वसतः—कृतनिवासस्य, वल्कलवतः—वृक्षत्वधारिणः, मानाहंस्य
सत्कारयोग्यस्य, आश्रमसंश्रितस्य—आश्रमे—तत्समूहं पण्यदिनिमित्तं कुटीरम्,
संश्रितस्य—आश्रितवतः, जनस्य—लोकस्य, (अपि) श्रासः—भयम्, समुत्साहते—
जन्मते । मोः—सर्वसाधारणसम्बोधनमिदम्, उत्तिष्ठतः—उद्घुष्टः, विनयादपेत-
पुरुषः—विनयात्—नम्रतायाः, अपेतः—रहितः, पुरुषः—जनः, चर्मैः—चञ्चलैः,
विनाशशीलैरित्यर्थः, भाग्यैः—भाग्यलभ्यैः सम्पदादिभिः, विस्मितः—शङ्कितः
अयं कः—एषः कः, (अस्ति, यः) इदं—दृश्यमानं निमित्तं—शान्तं, तपोवनम्—
आश्रमस्थानम्, आश्रया—आदेशेन, आमीकरोति—ग्रामतुल्यता जनयति ? ॥३॥

योगधरायण—(कान लयाकर) क्या यहाँ भी लोगों को हटाया जाता है।
क्योंकि, (यहाँ) स्थिर चित्तवाने, वन के फूलों से सन्तुष्ट रहने वाले, वृक्षों की
छाँव के वस्त्र पहनने वाले और आदर करने योग्य आश्रमनिवासी जनों को भी
भयभीत किया जा रहा है। अरे ! उद्घुष्ट, नम्रता से रहित और नस्वर घन
आदि से गर्विला यह कौन आदमी है जो इस शान्त उपवन को (अपनी) आजा
से दूषित कर रहा है ? ॥३॥

Yaug. (listening) what ! are the people being turned away
even from here. ? Why

Alarm the sober, respectable inmates of this sanctuary,
subsisting on and pleased by the wild fruits and clothed in the
bark of trees ? Oh, who is this unmannerly man lacking in
modesty and puffed up with pride of fickle fortune that is turn-
ing this quiet place of hermitage into a (busy) village.

टिप्पणी—(१) कथमिहाप्युत्सायते—योगधरायण के कहते का भाव्य
है कि यह तो तपोवन है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को विचरण करने की स्वतन्त्रता है,
आश्चर्य है यहाँ भी लोग हटाये जा रहे हैं। कैसे (क्या) यहाँ भी हटाया जा रहा है।
(२) कुतः—कहाँ से क्योंकि । (३) धीरस्य—सांसारिक मोह-मदामों के परि-
त्याग रूप धर्म से युक्त । कालिदास ने कुमारसम्भव में 'धीर' उसी को कहा है,
जिसका चित्त विकारोत्पादक साधनों के रहते हुए भी बिभ्रत नहीं होता है—
'विकारहेतो सति विव्रियन्ते येषा न वेदासि त एव धीराः' । वस्तुतः धीर पुरुष
का लक्षण तो इस श्लोक में मिलता है—'कान्ताकटाक्षविशिष्टा न लुण्ठन्ति यस्य
चित्तं न निर्देहति कोपकृष्टानुतापः । कथन्ति मूरिविषयाच्च न भोमपाशाः लोकमय
जयति कृत्स्नमिदं स धीरः' ॥ धिपं=बुद्धिं राति=ददाति इति धी/ रा+क

(४) वन्यैः फलैः तुष्टस्य वसतः—वन मे उत्पन्न होने वाले फलों से ही संतुष्ट होकर रहने वाले । वने जातानि इति वन्यानि वन+यत्, तैः वन्यैः । (५) आश्रम-संश्रितस्य—(ससार से छुटकारा पाने के लिए) आश्रम का सहारा लेने वाले । आश्रमं संश्रितः इति आश्रमसंश्रितः तस्य । 'द्वितीया श्रितातीत'—इत्यादि सूत्र से द्वितीया तत्पुरुष समास हुआ । (६) मानार्हस्य—ग्राह्य पाने योग्य व्यक्ति का । मानं ग्रहंतीति मानार्हः तस्य । (७) वल्कलवतः—वृक्ष की छाल धारण करने वाले के । वल्कलम् अस्ति अस्य इति वल्कलवान् तस्य प० ए० व० वल्कल+मनुप् (वत्) । (८) आसः—मय । (९) समुत्पाद्यते—उत्पन्न किया जा रहा है । सम्+उत्+पद्+णिच् (कर्मणि) । (१०) उत्सिक्तः—मर्यादा का उल्लंघन करने वाला । उत्+सिच्+क्त (त) । (११) विनयादपेतपुरुषः—विनयहीन मनुष्य । विनयात् अपेतः इति विनयादपेतः अलुक् समास विनयादपेतश्चासौ पुरुष इति विनयादपेतपुरुषः कर्मधारय समास । यहाँ 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' इस नियम के अनुसार समास हुआ । यदि 'विनयादपेतः' पाठ रखे तो इसकी आवश्यकता न पड़े । (१२) भार्यैः—भार्य से प्राप्त होने वाली सम्पदाओं से । सम्पत्तिको क्षणभंगुर माना गया है—'भार्याः पादरजोपमाः' । इसलिए इसका विशेषण 'चलैः' दिया । (१३) विस्मितः—घमंडी । वि+स्मि+क्त (त) । घन आदि का घमंड करना अनुचित है—'मा कुरु घनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम्' । (१४) निभृतम्—शान्त, एकान्त । नि+भृ+क्त (त) । (१५) ग्रामीकरोति—गाँव के समान अशान्त बना रहा है अर्थात् जैसे गाँव का वातावरण अशान्त रहता है उसी तरह इस पवित्र एवं शान्तिमय आश्रम के वातावरण को भी क्षुब्ध कर रहा है । अप्राम ग्रामं करोति इति ग्राम+क्वि+कृ+लट्—ति, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकस्तरि च्विः (अभ्रततद्भाव इति वक्तव्यम्)' इत्यनेन च्वि प्रत्ययः, 'अस्य च्वौ' इति सूत्रेण ग्रामाकारस्य ईत्वम्? यहाँ तात्पर्यायं यह है कि जहाँ उजड़्ड लोग वास करते हैं ऐसे गाँवों में ही इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये न कि मुनियों के शान्त आश्रमों में । अतएव यह घृष्टता अत्यन्त अनुचित है । इस श्लोक में परिकर और शार्दूलविक्रीडित छंद है । 'विशेषणैर्यत्सा कूर्तरक्तः परिकरस्तु सः' अर्थात् अभिप्राययुक्त विशेषणों के द्वारा जो कथन किया जाय वह परिकर अलंकार होता है । तल्लक्षण वृत्तरत्नाकरे—सूर्याश्वमेज-स्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥३॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उत्सारेदि ? [भार्य ! क एष उत्सार-यति ?]

वासवदत्ता—आर्य ? यह कौन (लोगों को) हटा रहा है ?

Vasava—Venerable Sir, who is he that is away (people) ?

योगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

योगन्धरायण—महारानी ! जो अपने को धर्म से हटा रहा है (अर्थात् जो लोगों को यहाँ से हटा रहा है, वह पाप-भागी होया) ।

Young —ladyship whoever keeps himself away from duty.

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एवं वत्तुकामा, अहं वि णाम उत्सार-
इद्वद्वा होमि त्ति । [आर्य ! नह्येवं ववतुकामा, अहमपि
नमोत्सारयितव्या भवामीति ।]

वासवदत्ता—आर्य ! मैं यह नहीं कहना चाहती, मेरा मतलब यह है कि
क्या मैं भी हटाई जाऊँगी ।

Vasava.—Venerable Sir I did not intend that (I meant)
whether I too would have really to keep aside.

योगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि देवतान्यवधूयन्ते ।

योगन्धरायण—महारानी ! इस प्रकार विदित न होने पर तो देवताओं
का भी अपमान होता है ।

Young —Your ladyship unknown deities are thus dis-
regarded.

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि, जह् अअं
परिभवो । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं
परिभवः ।]

वासवदत्ता—आर्य ! यकान (भूझे) उठना दुःख नहीं दे रही है जितना
यह अपमान !

Vasava.—Revered Sir, fatigue does not cause as much
worry as this insult.

टिप्पणी—(१) नह्येवं ववतुकामा—इस प्रकार (कहने की मेरी इच्छा नहीं
है । अर्थात् मेरे पूछने का यह तात्पर्य नहीं है कि कौन वह व्यक्ति है जो इस प्रकार
एकान्त धान्त तपोवन में भी लोगों को भागे से हटा रहा है और क्या वह इस

अत्याचार का परिणाम जानता है कि नहीं। मैं तो यह सोच रही हूँ कि जब मैं यात्रा करती थी तब मेरे रक्षक गण मेरी सुविधा के लिये दूसरे लोगों को मार्ग से हटा देते थे आज मैं भी साधारण लोगो की तरह किसी के भृत्यो द्वारा हटायी जाऊँगी। मैं यही अपना दुर्दैव आपसे पूछना चाहती हूँ। वक्तुं कामः—प्रमिलापः यस्याः सा वक्तुकामा बहुव्रीहि समास। यहाँ 'लुम्बोदवश्यमः कृत्ये तुंकामन-सोरपि। समो वा हितततयोर्भासस्य पचि युद्धत्रोः' इस कारिका के बल से 'वक्तुम्' का म् लुप्त हो जाता है। (२) नामोत्सारयितव्या भवामीति—क्या मैं भी हटाई जाऊँगी। वासवदत्ता के कहने का तात्पर्य यह है कि महारानी होकर भी मैं क्या साधारण व्यक्तियों की भाँति अपमानपूर्वक यहाँ से हटाई जाऊँगी। (३) एवम-निर्जातानि दैवतान्यवधूयन्ते—इस प्रकार बिना पहचाने देवता भी फटकारे जाते हैं। अर्थात् देवता की सब उपासना करते हैं और कोई स्वप्न में भी उसका अपमान नहीं चाहता, परन्तु यदि वह भी अज्ञात वेप में सामने आये तो उसका अपमान हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है। (४) दैवतानि—देवता। देव एव इति देव+तल् (स्वार्थे)+टाप् स्त्रियाम्=देवता; देवता एव दैवतम्, देवता+धण् (स्वार्थे) तानि दैवतानि। (५) अवधूयन्ते—तिरस्कृत होते हैं, अपमानित किये जाते हैं। तिरस्क्रियन्ते। अव+धू+लट् (कर्मणि), यक् प्रत्यय। (६) तथा परिधमः परिस्तेबं नोत्पादयति यथायं परिभवः—यहाँ वासवदत्ता योगन्धरायण से कहती है कि मैं इतनी दूर चलकर आई हूँ। पहले कमी चलने का अभ्यास नहीं था, अतः मुझे मारी थकावट है। परन्तु मेरे विचार में यह थकावट इतनी दुःखदायिनी नहीं है जितना यह हटाये जाने का अपमान। हमारे जैसे व्यक्ति के लिए अपमान मृत्यु के तुल्य है। अतः इस भावी अपमान से मुझे बड़ा क्लेश हो रहा है। योगन्धरायणः—भूवतोऽजित एव विषयोऽत्रभवत्या। नात्र चिन्ता कार्या। कुतः,

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-

च्छस्ताप्यं गमिष्यसि पुनर्यिजयेन भर्तुः।

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना

चक्रारपट्टिस्तरिय गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥४॥

अर्थ—पूर्वं त्वया अपि एवं दत्ताप्यम् अभिमतं गतम् आसीत्। पुनः भर्तुः विजयेन गमिष्यसि। जगतः भाग्यपंक्तिः चक्रारपट्टिः इव कालक्रमेण परिवर्तमाना गच्छति ॥४॥

संस्कृत टीका—पूर्व—पूर्वस्मिन् काले नगर-निवास-समये इत्यर्थः, त्वया अपि—श्रीनत्या अपि, एवम्—ईदृशं, श्लाघ्यं—प्रशंसनीयम्, प्रतिमतम्—धमीष्टम्, गतं—प्राप्तम्, आसीत् । पुनः—मूयः, भर्तुः—स्वामिनः, विजयेन—राज्यप्राप्तिलक्षणेन जयेन (पूर्वोक्तां दशां) गमिष्यसि—यास्यसि । (यतो हि) जगतः—लोकस्य, भाग्यपवितः—अदृष्टपरम्परा, चक्रारपवितः—चक्रस्य रथा-ङ्गस्य अराणाम् नाभिनेम्यन्तरालवर्तिकाष्टखण्डानां पवितः श्रेणिः, इव—तदत्, कालक्रमेण—समयानुसारेण, परिवर्तमाना—अमन्ती, गच्छति—चलति । कपिकूलगुरुणा तत्र भवता कालिदासेनायमेव भावः स्वरचितमेवदूते व्यक्तः—कस्यकारतं सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा, नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रमेमिक्रमेण । अपरस्वामिज्ञानशाकुन्तले—तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसन्नोदयाम्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥४॥ अयं भावः—पूर्वं कोशाम्बी-निवासकाले पद्मावती इयं भवती अपि परिजनाचरितसमुचितसमुदाचारपूर्वकं स्वेच्छया गता आसीत् । अग्रेऽपि स्वामिनि विजयश्रिया समलकृते सति इत्यमेव गमनसुखमनुभविष्यति । नात्र संदेहः कार्यः यतो हि मनुष्याणां शुभानि अशुभानि च भाग्येयानि समय-मायनसार तथैव परिवर्तन्ते यथा चक्रमतानि अराणि क्रमेण उपरि अयश्च गच्छन्ति दृश्यन्ते । घतएवास्मिन् विधुरे काले त्वया धैर्यं धार्यम् । अपमानाद्य विभेदव्यम् तथा चोक्तम्—‘आत्मानं शोकहर्षाभ्यां धनुम्यामिव नार्पयेत् ।’ हर्षं शोके च समभावेन वर्तितव्यमिति विशदार्थः ॥४॥

योगन्धरापण—महारानी ने इस विषय का उपमोग करके (कार्यवश) छोड़ दिया है । इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । क्योंकि,

पहले आप भी इसी प्रकार श्लाघनीय मनोरथ को प्राप्त करती थी । (अर्थात् इसी तरह राजसी ठाट-बाट से चलती थी ।) और पुनः पतिदेव की निजय होने पर (इसी प्रकार) चलेगी । (क्योंकि) लोगों का भाग्य-चक्र पहिये के अरों की भाँति समयानुसार घूमता हुआ चलता है (अर्थात् जिस प्रकार रथ के पहिये के अरे कभी नीचे जाते हैं कभी ऊपर उसी प्रकार मनुष्य का भाग्य भी कभी सुख देता है कभी दुःख) ॥४॥

Young.—This thing has been enjoyed and left by your ladyship. You should not worry now, why.

Formerly you had enjoyed your (mind's) desires and your husband's triumph will again restore these praise-worthy things

to you. For human fortunes have their rise and fall like the spokes in a revolving wheel.

टिप्पणी—(१) भुक्तोज्झितः—भोग लेने के बाद त्यागा हुआ। यहाँ योगन्धरायण के कहने का तात्पर्य यह है कि पहले वासवदत्ता भी इसी प्रकार राजकीय समारोह से चलती थी, जब कि उसके भी भृत्यगण लोगों को रास्ते में हटा दिया करते थे। किन्तु इस समय कार्य-विशेष की सिद्धि के लिए उसने अपने स्वरूप को छिपा कर राजसी ठाट-बाट का परित्याग कर दिया है। अतएव उसने जो कार्य स्वेच्छा से किया है, उसमें खेद का अनुभव करना अनुचित है। पूर्व भुक्तः पश्चात् उज्झितः इति विग्रहे 'पूर्वकालकसर्वजरत्नपुराणनवकेवलाः' इति सूत्रेण समासः। (२) विषयोऽशभवत्या—पूज्य आपके द्वारा यह विषय अर्थात् राजसी ठाट-बाट से चलना। भवान् अथवा भवती के पूर्व भ्रमया तत्र का प्रयोग सम्मानसूचक होता है यथा तत्र भवान् कालिदासः। राजमहिषी वासवदत्ता के लिए 'भ्रमभवती' का प्रयोग किया गया है। तृ० ए० व०। (३) नात्र चिन्ता कार्या—इस विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। योगन्धरायण वत्सेश्वरी वामधदत्ता से कहता है कि आप भी पहले इसी राजकीय मर्यादा का पालन करती थी। सेवक लोग आगे-आगे यह घोषणा करते थे कि मार्ग से दूर हटो, महारानी जो आ रही हैं पर इस समय किसी विशेष कार्यसिद्धि के निमित्त आपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर स्वेच्छा से राजसी ठाट-बाट का परित्याग कर दिया है इसलिए आपको दुःखी नहीं होना चाहिए। (४) श्लाघ्यम्—प्रशंसनीय। (५) भर्तुः विजयेन—अपने पति महाराज उदयन के विजय (पुनः वत्सदेश का राज्य प्राप्त करने) से। (६) अभिमतम्—अभीष्ट, मनोरथ। अभि+मन्+वत् (त)। (७) परिवर्तमाना—बदलती हुई। परि+वृत्+लट्—शानच्+भुक् भागम। (८) चक्रारपङ्क्तिः—पहिये की तीलियों की श्रेणी। चक्रस्य घराः तेषां पङ्क्तिः। प० तत्पु०। (९) भाग्यपङ्क्तिः—भाग्यदशा। भाग्यस्य पङ्क्तिः प० तत्पु०। (१०) कालक्रमेण—जैसे समय बीतता है उसके अनुसार। कालस्य क्रमेण तृ० तत्पु०। यहाँ तात्पर्य यह है कि मनुष्य की भाग्यदशा परिवर्तनशील है। वह घूमते हुए पहिये के घरों के समान ऊपर-नीचे आती-जाती रहती है। उनमें निरप्यता नहीं है। वह कभी दुःख देती है तो कभी सुख। इसलिए मनुष्य को जब दुःख आवे तो उसको धैर्यपूर्वक भोग लेना चाहिये और जब सुख आवे तो उसका भी उपभोग कर लेना चाहिए। यही बात पञ्चतन्त्र में बही है—'सुखमाशुनितं

सेव्यं दुःखमापतितं तथा । चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ इसी का छायाभाव कालिदास के नेत्रदूत में मिलता है—‘कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण’ । इस श्लोक में उत्तरार्ध के सामान्य अर्थ से पूर्वार्ध के विशेष अर्थ का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है और वसन्ततिलका छन्द है । तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे ‘सामान्य वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते । यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येतेरेण वा ॥—॥४॥

भट्टो—उत्सरह अय्या ! उत्सरह । [उत्सरत आर्याः । उत्सरत ।]
(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—
परिहरतु भवान् नृपापवादं न पश्यमामश्रवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥५॥

अन्वय—भवान् नृपापवाद परिहरतु । आश्रमवामिषु पश्य न प्रयोज्यम् ।
एते मनस्विनः नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति ॥५॥

संस्कृत टीका—भवान्—सम्भषकः, नृपापवादं नृपस्य (राज्ञः दशकस्य)
अपवादं—कलङ्क, परिहरतु—दूरीकरोतु । आश्रमवासिषु—तपोवनवास्तव्येषु
पश्यं—कठोरं, न—नहि, प्रयोज्यम्—व्याहृतव्यम् । (यतो हि) एते—इमे
मनस्विनः—महानुभावाः, नगरपरिभवान्—नगरसुलभान् अपमानान्, विमोक्तु
—निराकर्तुं, वनम्—अरण्यम्, अभिगम्य—आगत्य, वसन्ति—निवास कुर्वन्ति
(अर्थ भावः—उत्सरत, उत्सरत—इत्येवविध पश्यवचनं तपस्विजनेषु त्वया न
प्रयोक्तव्यम् । यतो ह्येते शान्तचित्ताः तापसाः नगरे सम्भाव्यमानेभ्योऽपमानेभ्य
आत्मान मोक्षयितुं तपोवनमधिगमन्ति । अत्रापि चेत् एभिः एतादृशी तिरस्क्रिया
लभ्या तर्हि लोकाः त्वत्कृतापराधान् राज्ञि समारोप्य त कलङ्कयेयुः) ॥५॥

(तदनन्तर काञ्चुकी का प्रवेश) काञ्चुकी—सम्भषक ! मत हटाओ, मत
हटाओ । देखो, राजा पर कलक न लगने दो । तुम्हें आश्रम में रहने वालों
को कठोर वचन नहीं कहना चाहिए । (क्योंकि) ये महानुभाव नगरो में होने
वाले अपमानों से बचने के लिए वन में आकर रह रहे हैं ॥५॥

Soldiers—Keep aside, keep aside, gentlemen, keep aside.
(Then enter the Chamberlain) Chamberlain—Sambhashaka
forbid not their approach forbid it not. See—You should

remove the king's approach. Nothing harsh should be allowed to happen in the case of the dwellers in the hermitage. Those high souled people come to live in the forest to avoid the slights and injuries of city life.

टिप्पणी—(१) काञ्चुकीयः—रनिवास का रक्षक, भन्तःपुराध्यक्ष । इसका लक्षण यह है—‘भन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः सर्वकार्यधिकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥’ अर्थात् भन्तःपुर में विचरण करने वाला, वृद्ध, गुण-समूह से युक्त और सब कार्यों के करने में निपुण ब्राह्मण कंचुकी कहलाता है । मातृ-गुप्ताचार्य ने काञ्चुकीय का लक्षण किया है—‘ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोष-विवर्जिताः । ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥’ अर्थात् जो सर्वदा मात्त्विक गुणों से सम्पन्न, काम आदि दोषों से रहित और ज्ञानविज्ञान में पारगट होते हैं । उन्हें काञ्चुकीय कहते हैं । ‘कञ्चुकी भक्तिः भज्यः सेव्योऽप्य’ इस अर्थ में कंचुक शब्द से ‘विष्णुकादिभ्यश्छन् वाच्यः’ इस वार्तिक से छण् प्रत्यय, ‘भायनेयी-नीयियः’—इत्यादि सूत्र से छ् को ईप् आदेश और भित्त्वात् आदि वृद्धि हुई । यद्यपि प्रसिद्ध शब्द कचुकी है, किन्तु भास ने काञ्चुकीय शब्द का प्रयोग किया है । कंचुक शब्द का अर्थ है ‘चोगा, लम्बा कुर्ता’ । उसका धारण करने वाला कंचुकी हुआ । कंचुक+इति । (२) संभयक—दो तिपाहियों में से एक का नाम । न खलु न खलु—‘खलु’ शब्द निश्चयायक अव्यय है । बो ‘न’ का प्रयोग निषेध की दृढ़ता को सूचित करता है । (३) उत्सारणा—हुटाना । उत/सु+णिच्+युच्—भन, टाप् । (४) मुपापवावम्—राजा की निन्दा । क्योंकि तुम्हारे इस अशिष्ट व्यवहार से लोग सोचेंगे कि यहाँ का राजा बहुत ही अविवेकी है, अन्यथा उसका नौकर शान्त तपस्वियों के प्रति ऐसा कटु वचन नहीं बोलता । (५) परिहरतु—दूर करो । यहाँ प्राप्त काल में लोढ़ु खार हुआ है । अर्थात् अभी तुम्हारे इस कार्य से राजा की निन्दा का भवगर उपस्थित ही है, ऐसा समझो । (६) पदपम्—कटोर, गट्ट या रुला वचन । यहाँ ‘विशेषणमात्रप्रयोगः विशेष्यप्रतिपत्तो’ इस नियम से विशेष्य के बोध के लिए केवल विशेषण का प्रयोग हुआ है । (७) मनस्विनः—उच्च हृदय या विचार के लोग । प्रशस्तं मनः सेवाम् इति विग्रहे मनस्+विनि ‘अस्मायामेषाप्रजोविनिः’ इत्यनेन । (८) नगरपतिभवान्—नगरों में होने वाले अधिमान । नगरजामानाः परिभवाः मध्यमपदलोचि गमाग, तान् । इस श्लोक में काव्यसिद्धि अंतर्भाव है और पुष्पिताया छन्द है । तत्पश्चात् काव्यप्रधाने—‘काव्यमिदं हेतोर्विषयशायता ।’ अर्थात् हेतु का वाक्यार्थ प्रयोजन

पदार्थ रूप में कहना काव्यलिङ्ग अलंकार होता है । यहाँ पर हेतु का वाक्यार्थ रूप में कथन किया गया है । इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलंकार है और पुष्पिताग्रा छंद है (६) आश्रमवासिषु—आश्रम में रहने वाले (तपस्वियों) में । आश्रमे वसन्ति इति आश्रमवासिनः तेषु । स० तत्पु० । (१०) प्रयोज्यम्—प्रयोग करना चाहिए । (११) विमोक्तुम्—दूर करने के लिए । वि+मुच्+तुमुन् (तुम्) । (१२) अभिगम्य—आकर; अभि+गम्+क्त्वा (ल्यप्) । पुष्पिताग्रा का लक्षण वृत्तरत्नाकर में लिखा है—‘अयुजि नयगरेफतो यकारो यजि च नजो जरगाश्च पुष्पिताग्रा’ ॥५॥

उभौ—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्तौ ।)

दोनों—आर्य ! वैसा ही होगा । (दोनों का प्रस्थान ।)

Both—Yes, revered sir, (Both retire)

योगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पा-वस्तावदेनम् ।

संस्कृत टीका—हन्त ! हर्षस्य विषयः दिष्ट्या उत्सारणामयं निवृत्तमित्यर्थः । अस्य—काञ्चुकीयस्य, दर्शन—बुद्धिः ज्ञान वा, सविज्ञानं—विज्ञानेन सहितं कर्तव्यविवेकेन युक्तिमिति यावत् (अस्ति । अतएव) वत्से ! वासवदत्ते ! तावत्—इदानीम्, (आवाम्) एतम्—काञ्चुकीयम्, उपसर्पावः—समीपे गच्छावः ।

योगन्धरायण—ग्रहा ! इसकी बुद्धि परिष्कृत है (अर्थात् विवेक से पूर्ण है) । बेटी ! हम लोग इसके पास चलें ।

Young.—Ha ! his inspection (darshan) shows understanding let us then approach him, child.

टिप्पणी—(१) हन्त ! हर्ष की बात है ! ‘हन्त हर्षेऽनुकम्पाया वाक्यारम्भविपादयोः इत्यमरः, । √ हन् + त (ओणादिक) । ‘हन्त’ अव्यय है । यह हर्ष, अनुकम्पा, वाक्य के आरम्भ में तथा विपाद में प्रयुक्त होता है । इस सन्दर्भ में ‘हन्त’ का प्रयोग ‘हर्ष’ के अर्थ में हुआ है । हर्ष होने का कारण स्पष्ट है । क्योंकि उत्सारण का मय दूर होने से पद्मावती के सान्निध्य में रहने का अवसर प्राप्त हो गया है ।

(२) दर्शनम्—बुद्धि । दृश्यते जायते तत्त्वम् अनया इति दृक्+ल्यट् (करणे)—अतः । ‘दर्शनं नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु’ इति मेदिनी । वत्से !—बेटी । योगन्धरायण राजा उदयन का बृद्ध एवम् आदरणीय प्रधान मंत्री था । इसलिए उसकी रानी वासवदत्ता को ‘बेटी’ कहकर सम्बोधित किया तो कोई अनुचित नहीं कहा।

जा सकता । (३) सविज्ञानम्—विज्ञानेन कर्तव्याकर्तव्यविदेकेन सहितम् (४) तावदेनमुपसर्पावः—तावत्+एनम्=उपसर्पावः । पहले इसके (काञ्चुकीय के) पास चले । तावत् अव्यय है । इसका प्रयोग वाक्य की शोभा बढ़ाने के लिए किया गया है । उपसर्पावः—निकट चले । उप+सृप्+लट्-उ०पु०द्वि०व० (५) उपसर्पावः—नजदीक चले । यहाँ लिङ्ग्य में लट्लकार हुआ है । (६) तावन्—यह एक अव्यय है । वाक्य की शोभा बढ़ाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है । तत्+डावतु ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह [आर्य ! तथा ।]

यातवरत्ता—आर्य ! ऐसा ही करें ।

Vasava.—Sir, as you will,

योगन्धरायणः—[उपसृत्य] भोः ! किं कृतेयमुत्सारणा !

योगन्धरायण—(निकट जाकर) अजी ! यह हटाना किस लिए है ?

Young.—What is the reason, sir, for this expulsion ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

काञ्चुकी—हे तपस्वी !

Chamberlain—Revered hermit.

दिप्पणी (१)—किं कृतेयमुत्सारणा—यह हटाना किसलिए है । किंकृत्या । किसलिए । उत्सारणा—हटाना उत्+सृ+णिच्+युक्(अन)+टाप् (घा) ; (२) भोस्तपस्विन्—अधिक तपस्या वाले । सम्बोधन है । प्रशस्तं तपः यस्य सः तत्संबुद्धो । तपस+विन् ।

योगन्धरायण—[आत्मगतम्] तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः ।

अपरिचयात् न श्लिष्यते मे मनसि ।

योगन्धरायण—(मन में) 'तपस्विन्' यह सम्बोधन तो बहुत ही आदरमूचक है । परन्तु इसका परिचय न होने के कारण मुझे जँचता नहीं है ।

Young.—(aside) It is a title that signifies much merit yet it falls strangely upon my unaccustomed ear.

दिप्पणी—(१) आत्मगतम्—जब वक्ता यह चाहता है कि उसका कथन दूसरों द्वारा न गुना जाय तब यही भाटकार 'आत्मगतम्' या 'स्वगतम्' का प्रयोग

करता है। इसका लक्षण साहित्यदर्पणकार ने किया है—‘अथाव्यं खलु यद् वस्तु-
तदिह स्वगतं मतम्’ अर्थात् जो बात सुनने योग्य नहीं होती है, उसे ‘स्वगत’
(नन में) कहते हैं। इसकी ‘आत्मगत’ भी कहते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है
कि साथ के अभिनेता उस बात को न सुन सकें, केवल श्रोता ही उसे सुन पावें
(२) गुणवान्—प्रशस्त गुणों से युक्त, सम्मानसूचक। गुण+मतुप् (प्रशसायाम्)।
(३) आत्तापः—आनायण, सम्बोधन। आत्+तप्+पञ् (अ)। (४) अप-
रिचयात्—अभ्यास न होने से। न परिचयः अपरिचयः तस्मात्। हेतो पंचमो।
(५) न श्लिष्यते—न संलगति; जमता नहीं है। श्लिप् घातु दिवादिगण्य
परस्मैपदी है। तदनुसार ‘श्लिष्यति’ प्रयोग होना चाहिए। किन्तु मास ने यहाँ
आत्मनेपद का प्रयोग किया है, जिससे व्युत्तिसंस्कार नामक काव्य-दोष उत्पन्न
होता है।

कांचुकीयः—भोः! श्रूयताम्। एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेय-
स्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम। संपा नो
महाराजमातरं महादेवीमाथमस्यामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या
राजगृहमेव यास्यति। तदद्यास्मिन्नाथमपदे यासोऽभिप्रेतोऽस्याः।
तद्भवन्तः—

संस्कृत टीका—भोः। इति योगधरायणस्य सम्बोधनम्, श्रूयताम्—
आश्चर्यंताम्, एषा—इयम्, खलु इति वाक्यालंकारे, गुरुभिः—पूज्यजनैः, अभिहित-
नामधेयस्य—अभिहितम् उच्चारितं वृत्तमिति यावत् नामधेयं नाम यस्य तस्य,
अस्माकं—मगधनिवासिनां, महाराजदर्शकस्य—दर्शकसत्तकस्य मगधाधिपतेः, भगिनी
—स्वप्ता, पद्मावती नाम—पद्मावतीति नाम्ना प्रसिद्धा। सा एषा—पद्मावती,
नः—अस्माकं, महाराजमातरं—दर्शकजननी, महादेवीम्, आथमस्याम्—आथम-
वासिनीम्, अभिगम्य—मितिन्या, तत्रभवत्या—पूज्यया (माता), अनुज्ञाता—
(पुनर्गृहं गन्तुम्) आदिष्टा, राजगृहमेव—मगधराजधानीमेव, यास्यति—
गमिष्यति। तत्—तस्मात्, अथ—अस्मिन् दिग्ने, अभ्याः—राजकुमार्याः,
यातः—निवर्तनम्, अस्मिन्, दृश्यमाने, आथमपदे—आथमस्थाने, अभिप्रेतः—
अभिमतः दक्षितः इति यावत्। तत्—तस्मात् वारणान्, भवन्तः—यूयं गर्वो।
(अथ भावः—दर्शकनाम्नीऽस्माकं महाराजस्य भगिनी इयं पद्मावती तत्रोक्त-
मपिषतन्त्याः स्वमातुः महादेव्याः दर्शनं कृत्वा तत्रा आदिष्टा पुनः राजमदनं

गमिष्यति । अस्मात् कारणात् प्रच अस्मिन्नेवाश्रमे राजकुमार्या निवासोऽमिलयितः । अतएव भवन्तः—)

कंचुकी—मगवन् ! सुनिये । ये हमारे महाराज की, जिनका नाम गुणजनी ने दर्शक रखा है, बहन पचावती हैं । ये हमारे प्रभू की माता महादेवी से, जो आश्रम में रह रही हैं, मिलकर उनकी आज्ञा से राजधानी को ही लौट जाएंगी । इसलिए आज इनका पड़ाव इसी आश्रम में डाला गया है । अतएव आप लोग,—

Chamberlain—Sir, hear, Padmavati, the sister of our great King, Darshaka, is here, She came to visit the queen-mother, who is a votaress of the hermitage and none, being permitted by her ladyship, she is going to Rajgriha. Therefore to-day she is pleased to stay in this hermitage. Therefore, you.

दिष्णो—(१) गुरुभिः—पिता आदि पूज्य व्यक्तियों द्वारा । 'गुरुमहत्वाङ्गिरसे पित्रादी' इति हैमः । यहाँ 'पूज्यानां नाम न ब्राह्मम्' तथा 'गुरुो नामकरणं कुर्वन्ति' इन दोनों आचार-सरणियों का निर्देश किया गया है । (२) अभिहितनामधेयस्य—कहा जाता है नाम जिसका उसकी अर्थात् महाराज दर्शक नाम वाले की (भगिनी) । अभिहितं नामधेयं यस्य तस्य । अभि+धा+क्त (त) । कर्मेणि । (३) महाराजदर्शकस्य—महाराज दर्शक अजातशत्रु का पुत्र और बिम्बसार का पौत्र था । महान्+राजा इति महाराजः कर्मधारय समास । 'राजाहः सखिम्यष्टच्' से टच् प्रत्यय, महाराजश्चासौ दर्शकः इति महाराज-दर्शकः तस्य । (४) आधमस्याम्—आश्रमे तिष्ठति या सा आधमस्या ताम् आधम/स्या+क—टाप् । वृद्धावस्था और वैधव्य के कारण दर्शक की माता तपोवन में निवास करती थी । (५) अभिगम्य—अभि+गम्+त्यप्-मिलकर । (६) अनुज्ञाता—आज्ञा दी हुई । अनु+ज्ञा+क्त (त) +टाप् (आ) । (७) राजगृहम्—यह उस समय मगधदेश की राजधानी था । आजकल पटना जिले में प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के स्थान से थोड़ी दूर पर राजगृह बसा हुआ है । (८) आधमपदे—आधम के स्थान में । 'पदं व्यवसितत्रायस्थान-सम्प्राप्तिवस्तुषु' इस अमरकोश के प्रमाण से पद शब्द का अर्थ स्थान होता है । (९) अभिप्रेत—पसन्द है । अभि+प्र+इ+क्त (त) ।

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि वर्भान्

स्वयं धनादुपनयन्तु तपोधनानि ।

धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-

मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥६॥

अन्वय—तपोघनानि तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दमन्ति वनात् स्वरम् उपनयन्तु । हि नृपसुता धर्मप्रिया, तपस्विषु धर्मपीडाम् न इच्छेत् एतत् अस्याः कुलव्रतम् ॥६॥

संस्कृत टीका—तपोघनानि—तपश्चर्यासाधनानि तपःसाधनीमूतान् पदार्थानित्यर्थः, तीर्थोदकानि—तीर्थस्य नद्यादेः उदकानि जलानि, समिधः—हवनीयकाष्ठानि, कुसुमानि—पुष्पाणि, दमन्—कुशान्, वनात्—अरण्यात्, स्वरम्—इच्छानुसारम् । उपनयन्तु—भ्रानयन्तु । हि—यस्मात्, नृपसुता—राजकन्या, धर्मप्रिया—धर्मानुरागिणी, (अस्ति, अतएव एषा), तपस्विषु—तापसजनेषु, धर्मपीडाम्—धर्मक्रियाव्याघातम्, न—नहि, इच्छेत्—कांछेत् । एतत्—तपोविघ्नेच्छाराहित्यम्, अस्याः—राजपुत्र्याः कुलव्रतम्—बंशपरम्परागतो नियमः (विशेषः) । (धय भाव—भवन्तः सर्वे तपःसाधकान्—तीर्थजलानि, पालाघतरोः काष्ठज्वलानि, पुष्पाणि, कुशान्—इत्यादिपदार्थान् वनात् ययच्छं समाहरन्तु । यतः इमं राजकुमारी धर्मशीला वर्तते । तपस्विनां त्रियाकक्षाये मनागपि विघ्नं न सहते । मुनिजनतपस्चरणामिच्छा तु अस्याः कुलपरम्परागतधर्मो वर्तते) ॥६॥

अनुवाद—तपस्या के साधन—तीर्थ-जल, समिधा पुष्प घोर कुश वन से वे-रोक-टोक से जायें । राजकुमारी धर्मात्मा हैं । ये तपस्वियों के धर्म में बाधा डालना नहीं चाहती । यह इनके वंश का नियम है ॥६॥

May at your will bring holy waters, faggots, flowers and Darba grass the valuable articles of penance. The princess loves piety and indeed she does not want disturbance in the duty of sages, this is her family vow.

टिप्पणी—(१) तपोघनानि—तपसे घनानि तपोघनानि । तपस्या के निमित्त द्रव्य अर्थात् वे पदार्थ जिनका उपयोग तपस्या के लिए किया जाता है । (२) तीर्थोदकानि—तीर्थस्य उदकानि—पट्टी तत्पुण्य—तीर्थ का जल । (३) स्वरम्—घननी इच्छा के अनुसार । स्वस्य धारमनः ईदः यमनम् इति स्वरः (स्व+ईदः) 'स्वादीरेरिणोः' इति बातिनेन वृद्धिः । यही पर त्रियाविशेषण है । अतएव द्वितीया हुई । (४) उपनयन्तु—साधयें । यही प्रार्थना में सोद्गमकार हुआ है । (५) धर्मप्रिया—जिसे धर्म प्रिय हो । धर्मः प्रियो अस्याः सा, बहुव्रीहि समास में

‘वा प्रियस्य’ इस वार्तिक से प्रिय शब्द का पूर्व प्रयोग विकल्प से होता है। इसीलिए ‘धर्मप्रिया’ प्रयोग हुआ, अन्यथा ‘प्रियधर्मा’ होता है। (६) धर्मपीडाम्—धर्मस्य तपोरूपस्य पीडा बाधा। ‘पीडा बाधा’ इत्यमरः। (७) इच्छेत्—यहाँ अघीष्ट= सत्कारपूर्वक व्यापार में विधिलिङ् लकार हुआ है। (८) एतत्—यहाँ विवेक की प्रधानता से नपुंसक लिंग हुआ है। इस श्लोक में काव्यनिग्न अलंकार है और वसन्ततिलका छंद है ॥६॥

योगन्धरायणः—[स्वगतम्] एवम् ! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः,—

संस्कृत टीका—एवम्—इत्थम् काञ्चुकीयेन यथार्थमेवोक्तमिति यावत् । एषा सा—इयं सैव, मगधराजपुत्री—मगधेश्वरस्य दुहिता, पद्मावती नाम—पद्मावतीत्याख्यया प्रसिद्धा या पुष्पकभद्रादिभिः, आदेशिकैः—दैवज्ञैः, आदिष्टा—कथिता, स्वामिनः—अस्माकं प्रभोः उदयनस्य, देवी—भार्या, भविष्यति—सम्पत्स्यते ।

योगन्धरायण—(मन मे) ऐसा ! यह वही मगधनरेश की कन्या पद्मावती है, जो पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों के कथनानुसार महाराज (उदयन) की रानी होने वाली है। इसी कारण—

Young.—(to himself) So this is that Padmawati, the Magadha princess who was predicted to become the queen of our monarch by astrologers like Pushpakbhadr and others then :—

टिप्पणी—(१) एवम्—ऐसा । (२) एषा सा—यह वही । (३) मगधराजपुत्री—मगधानां राजा मगधराजः तस्य पुत्री । (४) पुष्पकभद्रादिभिः—पुष्पकभद्र आदि के द्वारा । पुष्पकभद्रः आदियेषां ते पुष्पकभद्रादयः तैः । (५) आदेशिकैः—भविष्यद्भक्ता सिद्धपुरुष या ज्योतिषी । (६) आदेश=ज्योतिःशास्त्र का फल । ‘ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते’ (सिद्धान्तशिरोमणि) । ‘आदेशेन दीव्यन्ति वा आदेशः शिल्पमेवाम्’ इन विग्रहों में आदेश शब्द से क्रमशः तिन दीव्यति वा ‘शिल्पम्’ सूत्र से ठक् प्रत्यय और उसको इक आदेश हुआ ।

प्रद्वेपो बहुमानो या सङ्कल्पादुपजायते ।

भर्तृवाराभिलाषित्वावस्थां मे महती स्वता ॥७॥

अन्वय—प्रद्वेषः वा बहुमानः सङ्कल्पात् उपजायते । भर्तुं दारामिलापित्वात्
अस्या मे महती स्वता (अस्ति) ॥७॥

संस्कृत टीका—प्रद्वेषः—द्वेषातिशयः, वा—अथवा, बहुमानः—अत्यादरः,
सङ्कल्पात्—मानसात् कर्मणः, उपजायते—उत्पद्यते । भर्तुं दारामिलापित्वात्—
भर्तुःस्वामिनः उदयनस्य दाराः पत्नी तान् अभिलषति इति भर्तुं दारामिलापी तस्य
भावः तस्मात्, अस्यां—पद्मावत्या, मे—मम, महती—शुर्वी, स्वता—आत्मीयता
(अस्ति) । (अयं भावः—जनस्य कस्मिंश्चित् विषये द्वेषाधिक्यं वा सम्मानाधिक्यं
स्वकीयमतोऽप्यपाराधेव उत्पद्यते अर्थात् यस्य चित्ते यादृशो भावः सम्पद्यते पट्टिपये,
स तद्भावानुसारेणैव त प्रद्वेष्टि वा बहु मन्यते । अतएव पूर्वम् अस्यां पद्मावत्याम्
'प्रनुचितोऽस्मरणाप्रवर्तिकेयम्' इति सङ्कल्पात् मम विद्वेषः भासीत् । अघुना तु
'इय मे महाराजस्य राजमहिषी भवतु' इति सङ्कल्पात् अस्याम् मे महती आत्मीयता-
धृदि जायते । ॥७॥

अनुवाद—पूजा या लगाव मन के भाव से ही उत्पन्न होते हैं । (अतएव अपने)
स्वामी की पत्नी (यनाने) की इच्छा के कारण इस (पद्मावती) में मेरा भारी
अपनारन हो रहा है ॥७॥

Liking and dislike are based on motive. On account of my
ardent desire that she should become the wife of my lord, I feel
next kinship towards her.

शब्द आत्मीय अर्थ का बोधक है—‘स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये’ इत्यमरः । इस शब्द का प्रयोग कालिदास ने भी किया है—‘कामी स्वतां पश्यति’ । इस पद्य में अर्थान्तरन्यास और काव्यसिंग अलंकार हैं तथा अनुष्टुप् छंद है । इसमें कवि ने एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का निरूपण किया है । भिन्न-भिन्न समयों पर एक ही व्यक्ति एक ही वस्तु को अपनी धारणा या भावश्यकता के अनुसार अच्छा या बुरा समझता है । क्योंकि योगन्धरायण पहले पद्मावती को भुनिषो के हटाये जाने की प्रवर्तिका मान कर बुरा समझता था पर बाद में जब उसकी यह धारणा बनी कि इसी पद्मावती का विवाह महाराज उदयन से होगा और इस सम्बन्ध से महाराज को पुनः राज्य-प्राप्ति में सुविधा हो जायगी तो उसके मन में पद्मावती का महत्व बढ़ गया ॥७॥

वासवदत्ता—[स्वगतम्] राजदारिक्यति सुणिग्र भइणिग्रासिणेहो वि मे एत्य संपज्जइ । [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।]

वासवदत्ता—(मन में) ‘राजकुमारी’ यह सुनकर मुझे इसके प्रति बहन का-सा स्नेह भी हो रहा है ।

Vasava.—(to herself) None that I hear that this is she, a wave of sisterly affection floods my heart.

टिप्पणी—(१) राजदारिका—राजा की पुत्री । दारिका √दृ+णिच्+ण्वल्—अक, टापु, इत्व । (२) भगिनिकास्नेहोऽपि—भगिनी एव भगिनिका, भगिनी+क—टाप्, लृस्व । तस्याः स्नेहः=भगिनिकास्नेहः । वासवदत्ता और पद्मावती दोनों राजकुमारी थीं । इसलिए वासवदत्ता का पद्मावती के प्रति भगिनी तुल्य स्नेह होना स्वाभाविक था । यहाँ अपि शब्द से अत्यन्त सम्मान सूचित होता है । क्योंकि दोनों के कुलीन होने के कारण एक दूसरी का सम्मान करना उचित ही था । (३) सम्पद्यते—होता है । सम्+पद् (दिवादि)+लट् प्र० पु० ए० व० ।

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च)

चेटी—एदु एदु भट्टिवारिष्ठा, इदं अस्समपदं पविसदु । [एतु एतु भत्तु दारिका, इदमायमपदं प्रविशतु ।]

(अनन्तर परिवार सहित पद्मावती और चेटी का प्रवेश)

दासी—भाइये, राजकुमारी जी ! भाइये ! इस आश्रम में चलें ।

(Then enter Padmawati and the maid with retinue.)

Maid—Come on, come on, princess, here is the hermitage, please enter.

दिप्यणो—(१) सपरिवारा—सखीवर्ग के साथ । परिवारेण सहिता इति सपरिवारा । परि परितः वारयति इति परिवारः, परि/वृ+षच् (प्र) । (२) चेटी—प्रधान परिचारिका, दासी । √चिट्+घच्=चेट्+ङीप् । यद्यपि 'सपरिवारा' कहने से परिवार के अन्तर्गत दासी भी आ जाती है इसलिए इसका पृथक् उपादान करने की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु विशिष्ट दासी का बोध कराने के लिए नाटककार ने इसका प्रयोग किया है, ऐसा कथञ्चित् कह सकते हैं । (३) एतु एतु—भाइए भाइए । यहाँ वीप्सा में 'नित्यवीप्सयोः' सूच से द्वित्व हुआ है । इससे भावर सूचित होता है । भवएव प्रधीष्ट में लोट् लकार भी हुआ । (४) भर्तृदारिका—राजा की पुत्री । 'राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका' इत्यमरः ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी)

तापसी—साम्प्रदं रामदारिद्र्या [स्वागतं राजदारिकायाः ।]

(तदनन्तर बंटी हुई तपस्विनी का प्रवेश)

तापसी—राजकुमारी का स्वागत हो ।

(Then enter a seated lady-ascetic)

Lady ascetic—Welcome to princess,

शासवदत्ता—[स्वगतम्] इयं सा रामदारिद्र्या । अभिजनानुरूपं खु से रुधं । [इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम् ।]

शासवदत्ता—(मन मे) यह वही राजकुमारी है । इसका सौन्दर्य कुसीनता के धनरूप ही है ।

Vasava.—(To herself) So she is the princess. Her form indeed conforms to her high birth.

टिप्पणी—(१) उपविष्टा—बैठी हुई । उप+विश्+क्त (त)+टाप् (आ) । यद्यपि आश्रम में राजकुमारी के पधारने पर उचित यह था कि तापसी उठकर उसकी श्रग्वानी करती, किन्तु वह वृद्धा एवं तपः सिद्धा होने के कारण अपना गौरव बनाये रही और बैठे-बैठे ही उसने राजकुमारी का अभिनन्दन किया । (२) अभिजनानुरूपम्—अभिजनस्य=कुलस्य अनुरूपम्=योग्यम् । 'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयो' इत्यमरः । अनुरूपम्—अनुगतं रूपमिति विग्रहे 'अध्ययं विमर्शितं'—इत्यादिसूत्रेण अव्ययीभावसमासः । यहाँ पूरी पंक्ति का तात्पर्य यह है कि जहाँ पद्मावती का कुल ऊँचा है वहाँ उसका सौन्दर्य भी बहुत बड़ा-बड़ा है । पद्मावती—अद्यै ! वन्दामि । [आयें ! वन्दे ।]

पद्मावती—आयें ! प्रणाम करती हूँ ।

Padmavati—Revered lady, I salute.

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तपोवनानि नाम अदिहिजणस्स सअग्गेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रपिश । तपोवनानि नामातिथिजनस्य स्थगेहम् ।]

तापसी—चिरजीवी होओ । आओ बेटी ! आओ ! तपोवन तो प्रतिथियों का अपना घर है ।

Lady ascetic—Long life be yours. Come in my child, come in. A visitor is ever welcome to this hermitage.

टिप्पणी—(१) प्रविश प्रविश—आओ आओ । विशेष रूप से सूचित करने के लिए 'प्रविश' का दो बार प्रयोग हुआ है । चूंकि राजकन्या रूपी विशिष्ट प्रतिथि का साम होने से तापसी का प्रमुदित होना उचित ही था । (२) नाम—यह प्रतिदायक अव्यय है । 'नाम प्राकाश्यसम्माध्यक्रोषोपगमकुत्सने' इत्यमरः । (३) अतिथिजनस्य—अभ्यागत लोगों का । अतति गच्छति बहुकालं न तिष्ठति इति प्रतिथिः, √अत्+इयिन् । मनु ने कहा है—'एकरात्र तु निवसन् अतिथिः प्राह्वानः स्मृतः' । यहाँ भावार्थ यह है कि तपोवन अतिथियों का अपना घर ही होता है । अतः जो यहाँ पर आता है, उसका भी यहाँ की वस्तुओं पर समान ही अधिकार होता है । अतएव राजकुमारी निःसंकोच प्रवेश करें ।

पद्मावती—भोडु भोडु । अग्ये ! विस्सत्यहि । इमिणा बहुमाणवअणेण
अणुगहिदहि । [भवतु । भवतु । आर्ये ! विश्वस्तास्मि । अनेन
बहुमानवचनेनानुगृहीतास्मि ।]

पद्मावती—वस, वस ! आर्ये ! मुझे विश्वास हो गया । (आपके) इस
सम्मानसूचक वचन से मैं अनुगृहीत हूँ ।

Padmarati—Revered lady this welcome puts me at my ease.
By this address of neat respect I feel favoured.

टिप्पणी—(१) भवतु-भवतु—वस वस । यहाँ सम्भ्रम ने द्वित्व हुआ है ।
तापसी के औपचारिक वचनों से पद्मावती को संकोच हो रहा है । इसलिए
वह आगे उपचार-प्रदर्शन को रोकने के लिए सीधेता ने कह घँठती है कि 'हो
गया, हो गया' अर्थात् अब इसकी आवश्यकता नहीं है । (२) विश्वस्ता—वि +
श्वन् + क्त (त) + टाप् (धा) । निश्चिन्त 'संकारहित' (३) बहुमानवचनेन—
अत्यधिक आदरसूचक वचन से । बहु + मन् + घञ् (घ) बहुमानः तस्य वचने
तेन—करणे तृतीया ।

वासवदत्ता—[स्वगतम्] ण हि ख्वं एव्व, वाग्मा वि खु से मधुरा ।
[नहि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।]

वासवदत्ता—(मन में) केवल रूप ही नहीं इसकी वाणी भी मधुर है ।

Vasav.—(To herself) Not only the form but her address
also is sweet.

तापसी—भद्रे । इमं दाव भद्रमुहस भद्रणिअं कोच्चिराअा ण वरेदि ?
[भद्रे ! इमां तावत् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद्राजा न वरयति ?]

संस्कृत टीका—भद्रे !—कल्याणि ! भद्रमुखस्य—सौम्यदर्शनस्य महाराज-
दर्शकस्येत्यर्थः, इमाम्—एताम्, भगिनिका—स्वसारम् तावत् इति वाक्यालंकारे,
कश्चित्—कोऽपि, राजा—नरेशः, न—नहि वरयति—विवाहार्थं प्रार्थयते
(अथ भावः—केनचित् भूपतिना सह महाराजदर्शकभगिन्याः पद्मावत्याः
वैवाहिको वातालापो न भवति किम्) ?

तापसी—शुभे ! क्या कोई राजा महाराज दर्शक की इस बहन (पद्मावती) का
वरण नहीं करता (अर्थात् किसी के साथ इसके विवाह की चर्चा नहीं चल
... है) ।

Lady-ascetic—Good girl, is there no King that seeks your prince's sister for a bride,

टिप्पणी—(१) भद्रे !—यह सम्बोधन चेटी के लिए है । (२) भद्र-मुखस्य—सौम्य आकृति वाले । भद्र मुखं यस्य स भद्रमुखः तस्य जिसका मुख कल्याणसूचक हो अर्थात् प्रियदर्शन । साहित्यदर्पणकार ने कहा है—'सौम्यभद्र-मुखेत्येवमधर्मस्तु कुमारकाः अर्थात् निम्नश्रेणी का पात्र किमी राजकुमार को 'सौम्य' या 'भद्रमुख' इस प्रकार के शब्दों से सम्बोधित करे । इस नियम के अनुसार तापसी को किस श्रेणी का पात्र माना जाय, यह शोचनीय है । ध्यान रहे कि इससे पूर्व यही तापसी अपनी मान्यता के कारण राजकुमारी के स्वागत के लिए भी उठकर खड़ी नहीं होती है । (३) भगिनिकाम्—अनुकम्पिता भगिनी इति भगिनिका ताम्, भगिनी+कम् (अनुकम्पायाम्) टाप् (आ) । (४) न वश्यति । म० पु० ए० व० । नहीं चाहता है ? ईप्सार्थक वच् घातु से चोरादिक णिच्+लट्—तिप् । चेटी—अस्त्य राज्ञा पञ्जोदो णाम उज्जइणीए । सो दारअस्स कारणादो दूदसंपादं करेदि । [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः । स दारकस्य कारणात् दूतसम्पातं करोति ।]

दासी—उज्जैन के राजा प्रद्योत हैं । उन्होंने (अपने) पुत्र के वास्ते दूत भेजा है ।
Maid—There is a King of Ujjain by name Pradyota on behalf of his son he sends ambassadors.

टिप्पणी—(१) प्रद्योत—चण्ड महासेन प्रद्योत । यह पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में मालवा का शक्तिशाली शासक था और यही वासवदत्ता का पिता था । (२) दारकस्य=पुत्रस्य (शेषे पष्ठी) । (३) कारणात्—हेतु पंचमी । (४) दूतसम्पातं—करोति=बार-बार दूत भेजते हैं । दूतस्य सम्पातः=सम्प्रेषणम् । दूत=सन्देश पहुँचाने वाला । 'स्यात् सन्देशहरो दूतः' इत्यमरः । यहाँ नाट्यार्थ यह है कि उज्जैन के राजा प्रद्योत अपने पुत्र के साथ पद्मावती का विवाह-सम्पन्न करना चाहते हैं । प्रद्योत के दो पुत्र थे—गोपालक और पालक ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु । एसा अ अत्तणीआ दाणि संवुत्ता । [भवतु भवतु । ऐसा चात्मीयेदानीं संवुत्ता ।]

वासवदत्ता—(मन में) अच्छा अच्छा ! यह तो अब (मेरी) अपनी हो गई ।
Vasav—(To herself) she is now ours indeed.

टिप्पणी—(१) भवतु भवतु—यहाँ हर्षातिरेक ने द्विरक्ति हुई है।
(२) आत्मीया=अपनी, स्वकीया। आत्वनः इयम् इति आत्मन्+छ-ईप्, टाप्
(स्त्रियाम्)। (३) संवत्सा=सम्+वृत्+क्त (त)=टाप् (आ)। संजाता=हुई।

तापसी—अर्हा खु इयं आइदो इमस्स बहुमाणस्स। उभआणि
राप्रजलाणि महत्तराणि ति सुणोअदि। [अर्हा खल्विषमाकृति-
रस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।]

तापसी—निःसन्देह (पद्मावती का) यह रूप लावण्य इस सम्मान के योग्य
है। सुनते हैं कि दोनों राजवंश बड़े ऊँचे हैं।

Lady ascetic—Her beauty proves her worthy of such honour
Both the royal houses are of high fame.

टिप्पणी—(१) अर्हा=योग्य। √अर्ह्+अच्—टाप् (आ) (स्त्रियाम्)
(२) खलु—यह निश्चयायक प्रत्यय है। (३) राजकुले—दर्शक का राजवंश
और प्रद्योत का राजवंश। (४) महत्तरे—अत्यन्त महान्। प्रतिशयेन महती इति
महत्तरे महत्+तरप्। यहाँ पहली पक्ति का आशय यह है कि पद्मावती का
अनिन्द्य सौन्दर्य इतना बढ़ा-चढ़ा है कि इसे प्रतिशय प्रतापशाली राजा प्रद्योत
की पुत्रवधू होने का गौरव मिलना ही चाहिए।

पद्मावती—अय्य ! किं दृष्टो मुनिजणो अत्ताणं अणुगहोदुं ?
अभिप्पेदप्पदाणेण तवस्सिजणो उवणिमन्तोअदु दावको किएत्थ
इच्छदिति। [आर्य ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहोतुम् ?
अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किम-
व्रच्छतीति।]

मंस्कृत-टीका—आर्य ! काञ्चुकीय, आत्मानम्—माम्, अनुग्रहोतुम्—
कृतायेदितुम्, मुनिजनः, दृष्टः—अवलोकितः, किम् ?, अभिप्रेतप्रदानेन—
वाञ्छितवस्तुदानेन हेतुना, तपस्विजनः—मुनिजनः, उपनिमन्त्र्यताम्—अभ्यर्च्य-
ताम् तावत् इति वाक्यालंकारे, (यत्) अत्र—अस्मिन् स्थाने, कः किम्,
इच्छति—वाञ्छति (अयं भावः भवता केषपि मुनयो दृष्टाः, ये मत्तः किञ्चित्
गृहीत्वा माम् अनुगृहीयुः ? दृष्टाश्चेत्, तान् स्वस्वामीप्सितार्थकपणे प्रवर्तयतु
भवान्)।

अनुवाद—पद्मावती—आर्य ! क्या आपको ऐसे कोई ऋषि-मुनि दिखाई

दिये हैं, जो (कुछ लेकर) मुझे अनुगृहीत करें ? अमीष्ट वस्तु दी जाने की घोषणा करते हुए आप तपस्वियों से प्रार्थनापूर्वक पूछें कि कौन क्या चाहते हैं ।

Padmavati—(To Chamberlain)—has any holy anchorite been found, whom I may gratify myself by serving. Let all the ascetics be called near for gifts they desire and enquire "Does any body want any thing ?"

टिप्पणी—(१) आत्मानमनुग्रहीतुम्—गुरु पर कृपा करने के लिए । चूंकि राजकुमारी सात्त्विक दान देना चाहती है, इसलिए वह इस दान से प्रतिग्रहीता को कृतार्थ न समझ कर स्वयं को कृतकृत्य समझती । सात्त्विक दान का लक्षण गीता में लिखा है—'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥' (२) 'अभिप्रेतप्रदानेन—अमीष्ट वस्तु देने के कारण अभिप्रेत—अभि-प्र+इ+क्त(त) कर्मणि तस्य प्रदानेन । यहाँ हेतु में तृतीया हुई । (३) उपनिमन्त्रयताम्—उप+नि+भन्त्+लोट् कर्मणि (प्र० पु० ए० द०) । (४) तावत्—अव्यय । इसका प्रयोग वाक्य-शोभावर्धक है ।

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या । भो भो आश्रमवासिनस्तपस्विनः !

शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः । इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विश्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते ।

संस्कृत टीका—भवत्या—राजकुमार्या, यत्, अभिप्रेतम्—इष्टम् । शृण्वन्तु—आकर्णयन्तु, भवन्तः—श्रीमन्तः । इह—अत्र, अत्रभवती—माननीया, मगध-राजपुत्री—मगधेश्वरकुमारी, अनेन—एतेन तापस्या प्रदर्शितेनेति यावत्, विस्रम्भेण—स्वागतोपचाररूपविश्वासेन, उत्पादितविस्रम्भा—जनितविश्वासा, (मूत्वा), धर्मार्थम्—पुण्याय, अर्थेन—द्रव्येण (हेतुना), उपनिमन्त्रयते—आह्वयते (भवतः) (अर्थं मावः—तापसीकृतेन सत्कारेण समुत्पन्नविश्वासा भान्या मगध-राजकुमारी पुण्यकामाय भवद्भ्यः तपोवनेभ्यः भवदमिलपितवस्तूनि दित्सति । अतो भवन्तः कृपया स्वस्वामिलाप प्रकटयन्तु) ।

कचुकी—आपकी जो इच्छा । हे आश्रमनिवासी मुनिवृन्द ! आप लोग (कृपा करके) सुनें । यहाँ माननीय मगधराजकुमारी अपने स्वागत से सन्तुष्ट होकर पुण्य की कामना से आप लोगो को दान देने के लिए बुला रही हैं ।

Chamberlain—It shall be as your ladyship desires. Oh! residing in this hermitage, listen, Padmavati, the royal

maid of Magadh, gratified by the reception here is inviting you, to receive gifts (from her) in a religious largess.

टिप्पणी—(१) यदभिप्रेतम्—जसी इच्छा । यत् मोर तत् शब्द बुद्धित्य-परामर्शक होते हैं । अर्थात् तत् शब्दघटित वाक्य यत् शब्दघटित वाक्यान्तर की आकांक्षा रखता है मोर तत् शब्दघटित वाक्य यत् शब्दघटित वाक्यान्तर की । इस नियम के अनुसार यहाँ 'तद्विधीयते गया' इस वाक्य का अग्राह्यार किया जायगा । फलतः अर्थ होगा—'आपकी इच्छा के अनुसार मैं करूँगा' । (२) विस्मयेण—विश्वास से । 'समी विस्मयविश्वासो' इत्यमरः । (३) धर्मायम्—पुण्य के लिए । धर्माय इदम् इति धर्मायम् मूलव्यंशकादित्वात् नित्यसमास । 'अविप्रहो नित्य-समासः अस्वपदविग्रहो वा' । (४) अर्थेन—अर्थ से । 'अर्थोऽभिधेयैरेवस्तुप्रयोजन-निवृत्तिषु' इत्यमरः ।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो ययानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्देय्येत् ॥

आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद्यस्यास्ति समीप्सितं यदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

अन्वय—कस्य कलशेन अर्थः ? कः वासः मृगयते ? पुनः ययानिश्चितं दीक्षां पारितवान् (कः) किम् इच्छति, यत् गुरोः देयं भवेत् । धर्माभिरामप्रिया नृपजा इह आत्मानुग्रहम् इच्छति । यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तत् यदतु, अद्य कस्य किम् दीयताम् ॥८॥

संस्कृत टीका—कस्य—तपस्विनः, कलशेन—ताम्रादिघटेन कामण्डल्यादिना पात्रेणेति यावत्, धर्मः प्रयोजनम्, (विद्यते) ? कः, वामः—यस्य मृगयते भविष्यति वाञ्छनीत्यर्थः ? पुनः—मूयः, ययानिश्चितं—यथासंकल्पितं, दीक्षा—ब्रह्मचर्यव्रतं वेदाध्ययनव्रतं, पारितवान्—समापितवान्, (कः) किं—वस्तुविशेषम् इच्छति—चाँसति, यत्—यत्, गुरोः—आचार्यस्य, देयं—दातव्यं, भवेत्—स्यात् ? धर्माभिरामप्रिया—पति धर्मिरामः अनिष्टचिः येषां ते धर्माभि-
रायाः—तपस्विनः ते प्रियाः यस्याः मा, नृपजा—राजराज्या, इह—एस्मिन्
आश्रमपदे, आत्मानुग्रहम्—आत्मनः हनार्थताम्, इच्छति—अभिलषति । अन्य—
तपस्विनः यत्—यत्, समीप्सितम्—अभीष्टम्, अस्ति—विद्यते, तत्—यत्,
यदतु—यद्यपि, अद्य—एस्मिन् दिने, कस्य—तपस्विनः, किं—यत्
दीयतां—आमर्त्यताम् ? (धर्मं भावः—अद्य मम राजकुमारी इह आगता भवेत्)

तपस्विनाम् आवश्यकानि वस्तूनि दातुमिच्छति । अतएव यः तपस्वी कमण्डल्वादि पात्रं वाञ्छति स निःशङ्कमागत्य गृह्णातु । यः वस्त्रमिच्छति स तत् समेत । यः गुरुगृहवासपूर्वकं वेदाध्ययनव्रतं समापितवान् स गुरुवे देयां दक्षिणामपि प्राप्नुयात् । भवत्सु प्रीति कुर्वाणा राजकुमारी भवद्भ्यः दानानि दत्त्वा आत्मनः कृतार्थतां कामयते । अतएव भवन्तः सर्वे स्वस्वामिलपित प्रकाशयन्तु आशापयन्तु च अनया कस्मै किं देयमिति ॥८॥

किसे जलपात्र की आवश्यकता है । कोन वस्त्र खोज रहा है ? और नियम के अनुसार पढ़ाई को पूरा कर लेने वाला क्या चाहता है, जो (उसे) गुरु को देना हो । धर्म में आनन्द लेने वालों से प्रेम करने वाली राजकुमारी इस तपोवन में अपने ऊपर (आपकी) कृपा चाहती है । (अतएव) जिसको जो अभीष्ट हो, वह बताए कि आज किसको क्या दिया जाय ॥८॥

Who lacks the hermit's bowl or who requires the russet that this rule prescribes ? Does any one want to make a present to his preceptor after having fulfilled the investiture the princess devoted to the lovers of duty desires favours to herself. Therefore say whatever is desired, what should be given today and to whom ?

टिप्पणी—(१) कलशेन—घड़े अथवा जलपात्र से । फल भी हेतु माना जाता है इसलिए यहाँ 'अध्ययनेन वसति' की तरह हेतु में तृतीया हुई । (२) अर्थः—प्रयोजन । अर्थात् किसको जलपात्र की आवश्यकता है । (३) ययानिश्चितम्—निश्चय एव निश्चितम्, भाव में क्त प्रत्यय । निश्चय=निर्धारण या संकल्प । निश्चितम् अनतिक्रम्य इति ययानिश्चितम्, ययार्थ में अव्ययीभाव समास । (४) दीक्षाम्—वेदाध्ययन कर्म । √दीक्ष्+अ (गुरोश्च हलः इति सूत्रेण)+टाप् । (५) पारितवान्—समाप्त किया हुआ । पार् तीरकर्मसमाप्ती घातु से क्तवतु प्रत्यय । (६) गुरोः देयम्—गुरु को देने योग्य । यहाँ 'राजः करं ददाति' की भाँति सम्बन्ध सामान्यमात्र की विवक्षा में पड़ी हुई । पहले स्नातक अध्ययन-समाप्ति के पश्चात् गुरु को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देता था—स्नास्यस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्' इति मनुः । दक्षिणा का विधान तो यहाँ तक है कि यदि न कुछ हो सके तो एक नारियल या एक जोड़ा यज्ञोपवीत ही गुरु को समर्पित कर दे । (७) इह—इस वन में अथवा इस दान के वितरण के विषय में । (८) आत्मानुग्रह—अपने प्रति की गई कृपा न कि दानग्रहीता के प्रति ।

राजकुमारी पद्मावती की यह भावना कि दान ग्रहण करने से ग्रहीता द्वारा दाता उपकृत होता है उसकी निष्कपट एवं शुद्ध दानशीलता की धोतक है । (६) धर्माभिरामप्रिया—धर्म में रुचि रखने वालों से प्रीति करने वाली अथवा स्वयं धर्म में रुचि रखने के इच्छुक अथवा धर्म में रुचि रखने के कारण सबको प्रिय ।

धर्मे अभिरमन्ते इति धर्माभिरामाः ते प्रियाः यस्याः सा यद्वा धर्मे अभिरामः धर्माभिरामः सः प्रियः यस्याः सा धर्माभिरामप्रिया । (१०) यद् यस्यास्ति समोप्सितम्—जिसकी जो इच्छा हो । यहाँ 'मतिवृद्धिपूर्वापेक्ष्यम्' सूत्र से 'यस्य' में पठ्ठी हुई (११) समोप्सितम्—सम्+आप्+सन्+क्त । (त) भावे । इच्छित । यहाँ विशेष 'वस्तु' दिया हुआ है । 'विशेष्योपपत्ती विशेषणमात्रप्रयोगः' से यहाँ केवल 'समोप्सितम्' विशेषण ही प्रयुक्त हुआ है । (१२) दीयताम्—दिया जाय । दा+लोट् कर्मणि प्र० पु० ए० व० । यह सादृशत्वविक्रीडित छंद है ॥२॥

योगन्धरायणः—हन्त ! दृष्ट उपायः । (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी ।

योगन्धरायणः—प्रह्ला ! उपाय मूल गया । (प्रकट) धनो ! मैं प्राणी हूँ ।

Young—Oh ! a way is found out (loudly) Sir, I am a supplicant.

दिप्यन्ती—हन्त ! यह प्रच्यव है । इसका अर्थ हयं होता है 'हन्त हयं शुभम्भाया वायुधारमविषादयोः' इत्यमरः । उपायः युक्ति, मार्ग । उपाय्यते अनेन इत्युपायः उप+अप्+यन् (२) प्रकाशम्—गुना कर । इसका सत्तन पहने 'आत्मगतम्' के साथ यताया जा चुका है । यहाँ 'प्रकाशम्' में पहला वाक्य 'स्वगत' ही है यह अर्थार्थित से गिद्ध होता है । (३) धर्मो—मायक । धर्मः—प्रमोहनम् अस्ति अस्य इति धर्मो, धर्म+इति ।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहसं मे तपोयणाभिगमनं । [दिट्ठ्या सफलं मे तपोयणाभिगमनम् ।]

पद्मावती—माय मे तपोयन मे मेरा घाना सहस हूमा ।

Padmavati—O Joy ! my Journey to this hermitage has not been in vain.

दिप्यन्ती—(१) दिट्ठ्या—गोनाय मे । यह हयंवासी प्रच्यव है । 'दिट्ठ्या

समुपजोषं चेत्यानन्दे' इत्यमरः । पद्मावती को हर्षं इसलिए हुआ कि तपोवन में याचक का मिलना कठिन था ।

तापसी—संतुष्टतपस्विजनं इदं अस्समपदं । आगन्तुएण इमिणा होद्वं । [सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् । आगन्तुकेनानेन भवितव्यम् ।]

तापसी—इस आश्रम के सभी तपस्वी सन्तुष्ट हैं, यह कोई आगंतुक होगा ।

Lady ascetic—In this hermitage all the sages are satisfied. This must be some outsider.

टिप्पणी—(१) संतुष्टतपस्विजनम्—जहाँ सबके सब तपस्वी सन्तुष्ट हों ऐसा । सन्तुष्टः तपस्विजनः यस्मिन् तत् तयाविषम् । (२) आगंतुकेन—नवागत, अजनबी । आगच्छति इति आगन्तुः, आ+गम्+तुन् 'सितनिगमि' इत्युणादिभूषेण, आगन्तुरेव आगन्तुः, आगन्तु+क । (३) भवितव्यम्+तव्यत् (भावे) ।

काञ्चकीयः—भोः ! किं क्रियताम् ?

कचुकी—अजी, क्या चाहते हैं ?

Chamberlain—Sir, what should be done for you.

योगन्धरायणः—इयं मे स्वसा । प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्र-भवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् । कुतः—

संस्कृत टीका—इयं—मत्समीपवतिनी, मे—मम, स्वसा—भगिनी (प्रति) । प्रोषितभर्तृकाम्—प्रोषितः=विदेश गतः भर्ता=पतिः यस्याः ता तयामूताम्, अत्रभवत्या—मान्यया मगधेशकुमार्या, कञ्चित्कालं—किञ्चित्कालपर्यन्तं, परिपाल्यमाना—परिरक्ष्यमाणाम्, इच्छामि—वाछामि । कुतः—यस्मात् कारणात् । (अयं भावः—अस्याः मे स्वसुः पतिः विदेश गतोऽस्ति । तम् अन्विष्य यावदहं प्रत्यानयामि तावत्कालपर्यन्तं मान्या पद्मावती इमा परिपालयतु—इत्येव मम याचना ।)

अनुवाद—योगन्धरायण—यह मेरी बहन है । इसके पति परदेश गये हुए हैं । इसलिए मैं चाहता हूँ कि कुछ समय तक माननीय राजकुमारी जी इसको अपनी देख-रेख में रखें ।

Young.—Here is my sister. I desire that your ladyship should look after her, as her husband has gone abroad, why.

टिप्पणी—(१) स्वप्ना—बहन । 'स्वप्नारमादाय विदमनायः' रघुवंश ।
 सु०/प्रसू+कृन् । (२) प्रोषितभर्तृकाम्—वह स्त्री जिसका पति परदेश गया
 हो । साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण किया है—'नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेशं
 गतः पतिः । सा मनोमदबुद्ध्या भवेत् प्रोषितभर्तृका ॥' प्रोषितो भर्ता यस्याः
 ताम् बहुव्रीहिसमासे कृते 'नद्यतश्च' इत्यनेन कप् तत्तष्टाप् । प्रोषितः—प्र०/वस्+क्त
 (त) ; 'वसतिष्णुघोरिट्' इति सूत्रेण इडागमः, यजादित्वात् सम्प्रसारणं च ।
 (३) कञ्चित्कालम्—कुछ समयतक । यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से द्वितीया
 हुई । (४) परिपाल्यमानाम्=सुरक्षित । परि०/पाल्=णिच्+लट् (कर्मणि)—
 शानच्, यक्, भुमागम ।

कार्यं नंवार्येनपि भोगेन वस्त्रेर्नाहं कापायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः ।
 घोरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥६॥

अन्वय—न एव धर्मैः, न अपि भोगैः, न वस्त्रैः (मम) कार्यम् (अस्ति) ।
 न अहं वृत्तिहेतोः कापायं प्रपन्नः । इयं कन्या दृष्टधर्मप्रचारा धीरा (अस्ति मतः)
 भगिन्याः चारित्रं रक्षितुं शक्ता (अस्ति) ॥६॥

संस्कृत टीका—न एव—नहि एव, धर्मैः—धनैः, न अपि भोगैः—भोग्य-
 वस्तुभिरपि न, न वस्त्रैः—न वासोभिः, (मम) कार्यम्—प्रयोजनम् (अस्ति),
 न अहं—न योग्यवरायणः, वृत्तिहेतोः—जीविकार्थम्, कापायं—गैरिकरत्नं वस्त्रं
 सन्यासमिति यावत्; प्रपन्नः—स्वीकृतवान् । इयं—पुरो दृश्यमाना, कन्या—
 कुमारी, दृष्टधर्मप्रचारा—दृष्टः=प्रवलोकितः धर्मप्रचारः=धर्माचरणं यस्याः
 सा, धीरा—पण्डिता मनस्विनीत्यर्थः (अस्ति मतः) मे—मम, भगिन्याः—
 स्वभुजः, चारित्रं—चरित्रं सतीत्वमिति यावत्, रक्षितुं—पालयितुं, शक्ता—
 समर्था (वर्तते) । (धर्मं भावः—योग्यवरायणः काञ्चुकीयं कथयति—मम
 धनैः वस्त्रैः भोग्यपदार्थैश्च प्रयोजनं नास्ति । अहं जीविकार्थं प्रवर्ज्यां न गृहीत-
 वानस्मि । इयं राजकुमारी धर्माचरणशीला विदुषी च वर्तते । मतः मम भगिन्याः
 चरित्रं रक्षितुं समर्था भवेदिति मे परो विश्वासः) ॥६॥

अनुवाद—न तो धन-सम्पत्ति मे, न सामारिक सुखों से और न वस्त्रों मे ही
 (मुझे कोई) प्रयोजन है । न मैंने धार्मिकता के लिए गृहस्था वस्त्र धारण
 किया है । यह राजकुमारी धर्मात्मा तथा विदुषी हैं । मेरी बहन के चरित्र को
 रक्षा कर सकती हैं (अतएव मेरी प्रार्थना स्वीकार करें) ॥६॥

I have no need of money, clothes, or chattells. It's not to gain a earning. that I wear these ochre garments. This wise lady knowing the path of duty will be able to guard the chastity of my sister.

टिप्पणी—(१) अर्थः, भोगः, वस्त्रः—यहाँ फल को भी हेतु मानकर हेतु मे तृतीया हुई है। (२) कापायम्—कपायेण रक्तम् इति कापायम्, कपाय+अण् 'तेन रक्तं रागात्' इत्यनेन। इसका अभिधेय अर्थ है—गेरुआ रंग में रंगा हुआ। पर लाक्षणिक अर्थ होगा—गेरुआ वस्त्र, संन्यास जीवन। यहाँ योगन्धरायण के कहने का भाव यह है कि उसने जीविका के लिए गेरुआ वस्त्र धारण नहीं किया है। वह तो त्यागी है और वैराग्य के कारण इस रूप को धारण किया है। अतः उसे वस्त्र और भोग आदि की चाह नहीं है। वह तो केवल अपनी बहन को ही राजकुमारी के पास सुरक्षित रखना चाहता है। (३) वृत्तिहेतोः—जीविका के लिए। वृत्तिः जीविका तस्याः हेतुः तस्य। (४) प्रपन्नः—ग्रहण किया। प्र+पद्+क्त (त)। (५) घोरा—विदुषी। 'घोरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्यमरः। (६) दृष्टधर्मप्रचारा—जिसका धर्माचरण देखा गया है अर्थात् धर्म-कर्म में निरत रहने वाली। (७) चरित्रम्—चर्यते अनेन इति चरित्रम्, चर्+इत् 'अतिलूधूसूखनसहचर इत्' इत्यनेन। चरित्रमेव चारित्रम्, चरित्र+अण् स्वार्थे। यहाँ तात्पर्य यह है कि जो स्वयं चरित्रवान् और धर्मपरायण है वही दूसरे के चरित्र और धर्म की रक्षा कर सकता है। पद्मावती ने अमी-अमी अपनी धार्मिक वृत्ति का परिचय दिया है। अतः योगन्धरायण को उससे पूरी आशा है कि वह उसकी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकेगी। इसी कारण वह पद्मावती के हाथ अपनी बहन को धाती रखना चाहता है। इस श्लोक में पद्मावती की न्यासरक्षणयोग्यता का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास भ्रंश-कार है और वैश्वदेवी नामक छन्द है। इसका लक्षण है—'पञ्चाशर्वविद्यता वैश्वदेवी ममी यो' ॥६॥

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हं, 'इह मं निखिखविदुकामो 'अग्न्य-योगन्धरायणो। होदु, 'अविआरिअ कमं ण करिस्सदि। [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययोगन्धरायणः। भवतु, अविचार्यं क्रमं न करिष्यति।]

वासवदत्ता—(मन में) उँह, आर्य योगन्धरायण मुझे यही सौपना चाहते हैं । प्रस्तु, बिना विचारे वे कोई काम नहीं करेंगे ।

Vasav.—(To Herself) Humph; The revered Yougandharayan wishes to entrust me to her care. Well! he will do nothing without due thought.

टिप्पणी—(१) हम्—यह वेदनासूचक अव्यय है । (२) इह—पद्मावती के पास । (३) निक्षेप्तुकामः—घरोहर रखने को इच्छुक । निक्षेप्तुं कामो यस्य स निक्षेप्तुकामः । यहाँ 'तुकाममनसोरपि' इस कारिका के बल से 'निक्षेप्तुम्' में 'म्' का लोप हो जाता है । (४) अविचार्यं क्रमं न करिष्यति—बिना सोचे-समझे कदम नहीं उठावेंगे । क्रमम्=पादवित्यासम् ।

काञ्चुकीयः—भवति ! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा । कथं प्रतिजानीमः । ? कुतः—

संस्कृत टीका—भवति !—माननीये !, अस्य—योगन्धरायणस्य, व्यपाश्रयणा—प्राश्रययाचना, खलु—निश्चयेन, महती—गुर्वी (अस्ति) । कथं—केन प्रकारेण, प्रतिजानीमः ? कुतः—यतः—

अनुवाद—कंचुकी—राजकुमारी जी ! इसकी प्राश्रय-प्राप्तता बहुत बड़ी अर्थात् बठिन है । हम कैसे स्वीकार करें ? क्योंकि—

Chamberlain—Your ladyship, his expectation seems very high. How can we promise ? because !

टिप्पणी—(१) व्यपाश्रयणा—प्राश्रय-प्राप्ति की इच्छा । वि-प्रप-प्रा/प्रि+युच् (बाहुलकात्)—अन, टाप् । यहाँ कंचुकी कहना चाहता है कि इसकी प्राप्ति को स्वीकार करना टेढ़ी सीर है । क्योंकि पहले तो न्यास की रक्षा ही दुष्कर होती है, फिर यह तो विविध न्यास है । यह सड़की है और रूपवती भी । इसके परित्र का भी पता नहीं है । वही ऐसा न हो कि विपत्ति में फँस जायें । अतएव हमकी प्रतिज्ञाया पूर्ण करना दुःसाध्य है ।

सुखमयी भवेत् दातुं सुखं प्राणा. सुखं तपः ।

सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥१०॥

अन्वय—अर्थः दातुं सुखं भवेत् प्राणाः सुखम् तपः सुखम् अन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणं दुःखम् ॥१०॥

संस्कृत टीका—अर्थः—घनम्, दातुं—समर्पयितुम्, सुखम्—अनायासं, भवेत्—स्यात्, प्राणाः—असवः, (दातुं सुखम्) तपः—तपस्या तपःफलमिति यावत् (दातुं सुखम्) अन्यत्—इतरत्, सर्वं—सकलं, सुखं—नुकरं, भवेत्(किन्तु) न्यासस्य—निक्षेपस्य, रक्षणं—धारणं, दुःख—दुष्करम् (अयं भावः—घनप्राण-तपःफलादीनां दानं सुकरं भवति किन्तु न्यासस्य रक्षणं सर्वथा दुष्करमेव । अतएव योगन्धरायणस्य भमिलापपूरणम् अस्मानिः अशक्यमस्ति) ॥१०॥

अनुवाद—घन देना आसान है । प्राण, तपस्या का फल और सब कुछ दे देना सरल है; किन्तु अमानत की रक्षा करना कठिन है ॥१०॥

It is easy to give away wealth, life or even (power of) penance. All other things are easy (but) to keep a trust safe is difficult.

टिप्पणी—(१) दातुं भवेत्—दातुम्—दान । 'तुम्' प्रत्यय यहाँ भाव मे हुआ है अतः इसका अर्थ होगा 'दानम्' अर्थात् घन देना । यहाँ 'शकधूपशाग्लावट-रमलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्' सूत्र से अस्त्यर्थ मे तुमुन् प्रत्यय हुआ । (२) प्राणाः—'पुंसि भूम्यसवः प्राणाः' इस कोश-वाक्य के प्रामाण्य से 'प्राण' शब्द का प्रयोग पुल्लिङ्ग और बहुवचन मे ही होता है । (३) न्यासस्य—घरोहर का । (४) दुःखम्—दुष्करम्, कठिन । इस श्लोक मे अर्थान्तरन्यास अलंकार है, क्योंकि 'सब कुछ देना सरल है' इस सामान्य का समर्थन 'न्यासरक्षण कठिन है' विशेष से होता है । और अनुष्टुप् छन्द है ॥१०॥

पद्मावतो—अय्य, पढमं उग्योसिअ को कि 'इच्छदित्ति अजुत्तं दाणि विआरिदु' । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठहु अय्यो । [आयं ! प्रयममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुवतमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वायंः ॥]

अनुवाद—पद्मावती—आयं ! पहले यह घोषणा करके कि कौन क्या चाहता है, अब उसमे आगा-पीछा करना अनुचित है । ये जो कहते हैं, उसे आप करें ।

Padmavati—Having proclaimed that all might ask a boon, It is not proper to hesitate pray, therefore, see that this man desires is done.

टिप्पणी—(१) उद्घोष्य—'कस्यायं कलशेन' इत्यादि द्वारा 'किसकी क्या

१. एत्थ इच्छ० (अत्र इच्छ०) ।

२. प्राणवेदि (प्राणापयति) ।

अमिलाया है, वह निःसंकोच प्रकट करें' इस प्रकार घोषणा करके । उत्/षप्+णिच्+कवा—त्यप् । (२) अनुतिष्ठतु—सम्पन्न करें ।

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याहितम् ।

कञ्चुकी—यह आपने समीचीन कहा ।

Chamberlain—Your ladyship has said the proper thing.

टिप्पणी—(१) अनुरूपम्—उचित अर्थात् कुल, शील आदि के योग्य । अनुगतं रूपमिति अनुरूपम्, 'अव्ययं विभक्ति—इत्यादिसूत्रेण अव्ययीभावसमासः ।

चेटी—चिरं जीवतु भट्टिदारिद्र्या एवं सत्त्ववादिनी [चिरं जीवतु भर्तृदारिकेवं सत्यवादिनी ।]

दासी—इस प्रकार सत्य लोलने वाली राजकुमारी चिरकाल तक जीएँ ।

Maid—Long live the princess who thus truly sticks to her word

टिप्पणी—(१) सत्यवादिनी—सत्य भाषण करने वाली । सत्यं वदितुं शीलं यस्याः सा सत्यवादिनी, सत्य/वद्+णिनि—ङीप् (ई) । कञ्चुकी को प्रतिज्ञापालन करने का आदेश देने के कारण पद्मावती के लिए चेटी ने यह विशेषण प्रयुक्त किया है । (२) चिरं जीवतु—दीर्घायु हों । यद्यपि दासी को आशीर्वाद देने का अधिकार नहीं है, किन्तु यह दासी पद्मावती की सखी के समान थी । अथवा इसने आशीर्वाद नहीं दिया बल्कि आनन्दातिरेक में अपना मानसिक उद्गार प्रकट किया ।

तापसी—चिरं जीवतु भद्रे ! [चिरं जीवतु भद्रे ।]

तापसी—मंगलमयी ! (घाप, दीर्घायु हों ।

Lady ascetic—Long live good girl.

काञ्चुकीयः—भवति ! तया । (उपगम्य) भोः ! अम्युपगतमत्र भवतो भगिन्याः परिपालनमत्र भवत्या ।

कञ्चुकी—अन्ता, देवी ! (ममीप जाकर) भगवन् ! माननीया राजकुमारी ने आशीर्वाद बहन की देखभाल करना स्वीकार कर लिया है ।

Chamberlain—Your ladyship (alright) (Approaching) Sir, her ladyship has agreed to be the guardian of your sister,

योगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से ! उपसर्पात्र-
भवतीम् ।

योगन्धरायण—राजकुमारी जी ने मुझ पर बड़ी कृपा की । बच्ची !
देवी जी के पास जा ।

Young.—I am favoured by the princess. Go, girl, to the lady.
वासवदत्ता—[आत्मगतम्] का गई । ऐसा गच्छामि मन्दभागा ।
[का गतिः एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

वासवदत्ता—दूसरा उपाय ही क्या है । मैं अमागी अब जाती हूँ ।

Vasav—(Aside) what help ? unhappy that I am, I go.

टिप्पणी—(१) भवति—हे माननीय पद्मावती । भवत्+ञीप् (ई)—भवती ।
सम्बोधन एकवचन में 'हे भवति' रूप होता है । (२) तथा—ऐसा ही हो ।
यहाँ 'अस्तु' क्रिया छिपी हुई है । वास्तव में 'तथास्तु' होना चाहिए । (३) अभ्युप-
गतम्—स्वीकार कर लिया गया है अमि+उप्+गम्+क्त (त) कर्मणि ।
(४) अत्रभवतः—पूज्य आपकी (भगिनी) । (५) का गतिः—दूसरा उपाय
क्या है । अर्थात् पद्मावती की संरक्षकता में जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय
नहीं है । (६) मन्दभागा—मन्दः=अल्पः भागः=भाग्य यस्याः सा । 'भागो
रूप्यायंके भाग्यैकदेशयोः' इति हैमः । यहाँ वासवदत्ता अपने को अमागिनी इस-
लिए कह रही है कि एक तो पति और बन्धु-बान्धवों का वियोग वह सहन कर
ही रही थी, अब दूसरा एकमात्र अवलम्बन योगन्धरायण का भी वियोग सहन
करना पड़ेगा, इससे बढ़कर दुर्भाग्य क्या होगा ।

पद्मावती—भोदु भोदु । अत्तणीया दाणि संवृत्ता । [भवतु
भवतु । आत्मीयेदानीं संवृत्ता ।]

पद्मावती—अच्छा, अच्छा । अब यह अपनी हो गई ।

Padmavati—It's well, it's well, Now you are one of us.

टिप्पणी—(१) भवतु भवतु—अच्छा अच्छा । यह अव्यय है । इस
द्विरक्ति से हर्ष प्रकट हो रहा है । दुःखित वासवदत्ता को आश्वासन देती हुई
पद्मावती कहती है भवतु भवतु अर्थात् अलमलम् खेदेन (दुःख मत करो) ।
(२) आत्मीया—अपनी । आत्मनः इयम् आत्मीया । आत्मन्+ङ—ईय ।
(३) संवृत्ता—हो गई । सम्+वृत्+क्त (त)+टाप् (भा) ।

तापसी—जा ईदिसी से आइदो, इयं वि राजदारिग्रहि तवकेमि ।
[या ईदुइयस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि ।]

तापसी—जब इसकी ऐसी आकृति है तो मेरा अनुमान है कि यह भी राज-कुमारी है ।

Lady ascetic—For this form of hers, I think, she too is a princess.

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अनुभूतसुहृत्ति पेक्खामि ।
[सुण्ठु आर्या भणति । अहमपि अनुभूतसुखेति पश्यामि ।]

दासी—आर्या ठोक कह रही हैं । मैं भी समझती हूँ कि यह सुख में पत्नी है ।

Maid—Rightly says the Madam. I too can see that she has enjoyed prosperity.

टिप्पणी—(१) अनुभूतसुखा—जिसने सुख भोगा हो । अनुभूतम्=उपभूतं सुखं=राजकन्यकोचितमैश्वर्यं यया सा । वासवदत्ता के शरीर की सुकुमारता, रमणीयता आदि देख कर दासी अनुमान करती है कि अवश्य ही यह राजकुल की कन्या है । अनुभूत—अनु+भू+कृत (त) कर्मणि ।

योगन्धरायणः—[आत्मगतम्] हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य ।
यया मन्त्रिभिः सह समायितं, तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहावभवतो मगधराजपुत्री विद्वत्संस्थानं भविष्यति । कुतः—

संस्कृत टीका—हन्त भोः—हर्षमूचकमध्ययद्वयम्, भारस्य—उत्तरदायित्व-पूर्णकार्यस्य, अर्धम्—अर्धभागः, अवसितम्—सम्पन्नम् । मन्त्रिभिः सह—रमण्य-दादिभिः साकं, यया—यादृश, समायितं—निर्धारितं, तथा—तादृश, परिणमति—कार्यं फलति । ततः—तदनन्तरं, प्रतिष्ठिते—राज्यसिंहासनमपिरुढे, स्वामिनि—उदयने, तत्रभवतीम्—वागवदत्ताम्, उपनयतः—स्वामिनो निवृत्त प्रापयतः, मे—मम, इह—आमवदत्तायाश्चारित्र्यविषये, अत्रभवती—माननीया, मगध-राजपुत्री—मगधेश्वरदुहिता पद्मावती, विद्वत्संस्थानं—विद्वत्तनीया सावित्री, भविष्यति सम्पत्स्यते । [अयं भावः—महाराजोदयनस्य राज्य विपक्षिणः प्रत्या-हरणीयम् इति संकल्परूपमारस्य अर्थो भागः वागवदत्तायाः पद्मावतीहस्ते न्यासेन मम शिरसोऽवतीर्णः । रमण्यदादिभिः मन्त्रिभिः सह मन्त्रयित्वा येन प्रकारेण

कार्यं कर्तुम् अवधारितं तेनैव प्रकारेण कार्यं फलति । क्रमेण पुनः स्वामिनि स्वराज्य-
सिंहासनाख्ये तेन सह वासवदत्तां संयोजयिष्यन्नहं तस्याः चारित्र्यशुद्धिविषये
पद्मावतीमेव विश्वसनीयां साक्षिणीं कर्तुं प्रमविष्यामि ।)

अनुवाद--योगन्धरायण—(मन में) भ्राता ! आधा भार तो उतर गया । मंत्रियों
के साथ जैसा निश्चय किया गया था वैसा ही हो रहा है । क्रमशः स्वामी (महाराज
उदयन) के राजसिंहासन पर बैठ जाने के पश्चात् जब मैं वासवदत्ता को उनके
पास ले जाऊँगा तो माननीया मगधराजकुमारी ही इस सम्बन्ध में अर्थात्
(वासवदत्ता की चरित्र-शुद्धि के बारे में) साक्षिणी होगी । क्योंकि—

Yong.—(To himself) so half of my burden is thus discharged.
The scheme, which my ministers devised is upon the high road
to success at the hands of the princess of Magadha, who will
take her ladyship (Vasav) in possession. Now.

टिप्पणी—(१) अर्धम्—खंडवाची अर्ध शब्द पुल्लिङ्ग है, जैसे—ग्रामार्धः,
नगरार्धः । किन्तु समान अंश (भाग) वाची अर्ध शब्द नित्य नपुंसक लिङ्ग है ।
'अर्धं समेशके' इत्यमरः । (२) अवसितम्—समाप्त हो गया । 'अवसीयते स्म'
इस विग्रह मे अव उपसर्गपूर्वक पो अन्तकर्मणि घातु से क्त प्रत्यय होने पर 'वसि-
त्यतिमास्यामिति किति' सूत्र से इत्व हुआ । (३) उपनयतः—निकट ले जाते
हुए । उप/नी+लट्—शतृ । यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से लट्
हुआ है ।

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री

दृष्ट्वा विपत्तिरथ येः प्रथमं प्रदिष्टा ।

तत्प्रययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-

न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥११॥

अन्वय—येः प्रथमं विपत्तिः दृष्ट्वा (तैः) अथ पद्मावती नरपतेः महिषी पत्नी
भवित्री प्रदिष्टा । तत्प्रययात् इदं कृतम् । हि विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि
उत्क्रम्य न गच्छति ॥११॥

संस्कृत टीका—येः—पुष्पकमद्रादिभिः सिद्धपुरुषैः, प्रथमं—पूर्वम्, विपत्तिः—
विपत् उदयनस्य राज्यनाश इति यावत्, दृष्ट्वा—भवलोकित्वा संसृजितेति यावत्,
(तैः) अथ—अनन्तरम्, पद्मावती—मगधराजपुत्री, नरपतेः—उदयनस्य, महिषी—

पत्नी भवित्री—भवित्री, प्रदिष्टा—निगदिता सूचितेति यावत् । तत्प्रत्ययात्—
तेषु सिद्धेषु प्रययात् विश्वासात्, इदं—पद्मावत्या हस्ते वासवदत्ताया निक्षेपणं,
कृत—विहितम् । हि—यस्मात्, विधिः—मायम् सुपरीक्षितानि—अनेकथा
सत्प्रत्यपरीक्षया वीक्षितानि, सिद्धवाक्यानि—सिद्धपुरुषाणां वचनानि, उत्क्रम्य—
उत्तलंघ्य, न गच्छति—न व्रजति । अयं भावः—यैः सिद्धपुरुषैः पूर्वम् अस्मन्महा-
राजस्योदयनस्य राज्यनाशः उक्तः सरेव पश्चात् पद्मावत्या सह महाराजस्य
परिणयोऽपि निगदितः । तेषाम् एका भविष्यवाणी सत्या अभूत्, अपरापि तथैव
स्यात् इति विश्वासादेव मया पद्मावत्याः सन्निधौ न्यारारूपेण वासवदत्ता स्थापिता ।
विधिरपि सिद्धोक्तिम् उत्तलंघ्य गन्तुं न प्रभवति, अपि तु तदनुसारमेव फलं ददाति ।
तथा तति स्वराज्या पद्मावत्या सूच्यमानं विरविगुक्ताया अपि वासवदत्तायाः
चारित्र्यशुद्धिविषयकं साध्यं राज्ञो विश्वासमुत्पादयिष्यत्येव ।) ॥११॥

अनुवाद—जिन्होंने पहले (माने वाली) विपत्ति को बताया था, उन्होंने (ही)
पश्चात् पद्मावती राजा उदयन की पटरानी होंगी—यह भविष्यवाणी की थी । उन्होंने
मे विश्वास के कारण यह (वासवदत्ता का सौपना) किया है । क्योंकि माय्य अच्छी
तरह परखे हुए सिद्धों के वचनों का उत्तलंघन करके नहीं चलता है ॥११॥

That this same Padmavati would be the queen of the lord
was declared by those seers, who prophesied our present adverse
fortune. I acted from faith in them. Fate does not go beyond
the divine oracles which have been tried already and found to
be true.

टिप्पणी—(१) महियो—पटरानी, पट्टानिपिक्ता महाराज्ञी । 'कृतमिवैका
महियो' इत्यमरः । (२) भवित्री—होने वाली । मू घातु से भविष्यत् के अर्थ में
तुच् प्रत्यय और ऋदन्तत्वात् टोप् हुमा । (३) प्रदिष्टा—कही गई । प्र+दिष्+
क्त्वा (स) टाप् (घा) । (४) तत्प्रत्ययात्—उनमें विश्वास रखने के कारण ।
तेषु प्रत्ययः तत्प्रत्ययः तस्मात् हेतु में पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है ।
(५) सुपरीक्षितानि—मसी नानि परखे हुए । (६) सिद्धवाक्यानि—शुद्धिबला
वाच्यपुरुषों के वचन । सिद्धानां वाक्यानि । प० तत्पु० । (७) उत्क्रम्य—
उत्तलंघन करके, उत्+क्रम्+स्वप् । परि+ईशु+क्त्वा (त) । (कर्मणि) शुद्धिपरीक्षि-
तानि । सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि का विशेषण है । (८) उत्क्रम्य—अति-
क्रमण करके । उत्+क्रम्+स्वप् । यहाँ तात्पर्य यह है कि माय्य भी सिद्धों की वाणी
के अनुसार ही चलता है, क्योंकि वे सोच-विचार कर ही कहते हैं । तो जब सिद्धों

की उदयन की राज्यच्युति रूप एक बात ठीक हो चुकी है तो कोई कारण नहीं है कि उनकी दूसरी बात—पद्मावती उदयन की पटरानी होगी—ठीक न हो। इसलिए पद्मावती के पास वासवदत्ता को धाती रखने में कोई भय नहीं है, ऐसा योग्यधरायण सोच रहा है। इस श्लोक में काव्यलिङ्ग अलंकार और वसन्त-तिलका छन्द है ॥१॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—[ऊर्ध्वमवलोक्य] स्थितो मध्याह्नः । दृढमस्मि परि-
श्रान्तः । अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? [परिक्रम्य] भवतु,
दृष्टम् । अभितस्तपोवनेन भवितव्यम् । तथाहि—

संस्कृत टीका—ऊर्ध्वम्—उपरि, अवलोक्य—दृष्ट्वा, मध्याह्नः—दिनस्य
मध्यभागः, स्थितः—वर्तते । दृढम्—अत्यन्तम्, परिश्रान्तः—क्लान्तः, अस्मि—
विद्ये, अथ—प्रश्नवाचकमव्ययमिदम्, कस्मिन् प्रदेशे—कस्मिन् स्थाने, विश्रम-
यिष्ये ?—विश्रान्तिं प्राप्स्यिष्ये आत्मानमिति शेषः ? परिक्रम्य—इतस्ततः
परिभ्रम्य, भवतु—अस्तु तावत्, दृष्टम्—अवलोकितम् विश्रामयोग्यस्थलमिति
शेषः । अभितः—निकटं, तपोवनेन—तापसाश्रमेण, भवितव्यम्—भाव्यम्
(इत्यनुमीयते) तथा हि—तदेव दर्शयामि—

अनुवाद—(तदनन्तर ब्रह्मचारी का प्रवेश) ब्रह्मचारी—(ऊपर देखकर)
मध्याह्नकाल हो गया । मैं बहुत थक चला हूँ । किस स्थान में विश्राम करूँ ?
(घूमकर) अच्छा, (स्थान) देख लिया । तपोवन समीप ही जान पड़ता है । क्योंकि—

(Then enters a religious student.) (Looking upwards) It's
now high noon and I am very weary. Where shall I go to find a
resting place ? (goes about) well I see. A penance grove seems
to be near-by Because :—

टिप्पणी—(१) मध्याह्नः—दोपहर । 'मह्य. मध्यम्' इस विग्रह में 'सर्वोऽप्ये-
कदेशोऽह्ना समस्यते 'सह्याविषाय' इति ज्ञापकात्' इस नियम के बल से 'पूर्वा-
पराद्धोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' सूत्र से समास हुआ और 'मह्योऽह्ना एतेभ्यः' सूत्र
से 'महन्' को 'मह्य' आदेश हो गया । (२) दृढम्—यह क्रियाविशेषण है ।
(३) अथ—यह प्रश्नवाची अव्यय है । 'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्येव्ययो अथ'
इत्यमरः । (४) विश्रमयिष्ये—विश्राम करूँगा—वि+श्रम्+णिच् (स्वायें)+
सृट् । उ० पु० ए० व० । (५) परिक्रम्य—घूमकर परि+क्रम्+स्पृ ।

(६) अभितः—समीप में । 'समीपोमयतः शीघ्रसाकल्यामिमुखेऽमितः' इत्यमरः
(७) ब्रह्मचारी—वेदाध्ययन का व्रती—ब्रह्म चरितुं शीलं यस्य सः । ब्रह्म +
चर + णिनिः ताच्छील्ये । (८) दृष्टम्—देख लिया ।

विस्रब्धं^१ हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया^२

वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः^३ सर्वे दयारक्षिताः ।

भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो

निःसन्दिग्धमिदं ततोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥१२॥

अन्वय—देशागतप्रत्ययाः अचकिताः हरिणाः विस्रब्ध चरन्ति दयारक्षिताः
सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः । कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम् । दिशः
अक्षेत्रवत्यः । हि अयं धूमः बह्वाश्रयः । इदं निःसन्दिग्धं तपोवनम् ॥१२॥

संस्कृत-टीका—देशागतप्रत्ययाः—देशे अस्मिन् प्रदेशे आगतः प्राप्तः प्रत्ययः
विश्वासः येषां ते तादृशाः, (अतः) अचकिताः—निर्भयाः (सन्तः), हरिणाः—
मृगाः, विस्रब्धं—विश्वस्तं यथा स्यात् तथा, चरन्ति—विचरणं कुर्वन्ति ।
दयारक्षिताः—दयया कष्टण्या रक्षिताः, सर्वे—निर्विता, वृक्षाः—तरवः,
पुष्पफलैः—पुष्पैः फलैश्च, समृद्धविटपाः—समृद्धाः परिपूर्णाः विटपाः शाखाः
येषां ते तथामूलाः (सन्ति) । कपिलानि—कपिलवर्णानि, गोकुलधनानि—गवा
धेनूनां कुलानि समूहाः धनानि अर्था इव, भूयिष्ठम्—बहुतम् बाहुल्येनेति भावः
(सन्ति) । दिशः—दिग्भूमयः, अक्षेत्रवत्यः—क्षेत्राणि केदाराः परितः कृष्टा
भूमय इत्यर्थः तैः शून्याः (सन्ति) । हि—निश्चयेन, अयं—समस्तवर्ती, धूमः—
अग्नेर्वाष्पः, बह्वाश्रयः—बहवः अनेके आश्रया उद्गमस्थानानि यस्य स तथामूलः
(अस्ति अतएव) इदं—पुरोदृश्यमानं, निःसन्दिग्धं—निश्चितं, तपोवन—
तपस्विनामाश्रमः (अस्ति) [अथ भावः—अस्मिन् प्रदेशे मृगाः अकुतोभयाः सन्तः
विचरन्ति, वृक्षाः फलपुष्पाद्याः वर्तन्ते, कपिला भावः भूयस्त्वेन दृश्यन्ते, प्रांत-
भूमिषु कुपिप्रयोजनानां क्षेत्राणां नामापि नास्ति, हवनीयद्रव्याश्रयो धूमः सर्वतः
प्रसरति । एभिः, कारणैः नूनमिदं तपोवनमेवेति] ॥१२॥

अन्वाव—इस प्रदेश में विश्वस्त एव भयरहित मृगगण निःशक होकर चर रहे
हैं । दया से पाले हुए वृक्षों की डालियाँ फूलों और फलों से लदी हुई हैं ।
कैसी पायों के समूह रूपी घन की प्रचुरता दिखाई दे रही है । चारों दिशाओं
में जेतों का प्रभाव है । निश्चय ही यह घुर्घा घनेक स्थानों से ऊपर उठ रहा
है । अतएव यह निःसंदेह तपोवन है ॥१२॥

१ विस्रब्धः । २. प्रत्ययात् । ३. विमृष्टा ।

With confidence engendered by this region, the deer are calmly moving about undisturbed. The trees nurtured tenderly, have branches full of flowers and fruits: great is the wealth of the herds of tawny cows; no signs of tilth are seen in any quarter. Beyond all doubt is a hermitage. This is proved by the smoke rising from many directions.

टिप्पणी—(१) देशागतप्रत्ययाः—देशात्=तपोवनस्थानानात् वा तत्रत्यजनात् आगतः प्रत्ययो येषां ते । जिनमे तपोवन के स्थान से या वहाँ के प्राणी से विश्वास उत्पन्न हो गया है । देशागतप्रत्ययात् पाठ में 'हेतो पंचमी' से पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है । (२) विश्रब्धम्—विश्वस्त । वि+स्रम्+क्त (त) । क्रिया-विशेषण है तथा 'चरन्ति' क्रिया की विशेषता बतलाता है । विश्रब्धाः पाठ में हरिणाः का विशेषण है । (३) पुष्पफलैः—पुष्पाणि च फलानि च तैः, इतरेतर-योगद्वन्द्व-समास अथवा पुष्पसहितानि फलानि तैः, मध्यमपदलोपी समास । (४) समृद्धविटपाः—भरी हुई हैं शाखायें जिनकी । समृद्धाः विटपाः येषां ते । (५) कपिलानि—पिगल वर्ण या पीले रंग की । 'कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गी' इत्यमरः । कपिला गाय का दर्शन बहुत पवित्र माना गया है—'अग्निचित् कपिलासत्री राजा मिक्षुमंहोदधिः । दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत् नित्यशः' । (६) गोकुलघनानि—गवां कुलानि गोकुलानि तानि घनानि इव उपमित समास । गायें ऋषियो का एकमात्र घन है । (७) भूयिष्ठम्—अधिकता से । यह क्रिया-विशेषण है । यहाँ 'सन्ति' यह क्रिया आक्षेपलभ्य है । बहु शब्द से अत्यंत बहुत के अर्थ में 'अतिशायने तमविष्ठनी' सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय और 'इष्ठस्य यिट् च' सूत्र से बहु शब्द को भू आदेश और यिट् का आगम करने पर भूयिष्ठ शब्द की सिद्धि होती है । (८) बह्वाश्रयः—बहुत से आश्रय उद्गम—स्वान हैं जिसके (घुम्राँ) अर्थात् घुम्राँ अनेक स्थानों में उठ रहा है । इस श्लोक में स्वभावोक्ति तथा वाक्यार्थ-हस्तुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है । 'स्वभावोक्तिस्तु डिम्मादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्' । 'हेतोर्विक्रियपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते ।' ॥१२॥

यावत्प्रविशामि । [प्रविश्य] अये ! आश्रमविरुद्धः खल्वेव जनः ।

[अन्यतो विलोदय] अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र । निर्दोषमुपसर्पणम् ।

अये ! स्त्रीजनः ।

तो भीतर चलूँ । [प्रविष्ट होकर] भरे ! यह आदमी तो आश्रम के विरुद्ध (अर्थात् रहने वाला नहीं) मालूम होता है । [दूसरी तरफ देखकर] या यहाँ

तपस्वी लोग भी हैं। जाने में कोई दोष नहीं। अरे ! स्त्रियाँ (भी हैं)।

I shall just enter. (Entering) Oh ! the person does not accord with a hermitage (looking in another direction). But here are ascetics also. Approaching them would be no fault Oh. there are women.

टिप्पणी (१) यावत्—यह एक अव्यय है, जिसका प्रयोग वाक्य को अलंकृत करने के लिए किया जाता है। (२) प्रविशामि—भीतर चलता हूँ। उ० पु० ए० व०। लट् लकार। यहाँ 'वर्तमानसमोप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से लट् लकार हुआ। (३) अये—यह आश्चर्य तथा शङ्कामूचक अव्यय है। नागरिक वेष में कंचुकी को देखकर ब्रह्मचारी शङ्का प्रकट करता है कि यह तपोवन है या नहीं। (४) स्त्रीजनः—पद्मावती, वासवदत्ता आदि।

काञ्चुकीयः—स्वरं स्वरं प्रविशतु भवान्। सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम।

कंचुकी—बिना सोचे-भटके चले आइये। आश्रम तो सभी के लिए खुला है।

Chamberlain—You may enter freely in perfect ease. The region of a hermitage is really free to all people.

टिप्पणी—(१) स्वरं स्वरं—स्वच्छन्द, निःशङ्क। यहाँ प्रवेश-शङ्का-निवारण की उतावली दिखाने के लिए दो बार उच्चारण किया गया है। (२) सर्वजन-साधारणमाश्रमपदं नाम—यहाँ कंचुकी के कहने का तात्पर्य यह है कि तपोवन सब व्यक्तियों के लिए एक समान होता है। जैसे उसमें तपस्वी प्रवेश कर सकते हैं वैसे ही अन्य भी। अतएव यहाँ स्त्रियों के उपस्थित होने से ब्रह्मचारी किसी प्रकार का सङ्कोच न करें। निःशङ्क आएं।

वासवदत्ता—हम् !

वासवदत्ता—उह ।

Vasav.—Hum.

टिप्पणी—हम्—यह असम्मतिमूचक अनुकरण शब्द है। कंचुकी के कहने से बेघडक घुसते हुए ब्रह्मचारी को देखकर परपुरुष के दर्शन में लज्जित होने वाली वासवदत्ता ने अपनी असम्मति या अश्वि जताने के लिए इस शब्द का उच्चारण किया।

पद्मावती—अम्नो ! परपुरुषसंदर्शनं परिहरदि अय्या। भोदु, सुपरिवाल-

णीओक्खु मण्णासो । [अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या ।
भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः ।]

पद्मावती—अहा ! आर्या (वासवदत्ता) दूसरे पुरुष को देखना नहीं चाहती ।
अच्छा, अब मेरे घोरोहर की रक्षा बहुत सरल हो गई ।

Padmavati—Look how the lady shuns the sight of strangers.
It is well. My charge can be easily protected.

टिप्पणी—(१) परपुरुषदर्शनम्—(अपने पति को छोड़ कर) अन्य पुरुष
का दर्शन । (२) परिहरति—त्यागती है । परि+हृ+लट् । प्र० पु० ए० व० ।
(३) सुपरिपालनीयः—आसानी से पालन करने योग्य । क्योंकि जब वह एक
तपस्वी पुरुष तक का मुँह देखना नहीं चाहती तो भला लम्पट पुरुषों के बहकावे में
कैसे पड़ सकती है । इसलिए ऐसी पतिव्रता स्त्री के चरित्र की रक्षा करने में
कठिनाइयाँ न होंगी । अथवा यहां इस प्रकार अर्थ करना चाहिए—‘मेरी घोरोहर
की देख-रेख बड़े यत्न से होनी चाहिए अर्थात् हम लोग ऐसा कार्य कदापि न करें
जो इसकी इच्छा के प्रतिकूल हों । (४) मन्न्यासः—मेरी घोरोहर ।

काञ्चुकीयः—भोः पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथि-
सत्कारः ।

कंचुकी—महोदय ! हम लोग पहले से आये हुए हैं । (इसलिए आप
हमारा) आतिथ्य सत्कार स्वीकार करें ।

Chamberlain—Sir, we are the first comers. Pray accept such
hospitality as I can offer.

ब्रह्मचारी—[आचम्य] भवतु-भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि

ब्रह्मचारी—[आचमन करने] बस-बस ! मेरी थकावट दूर हो गई ।

Brahmchari—(Sipping water). My weariness is gone.

योगन्धरायणः—भोः ! कुत आगम्यते, यव गन्तव्यं, क्वाधिष्ठान-
मार्यस्य ।

योगन्धरायण—महोदय, कहां से आ रहे हैं ? कहां जाना है ? और कहां
आपका शुभ स्थान है ?

Yaug.—Sir, whence do you come ? where are you going ?
where is your residence.

ब्रह्मचारी—भोः ! श्रयताम् । राजगृहतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थं
वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

ब्रह्मचारी—श्रीमन् ! सुनें । मैं राजगृह से आ रहा हूँ । (महाराज वत्स)
के राज्य में लावाणक नाम का एक गाँव है, वहाँ मैं वेद का विशेष अध्ययन
करने के लिए रह चुका हूँ ।

Brahmchari—Sir, hear. I am from Rajgriha. For specialising
in shruti I lived in a village named Lavanak in the country of
vatsa.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हा लावाणकं नाम । लावाणकसंस्कृति-
णेण पुणो णवोदिको विअ मे सन्दावो । [हा लावाणकं नाम ।
लावाणकसंस्कृतिनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।]

वासवदत्ता—(मन में) हाय ! लावाणक ! लावाणक के नामोच्चारण
ने मेरे सन्ताप को फिर ताजा-सा कर दिया ।

Vasava.—(To herself) Oh, by name Lavanak my distress is
as it were intensified by the respected utterance of Lavanak.

योगधरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

योगधरायण—क्या अध्ययन समाप्त हो गया ?

Yong.—Are your studies finished.

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

ब्रह्मचारी—अभी नहीं ।

Brahmchari—Not yet.

योगधरायण—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

योगधरायण—अदि अध्ययन समाप्त नहीं हुआ तो चले क्यों आये ?

Yang.—If your studies are not completed why have you
come ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संबृत्तम् ।

ब्रह्मचारी—वहाँ बड़ी भारी विपत्ति पड़ गई ।

Brahmchari—There cropped up indeed a great calamity

योगन्धरायणः—कथमिव ?

योगन्धरायण—कैसी (विपत्ति) ?

Yang.—What calamity.

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नामक राजा रहते थे ।

Brahmchari—A king Udayana dwelt there.

योगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

योगन्धरायण—महाराज उदयन का नाम सुना है । उन्हें क्या हुआ ?

Yang.—Yes I have heard the name. What of him ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

ब्रह्मचारी—उनकी मालवराजकुमारी वासवदत्ता नाम की पत्नी बड़ी प्यारी थी ।

Brahmchari—He had a bride, the princess of Ujjain, Vasvadata, whom he dearly loved.

योगन्धरायणः—भयितव्यम् । ततस्ततः ?

योगन्धरायण—होगी । तब क्या हुआ ?

Yang.—Well, further ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

ब्रह्मचारी—जब (एक दिन) राजा के शिकार खेलने के लिए चले जाने पर गाँव में ग्राम लगने से वह जल मरी ।

Brahmchari—When once the king had been out for a hunting, she was burnt in a village-fire.

यासवदत्ता—[आत्मगतम्] अलिप्तं अलिप्तं सु एदं । जीवामि मन्द-
भागा । [अलीकम् अलीकं असु एतत् । जीवामि मन्दभागा ।

यासवदत्ता—(मन में) मिथ्या है ! यह बिलकुल मिथ्या है । मैं मरनागिन
की रही हूँ ।

Vasava.—(To herself) False indeed. It is false. I am alive, ill-fated (though I am).

योगन्धरायणः—ततस्ततः ?

योगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

Yaug.—Well then ?

ब्रह्मचारी—ततस्तामन्यवपत्सुकामो योगन्धरायणो नाम सचिव-
स्तस्मिन्नेवान्नो पतितः ।

ब्रह्मचारी—तब उसको बचाने के लिए योगन्धरायण नाम का मंत्री उसी
आग में गिर पड़ा ।

Brahmchari—Then the minister named Yaugandharayan
fell in the same fire desirous of rescuing her.

योगन्धरायणः—सत्यं पतित इति । ततस्ततः ?

योगन्धरायण—सचमुच गिर पड़ा ? फिर क्या हुआ ?

Yaug.—Did he really fall ? What then ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोग-
जनितसन्तापस्तस्मिन्नेवान्नो प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यमंहता
यत्नेन वारितः ।

संस्कृत टीका—ततः—मृगयातः, प्रतिनिवृत्तः—प्रत्यागतः, राजा—उदयनः,
तद्वृत्तान्तं—तत् तादृशं वासवदत्तायोगन्धरायणयोर्दाहविषयकं वृत्तान्तं समाचारं,
श्रुत्वा—आकर्ष्य, तयोः—पत्न्यमात्ययोः, वियोगजनितसन्तापः—वियोगेन
विरहेण जनितः उत्पन्नः सन्तापः प्रतिक्लेशः यस्य न तयामृतः, (धन्) तस्मिन्
एव—तत्रैव, अन्नो—ब्रह्मो, प्राणान्—अणून्, परित्यक्तुकामः—हातुमिच्छन्,
अमात्यः—मन्त्रिभिः, मंहता—अत्यन्तेन, यत्नेन, वारितः—निषेधितः ।

अनुवाद—ब्रह्मचारी—सिकार से लौटने पर जब राजा ने उन दोनों का
समाचार सुना तब वह उनके वियोग से सन्तप्त होकर उसी आग में (कूद कर)
प्राण छोड़ने को उतारू हो गया । किन्तु मन्त्रियों ने बड़े यत्न से उसे रोक रखा ।

Brahmchari—Then when the King returned and heard the
news, he was heart-broken by the loss of these and sought to
end his life in the same flame but by ~~manifores~~ his ministers
restrained him.

टिप्पणी—[‘सुपरिपालनीयः’ के आगे के शब्दों की टिप्पणियाँ यही दी जा रही हैं—] (१) प्रतिगृह्यताम्—स्वीकार कीजिए प्रति+ग्रह्+लोट् कर्मणि । म० पु० ए० व० । (२) अतिथिसत्कारः—पाहुन की भावमगत । अतिथेः सत्कारः वा अतिथियोग्यः सत्कारः मध्यमपदलोपी समास । अतिथि-सत्कार भारतीय संस्कृति की बड़ी विशेषता रही है । लिखा है—‘अतिथियस्य मन्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति । अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते । छेत्तुः पाश्वंगतां छाया नोपसंहरने द्रुमः’ (३) आचम्य—आचमन करके । आह्+चम्+ल्यप् । (४) निवृत्तपरिश्रमः—जिसकी थकावट दूर हो गई है । नि+वृत्+वत्(त) कर्तरि । परिश्रमः—परि+श्रम्+घञ् । निवृत्तः=अपगतः परिश्रमः=कलान्तिः यस्य सः, बहुव्रीहि समास । (५) अधिष्ठानम्—स्थान । अधि+स्था+ल्युट् अधिकरणे । (६) क्व—कहाँ ? किम्+ङि+अत्, कुं आदेशः । (७) राजगृहतः—यहाँ ‘अपादाने चाहीयच्छोः’ सूत्र से ‘तत् आगतः’ इस अर्थ में तसि प्रत्यय हुआ । (८) श्रुतिविशेषणार्थम्—वेद का विशिष्ट ज्ञान करने के लिए । श्रुतेः विशेषणम्=विशिष्टज्ञानोत्पत्तिः तदर्थम् । (९) वस-भूमौ—उदयन के राज्य में । यह राज्य प्रयाग के चारों ओर यमुना के दक्षिणी किनारे पर फैला हुआ था । इसकी राजधानी कोशाम्बी थी, जो प्रयाग के लगभग २५ मील दक्षिण-पश्चिम कोने में है । (१०) उषितवान्—निवास किया । √वस्+वत्तवत् कर्तरि, ‘वसतिक्षुघोरिट्’ इति सूत्रेण इडागमः, यजादित्वात् सम्प्रसारणम् । (११) नवीकृतः—नया कर दिया । अनवीकृति नव इव कृतः इति नवीकृतः, नव+च्वि; ईत्वं√कृ+वत्(त) । (१२) अनवसिता—समाप्त नहीं ; अव√सो+वत्—टाप्, (आ) न अवसिता अनवसिता । (१३) व्यसनम्—विपत्ति । ‘व्यसनं विपदि भ्रंशे’ इत्यमरः । (१४) संवृत्तम्—पड़ गई है । सम+वृत्+वत्(त) । (१५) दृढमभिप्रेता—अत्यन्त प्रिया । (१६) किल—सोगों में यह प्रसिद्ध है, लोकप्रसिद्धि, लोकवार्ता । (१७) ग्रामवाहेन—गाँव में आग लग जाने से, गाँव के अग्निबाँह से । ‘हेतो तृतीया’ से तृतीया हुई है । (१८) मृगया निवृत्तान्ते—मृगया के लिए निकलने पर । निवृत्+कृ+वत्(त) कर्तरि (गत्यर्थे-त्वान्) भावे सप्तमी । (१९) अलीकम् अलीकम्—सरासर झूठ । ‘अलीकं स्वप्नियेजृते’ इत्यमरः । यहाँ मृगार्थ में द्वित्व हुआ है । (२०) ग्राम्यवपसुतामः—विपत्ति में बचने की इच्छा रखने वाला । ग्राम्यवपसुतां वपसने साहाय्य दानुं वामः अमितापः यस्य स तादृशः । तुमुन्तां भू (तुक्तामनगोरवि) में सुप्त हो गया है ।

‘व्यसनसाहाय्यमध्यवपत्तिः’ इति कौटिलीयमवंशास्त्रम् । (२१) प्रतिनिवृत्तः—
लौटा हुआ (२२) तद्भूतान्तम्—जयोर्वृत्तान्तः तम् अथवा स चासी वृत्तान्तः
तम् । (२३) वियोगजनितसन्तापः—वियोगेन जनितः सन्तापः यस्य सः त्रिपद-
बहुव्रीहि समास । (२४) अमात्यैः—मन्त्रियों ने, अमा सह वर्तते इति विग्रहे अमा+
त्पप् ‘अव्ययात्पप्’ इति सूत्रेण । (२५) वारितः—रोका गया ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जानामि जानामि अय्यउत्तस्स मइ
सानुक्कोसत्तणं । [जानामि जानाम्यायंपुत्रस्य मयि सानु-
क्कोशित्वम् ।]

वासवदत्ता—[मन में] जानती हूँ, जानती हूँ, (अर्थात् मैं अच्छी तरह
जानती हूँ कि) आर्यपुत्र मुझ पर कृपा रखते हैं ।

Vasava.—(aside) such is my prince's tender love for me.

योगन्धरायणः—ततस्ततः ?

योगन्धरायण—तब क्या हुआ ?

Yang.—Yes, yes proceed.

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाभ्यामरणांनि
परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः

संस्कृत टीका—ततः—तदनन्तरम्, तस्याः—वासवदत्तायाः, शरीरोप-
भुक्तानि—शरीरे देहे उपभुक्तानि परिहितानि, दग्धशेषाणि—दग्धेभ्यः शेषाणि
दग्धावशिष्टानि इति यावत्, आमरणानि—आमूषणानि, परिष्वज्य—आलिङ्ग्य
राजा—उदयनः, मोहम्—मूर्च्छाम्, उपगतः—प्राप्तः ।

ब्रह्मचारी—पश्चात् वासवदत्ता के पहले हुए गहनो को, जो जलने से बच
गये थे, छाती से लगाकर राजा मूर्च्छित हो गये ।

Brahmchari.—Then the King fell in a Swoon embracing the
burnt remains of her ornaments that she used to put on.

टिप्पणी—(१) जानामि जानामि—तत्पक् प्रकार से जानती हूँ । यहाँ
नृशार्थ में द्वित्व हुआ है । जा घातु—लट्—उ० पु० ए० व० । (२) आर्य-
पुत्रस्य—स्वामी का । आर्यस्य दयानुरस्य पुत्रः आर्यपुत्रः, तस्य । (३) सानु-
क्कोशित्वम्—दयायुक्त होना । घनूक्कोशः=दया, घनू+कुञ्+घञ् (घ) भावे ।
तेन सहितः सानूक्कोशः, तस्य भावः इत्यर्थे सानूक्कोश+त्व । ‘कृपा दयानुकम्पा

स्यादनुक्रोशोऽपि' इत्यमरः । (४) शरीरोपभुक्तानि—शरीर पर धारण किये गये । उप+भुज्+क्त (त) । (५) वग्धशेषाणि—जलने से बचे हुए । दह्+क्त (त) कर्मणि—दग्ध (६) मोहम्—मूर्च्छा को । (७) उपगत—प्राप्त हुए । उप+गम्+क्त (त) । (८) आभरणानि—जेवरों का । 'अलङ्कारस्त्वामरणम्' इत्यमरः । (९) परिष्वज्य—आलिङ्गन करके । परि+स्वज्+क्त्वा—स्यप् । सर्वे हा !

समी—हाय ! हाय !

All—Alas ! alas !

वासवदत्ता—[स्वगतम्] सकामो दाणिं अय्य जोअंधराअंगो होवु ।
[सकाम इदानीमार्ययोगन्धरायणो भवतु ।]

वासवदत्ता—(मन मे) अब आर्य योगन्धरायण की अभिलाषा पूर्ण हो ।

Yasava.—(To herself) Let revered Yaugandharayan be satisfied now.

चेटी—भट्टिवारिए ! रोदिदि खु इअं अय्या । [भर्तृदारिके !
रोदिति खलु इयम् आर्या ।]

बासी—राजकुमारी जी ! ये श्रीमती जी तो रो रही हैं ।

Maid—Look, princess. The lady is in tears.

पद्मावती—सानुक्कोसाए ही दद्वं । [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

पद्मावती—ये दयालु (अर्थात् भावुक प्रकृति की) होंगी ।

Padma.—She must be tender.

योगन्धरायणः—अय किमय किम् । प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनो ।
ततस्ततः ?

योगन्धरायणः—मीर क्या, घीर क्या । मेरी बहन स्वभाव से ही दयालु है । तब क्या हुआ ?

Yaug.—Why, of course, my sister had always a tender heart.

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलभ्यसंज्ञः संवृतः ।

ब्रह्मचारी—अनन्तर धीरे-धीरे राजा की मूर्च्छा दूर हुई ।

Brahmchari.—The King came to himself at last.

पद्मावती—दिट्ठिआ घरइ । मोहं गदो त्ति सुणिअ सुण्णं विअ मे हिअअं ? [दिष्ट्या ध्रियते । मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् ?

पद्मावती—गाय्य से वे जी रहे हैं । 'मूर्च्छित हो गये' यह सुनकर मेरा हृदय शून्य-सा हो गया था ।

Padmavati—It is well he lives. My heart became dejected when I heard that he fell in a swoon.

योगन्धरायणः—ततस्ततः ?

योगन्धरायण—तब क्या हुआ ?

Yaug.—And then ? What then, Sir ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः

सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते ! हा भवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये !' इति किमपि किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

संस्कृत टीका—ततः—ततश्चात्, सः—पूर्वोक्तः, राजा—भूपतिः उदयन इति यावत्, महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः—महीतले भूतले यत् परिसर्पण परिलुण्ठनं तेन लब्धः ये पातवः रजासि तैः पाटल श्वेतरक्तं शरीरं देहो यस्य स तथाविधः सन्, सहसा—हठात्, उत्थाय—उत्थितो भूत्वा, 'हा वासवदत्ते ! इत्यादि, बहु—अत्यन्तं, प्रलपितवान्—बिलापम् अकरोत् । किं बहुना—किमधिककथनेन—

अनुवाद—तदनन्तर जमीन पर लोटने से राजा का शरीर धूलिधूसरित हो गया । फिर वे एकाएक उठ कर 'हाय वासवदत्ता ! हाय मालवराजकुमारी ! हाय प्यारी ! हाय प्रिय शिष्ये' इत्यादि बहुत बिलाप करने लगे । अधिक क्या कहें—

Rebuked.—Then the King, his body, rolled and...

टिप्पणी—(१) सकामः—कामेन=प्रमिलायेण सह=समूह इति सकामः 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति सूत्रेण तुल्ययोगस्य प्रायिकत्वात् समासः । 'कामोप्रमिला-यस्तपश्च' इत्यमरः । यहाँ वासवदत्ता के कहने का तात्पर्य यह है कि महाराज

ने मुझे अवश्य ही मरी हुई समझ लिया, अन्यथा उन्हें मूर्च्छा न होती। अब वे पद्मावती से विवाह कर लेंगे और उसके भाई की सहायता से राज्य भी उन्हें मिल जायगा। बस, यही तो योगन्धरायण चाहते थे। सो उनकी मन-कामना पूर्ण होगी। कोई टीकाकार यहाँ वासवदत्ता की व्यंग्योक्ति बताते हैं। उनके अनुसार वासवदत्ता के कहने का अर्थिप्राय है—‘महाराज मूर्च्छित हो गये। आगे न जाने क्या हो। अब योगन्धरायण राज्य-प्राप्ति की कामना पूरी कर लें। इस शब्द का प्रयोग अभिज्ञानशाकुन्तल में मिलता है—‘अनसूया—कामः इदानीं सकामो भवतु’। मुद्राराक्षस में भी देखा जाता है—‘राजा—एवमस्मात्तु गृह्यमाणेषु स्वकार्य-सिद्धिकामः सकामो भवत्वायं:’। (२) किम् अयं किम्—यह द्विरुक्ति पद्मावती के तकं को दृढ़ करने के लिए हुई है। (३) प्रकृत्या—स्वभाव से। ‘प्रकृत्यादिम्य उपसह्यानम्’ इस वाक्त्तिक से यहाँ तृतीया हुई। (४) शनैः शनैः—यहाँ बीप्ता में द्वित्व हुआ। (५) प्रतिलब्धसंज्ञः—प्रतिलब्धा=प्राप्ता संज्ञा=चेतना येन स तथाविधः। (६) ध्रियते—अवस्थित हैं अर्थात् जी रहे हैं। दिवादिगणोप घृङ् अवस्थाने घातु के लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है। इसका प्रयोग अन्यत्र भी द्रष्टव्य है, यथा—‘ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम्’ शिशुपालवध। ‘ध्रिये आर्यपुत्र ध्रिये’ उत्तररामचरित। (७) शून्यम्—चेतना-रहित। यह अवस्था पद्मावती के मन में उदयन के प्रति प्रेमाकुर की उत्पत्ति सूचित करती है। (८) महोत्तलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीर—घरती पर लोटने के कारण घूल लग जाने से जिसका शरीर लाल तथा श्वेत रङ्ग का हो गया है। परि+सृप्+ल्युट् भावे परिसर्पणम्। पांसु—घूल। ‘स्त्रिया घूलिः पासुर्ना’ इत्यमरः। पाटल—लाल तथा सफेद। ‘श्वेतारवतस्तु पाटलः’ इत्यमरः। (९) उत्थाय—उठ कर। उत्/स्था+क्त्वा—ल्यप्। ‘उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य’ इस सूत्र में ‘स्’ को ‘त्’ और ‘ज्ञरो ज्ञरि सवर्णे’ इस सूत्र से ‘त्’ का लोप। (१०) प्रियशिष्ये—विवाह से पूर्व उदयन ने वासवदत्ता को बीणा-वादन की शिक्षा दी थी। इसका कारण यह था कि वासवदत्ता के पिता प्रद्योत वत्सराज उदयन से अपनी पुत्री का विवाह कराना चाहते थे। किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उन्हें सफलता न मिली तो उन्होंने छल से उदयन को अपने राजमहल में से जाकर वासवदत्ता को बीणा सिखाने के लिए अनुरोध किया। क्रमशः परिचय होने पर दोनों में परस्पर प्रेम हो गया। तब एक दिन योगन्धरायण की नीति से उदयन वासवदत्ता को उड़ा कर अपनी राजधानी में भागे। यही कारण है कि

उसने वासवदत्ता को प्रिय शिष्या कहकर सम्बोधित किया है । कालिदास ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है—‘प्रियशिष्या सन्निते कलाविधौ’ । (११) किमपि किमपि—‘वीप्सायां द्वित्वम्’ । वीप्सा में द्वित्व का प्रयोग हुआ है । (१२) प्रलपितवान्—विलाप किया । प्र+लप्+क्तवत् । (१३) दिष्ट्या—भाग्य से । दिष्टिः नाग्यम् तथा हेतु तृतीया । भयवा यह भव्य है । (१४) किं बहुना—बहुत कहने से क्या । गम्यमानसाधनादिक्रियापेक्षया करने तृतीया ।

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषं वियुक्ताः ।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तुं स्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥१३॥

अन्वय—इदानीं तादृशाः न एव चक्रवाकाः, न एव स्त्रीविशेषः वियुक्ताः अन्ये अपि । सा स्त्री धन्या यां मर्ता तथा वेत्ति । हि भर्तुं स्नेहात् दग्धा अपि सा अदग्धा ॥१३॥

संस्कृत टीका—इदानीम्—अधुना, तादृशाः—तथाविधाः उदयनसदृश-शोकातुरा इति यावत्, न एव—न तु, चक्रवाकाः—कोकाः, (सन्ति), न एव—नहि, स्त्रीविशेषः—विशिष्टरमणीभिः, वियुक्ताः—विरहिताः, अन्ये अपि—इतरे अपि, (सन्ति) । सा, स्त्री—नारी धन्या—अभिनन्दनीया, या—स्त्री, मर्ता—पतिः, तथा—तेन प्रकारेण, वेत्ति—मन्यते । हि—निश्चयेन, भर्तुं—स्नेहात्—पत्युः प्रेम्णा, दग्धा अपि—दाहं प्राप्ता अपि, सा—नारी, अदग्धा—अमस्मीभूता जीविता इति यावत् अस्ति [अर्थ भावः—अधुना अस्मिन् लोके उदयनसदृशाः विरहिणः न तु चक्रवाकाः सन्ति न अन्ये सीतादमयन्तीशकुन्तला-प्रभृतिभिः वियुक्तः रामनलदुःखन्तप्रभृतयः एव । किञ्च या (वासवदत्ता) पतिः लोकोत्तरस्नेहदृशा पश्यति सा नारीस्तननेषु विशिष्टा विद्यते । अतः मस्मी-कृता अपि वासवदत्ता भर्तुः प्रणयात् जीवन्ती एव तिष्ठति ।] ॥१३॥

इस समय उस (राजा) के समान न तो चक्रे हैं और न विशिष्ट रमणियों से भलग हुए दूसरे ही (कोई) हैं । वह नारी धन्य है, जिसे (उसका) पति उस तरह समझता है । निःसन्देह पति के प्रेम के कारण जली हुई भी वह (वासवदत्ता) न जली हुई (ही) है ॥१३॥

Now not even the chakravakas are so in sorrow. Not even others separated from their beloveds. Blessed is the lady whom

her husband so (dearly) loves, On account of the love of her husband she is indeed not burnt though burn.

टिप्पणी (१) तादृशः—उसके (राजा के) समान । (प्रियाविद्योग-जनित दुःख मे) । (२) चक्रवाकाः—चक्रवा पक्षी । 'कोकश्चक्रश्चक्रवाको रयाङ्गाह्वयनामकः' इत्यमरः । प्रकृति का यह विधान है कि रात्रि मे चक्रवा अपनी चक्रवी से अलग हो जाता है और फिर प्रातःकाल होते ही दोनों आपस में मिल जाते हैं । तो इस प्रकार विरही चक्रवा के हृदय में अपनी प्रिया से मिलने की आशा बनी रहती है, पर गतमार्य उदयन के हृदय में तो यह आशा भी नहीं रही । इसलिए चक्रवा इसकी बराबरी नहीं कर सकता । (३) स्त्रीविशेषः—विलक्षण स्त्रियों से वियुक्त । स्त्रीणां विशेषाः तैः । इन्दुमती, दमयन्ती, सीतादि प्रियतमाओं से वियुक्त होने पर अज, नल, रामादि भी इतने शोक संतप्त नहीं हुए थे । (४) धन्या—धनं लब्धा इत्यर्थे धन+यत् 'धनगणं लब्ध्वेति' सूत्रेण, ततः ष्टाप् । (५) दग्धाप्यदग्धा—जल जाने पर भी जली नहीं है, अर्थात् पाञ्च-भौतिक शरीर को छोड़ देने पर भी प्रियतम का दिया हुआ प्रेम रूप दूसरा शरीर धारण करके जी रही है । इस श्लोक में चक्रवाक आदि उपमानों को उपमेय बनाया गया है, इसलिए प्रतीप नामक अलंकार है । तल्लक्षणं—प्रतीप-मुपमानस्य हीनत्वमुपमेयतः अर्थात् उपमेय (उदयन) से उपमान चक्रवाक की हीनता दिखाने से प्रतीपालंकार है । और शालिनी नामक छन्द है । तल्लक्षणं—मात्तो गी चेच्छालिनी वेदलोकः ॥ १३ ॥

योगन्धरायणः—अय भोः ? तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवान्मात्यः ?

योगन्धरायण—क्यों महाशय ! उन्हें प्रकृतिस्य करने के लिए कोई मंत्री प्रयत्नशील नहीं है ?

Yaug.—Well, Sir, did no minister try to console him ?

टिप्पणी—(१) अय—यह प्रश्नार्थक अव्यय है । तु—यह वाक्यालंकारार्थ है । (२) पर्यवस्थापयितुम्—आश्वासन आदि से प्रकृति में लाने के लिए । परि-प्रथ+स्था+णिष्, पुक्+तुमुन् । (३) यत्नवान्—प्रयत्न करने वाला । यत्नः भस्ति यस्य इति विग्रहे यत्न=भतुप् ।

ब्रह्मचारी—भस्ति यमप्यान्तामामात्यो दुष्टं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं

१. पाठान्तर—समप्यानामामात्यो ।

पर्यवस्थापयितुम् । स हि—

ब्रह्मचारी—रुमण्वान् नाम का एक मंत्री है, महाराज को होश में लाने के लिए खूब प्रयत्न कर रहा है । वह तो—

Brahmchari—Yes the minister named Rumanwana did try his utmost to console his honour, since he.

अनाहारे तुल्यः सतत^१रुदितक्षामवदनः

शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपति

नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

अन्वय—अनाहारे तुल्यः, सततरुदितक्षामवदनः, नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन्, दिवा वा रात्रौ वा नरपति [यत्नैः परिचरति । यदि नृपः प्राणान् त्यजति अस्य अपि उपरमः सद्यः ॥१४॥

संस्कृत टीका—अनाहारे—अभोजने, तुल्यः—सदृशः सततरुदितक्षाम-वदनः—सततं निरन्तर यत् रुदित रोदन तेन क्षामं क्षीणं वदनं मुख यस्य स तथाभूतः, नृपतिसमदुःखं—नृपतिना राजा समं तुल्यं दुःखं कष्टं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, शरीरे—देहे, संस्कारं—मार्जनं, परिवहन्—धारयन्, दिवा वा रात्रौ वा—दिने रात्रौ च, नरपति—राजान, यत्नैः—प्रयत्नैः, परिचरति—सेवते । यदि—चेत्, नृपः—राजा, प्राणान्—असून्, त्यजति—मुञ्चति, तस्य—रुमण्वतो अपि, उपरमः—मृत्युः, सद्यः—तत्क्षणं (भवेत्) । [अयं भावः—वासवदत्ताशोकविकलो राजा इव भोजन परित्यजन् रुमण्वान् निरन्तररोदनेन म्लानमुखः संवृतः । यथा राजा कष्टाधिक्येन कथञ्चिदत्यावश्यक स्नानादि-संस्कारम् आचरति तथा रुमण्वानपि कथञ्चित् शरीरसंस्कारं स्वीकरोति । स च रात्रिन्दिवम् राजानं महता क्लेशेन शुश्रूषते । यदि दुःसहेन वासवदत्ताशोकेन राज्ञः प्राणवियोगः स्यात् तर्हि तत्कालमेव रुमण्वतोऽपि मृत्युर्भवेत् इत्यत्र नास्ति सन्देहलवः ।] ॥१४॥

अनुवाद—भोजन न करने में (राजा के) समान और निरन्तर रोते रहने से मुखे चेहरे वाला मंत्री राजा के समान ही दुःख से शरीर का संस्कार (स्नान आदि क्रियाएँ) करता हुआ दिन-रात यत्नपूर्वक राजा की सेवा में लगा रहता है । अगर राजा जीवन को छोड़ दे तो उसकी भी मृत्यु तुरन्त हो जाय ॥१४॥

He shared his master's fastings, and his face, like, his, was wasted with incessant weeping; the garb of woe which the king wore, he also wore, with all devotion he waited on his lord by night and day. If the king had died he too would have died on the instant.

टिप्पणी—(१) सततवदितक्षामवदनः—तथातार रोते रहने से जिसका चेहरा फीका पड़ गया हो। सतत—निरन्तर। 'सततानारताथ्रान्तसन्तताविस्ता-निशम्' इत्यमरः। वदितम्— $\sqrt{\text{वद}} + \text{वत}$ भावे। क्षामम्— $\sqrt{\text{क्षै}} + \text{वत}$ कर्तरि 'क्षायो मः' इति सूत्रेण तस्य मः। (२) शरीरे संस्कारम्—स्नान आदि से शरीर को स्वच्छ करना। 'संस्कारो मार्जनं गुजा' इत्यमरः। संस्कारम्— $\text{सम्} + \sqrt{\text{कृ}} + \text{घञ्}$ 'सम्परिभ्यां करोती भूषणे' इति सूत्रेण सुडागमः। यहाँ 'शरीरेऽसंस्कारम्' भी पाठ हो सकता है। तब अर्थ होगा—शरीर की सजावट अर्थात् वस्त्रालंकार से शरीर को भूषित न करता हुआ (३) नृपतिसमदुःखम्—राजा के समान दुःखानुभूति। नृपतिना समम्। (तृ० तत्पु०) तादृश दुःखं यस्मिन्, कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा। अथवा सम दुःख यस्मिन् सः समदुःखः नृपतेः समदुःखः तम्। यह मस्कार का विशेषण है। क्रियाविशेषण 'परिवहन' को विशेषता बतलाता है। आशय यह है कि जब राजा शोक संतप्त होता था तो मन्त्री समन्वान् भी तदनुकूल घेष्टा करता था। (४) परिवहन—धारण करता हुआ। परि+वह+शतृ। (५) दिवा—यह दिनवाची प्रव्यय है। 'दिवाह्नीति' इत्यमरः। (६) वा—यह चकारार्थक या समुच्चयार्थक है। (७) उपरमः—मृत्यु। उप+रम्+घञ्(अ)। निपातनात् वृद्धयभावः। इस श्लोक में समन्वान् की अपूर्व राजभक्ति का वर्णन किया गया है। इसमें शिखरिणी छन्द है। रसं रुद्रैश्छिन्ना धमनसमलागः शिखरिणी ॥१४॥

वासवदत्ता—[स्वगतम्] दिट्ठिआ सुणिविखत्तो दाणीं अय्यउत्तो।
[दिष्ट्या सुनिक्षिप्तः इदानीम् आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—[मन में] सोभाग्य से इस समय पतिदेव अच्छे पुरुष के हाथ से सौंपे गये हैं।

Vasava.—(To herself)—Happily the king is well cared for,
योगन्धरायणः—[आत्मगतम्] अभी महद्भारमुद्धरति समन्वान्।
कृतः—

यौगन्धरायणं—(मन में) अहा ! रुमण्वान् मारी बोझा ढो रहा है ।
वयोकि—

Yang.—(To himself) Oh ! Rumanwana is bearing a great burden; because ;—

टिप्पणी—(१) मुनिक्षिप्तः—नली मांति रक्षित, अर्थात् परम राजभक्त मंत्री के हाथ में पतिदेव की रक्षा का भार है, इसलिए मुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है । (२) महद्भारम्—यहाँ 'महाश्वासो भारः' इस विग्रह में कर्म-धारय समास करने पर 'आन्महतः'—इत्यादि सूत्र से धात्व अनिवार्य है । तब रूप होना चाहिए 'महद्भारम्' । किन्तु 'निरंकुशाः कवयः' इस दृष्टि से महद्भारम् का प्रयोग हुआ है, ऐसा कह सकते हैं । अथवा 'महत्' को 'उद्धति' दिया का विशेषण मान लीजिए । अथवा 'महतः=विशिष्टस्य कार्यस्य भारः' इस प्रकार पठ्ठी तत्पुरुष समास से काम चलाइए ।

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।

तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

अन्वय—हि अयं भारः सविश्रमः, तस्य तु श्रमः प्रसक्तः । हि यत्र नराधिपः अधीनः, तस्मिन् सर्वम् अधीनम् ॥१५॥

संस्कृत टीका—हि—निश्चयेन, अथ वामवदत्तारक्षणरूपो मदीयः भारः धूः, सविश्रमः—विश्रमेण विरामेण सहितः युक्तः अप्रयत्नप्राय इत्यर्थः, (अभूत्) तस्य तु—रुमण्वतस्तु, श्रमः—राजरक्षारूपो भारः, प्रसक्तः प्रकर्षेण खनः विशेष-रूपेण स्थित इति यावत्, (अस्ति) हि—यतः, यत्र—यस्मिन्, नराधिपः—राजा, अधीनः—आयतः, तस्मिन्—तत्र, सर्वम्—समस्तं राज्यकार्यजातम्, अधीनम्—आयत्तम् (भवति) ॥१५॥

अनुवाद—निश्चित रूप से मेरा यह भार कुछ उतर गया है, किन्तु रुमण्वान् का भार दृढ़ रूप से स्थित है । वयोकि जिसके हाथ में राजा की देखभाल है, उसी के हाथ में सब कुछ है ॥१५॥

This (mine) burden gives me rest ! but his effort must be continuous. On him certainly depends everything, on whom the king depends,

टिप्पणी—(१) हि—निश्चयार्थक अव्यय है । 'हि हेताववधारणे' इत्यमरः । (२) भारः—वामवदत्ता को पद्मावती के यहाँ रखने का दायित्व-

महाराज उदयन के राज्य की पुनः प्राप्ति से संबद्ध योजना के अन्तर्गत दो दायित्व थे—(१) वासवदत्ता को सुरक्षित रखना (२) राजा के जीवन तथा राजधानी की रक्षा । प्रथम का भार योगन्धरायण तथा दूसरे का रुमण्वान् मंत्री को सौंपा गया था । (३) सविधमः—निवृत्तप्राय, विरत । वि०/ध्रम=धञ्, (अ) 'नोदात्तोपदेशस्य' इति सूत्रेण वृद्धिनिषेधः । 'विध्रामः' की सिद्धि इस प्रकार हो सकती है—ध्रम एव ध्रामः प्रज्ञादित्वात् ध्रण्, विशेषेण ध्रामः विध्रामः प्रादिसमास (४) प्रसवतः—प्र+सृञ्+वत (त) कर्तरि । लगातार चल रहा है । (५) तस्मिन् सर्वमधीनं हि यथाधीनो नराधिपः—यहाँ योगन्धरायण के कहने का तात्पर्य यह है कि जिस पर राजा का जीवन निर्भर है उसी के अधीन सब कुछ है । हमारे जितने प्रयत्न हैं, वे सब उदयन को राज्य वापिस दिलाने के लिए ही हैं । यदि उनकी मृत्यु हो जाय तो हमारे सारे प्रयास विफल हो जायेंगे । राजा का शोक इतना बड़ा-चड़ा है कि कही वासवदत्ता के वियोग में उनके प्राण चले जाने की नौबत न आ जाय इसलिए जो बड़े यत्न से उनके प्राणों की रक्षा कर रहा है, वही वस्तुतः श्रेय का अधिकारी है । हमारी सफलता उसी पर निर्भर है । इस दृष्टि से रुमण्वान् का दायित्व मेरी अपेक्षा कहीं अधिक है । 'तस्मिन्' और 'यत्र' में 'अधिरीश्वरे' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा और 'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी' सूत्र से सप्तमी हुई । अधीन—वशोभूत । 'अधीनो निघ्न आयतः' इत्यमरः । अधि+ख 'अपडक्षाशितङ्ग'—इत्यनेन ख इत्यस्य ईनादेशः । इस श्लोक में सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास प्रलकार है और अनुष्टुप् छन्द है ॥१५॥

[प्रकाशम्] अथ भोः ! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ।

(प्रकट) क्यों महाशय ! अब तो वे राजा प्रकृतिस्थ हुए न ?

(Loudly)—Well then the king is now consoled.

टिप्पणी—पर्यवस्थापितः—प्रकृतिस्थ किये गए । अर्थात् रुमण्वान् की परिचर्या ने राजा को स्वस्थ किया या नहीं ? परि अव+स्था+णिच् पुक्+वत (त) ।

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने । इह तथा सह हसितम्, इह तथा सह कथितम्, इह तथा सह पर्युपितम् इह तथा सह कुपितम्, इह तथा सह शयितम्, इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन

तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम्^१ । ततो निष्क्रान्ते^२ राजनि
प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः । ततोऽहं
निर्गतोऽस्मि ।

संस्कृत टीका—तत्—राजः स्वस्थताविषये किमपि, इदानीम्—अधुना,
न—नहि, जाने—अवगच्छामि । इह—अत्र, तथा—वासवदत्तया, सह—साकं,
हसितम्—हासः, कृतः, इह तथा सह, कथितम्—वार्तालापः कृतः, इह तथा
सह, पर्युपितम्—अवस्थितम्, इह तथा सह, कुपितम्—क्रोधः कृतः, इह तथा
सह, शयितम्—शयनं कृतम् । इत्येवम्—अमुना प्रकारेण, विलपन्तं—विलापं
कुर्वन्तं, तं, राजानम्—उदयनम्, अमात्यैः—भन्त्रिमिः, महता—मूयसा, यत्नेन—
प्रयासेन, तस्मात् ग्रामात्—लावाणकात्, गृहीत्वा—पृत्वा, अपक्रान्तम्—
अपसृतम् । ततः—तस्मात् ग्रामात्, निष्क्रान्ते—निर्गते, राजनि—नरेशे, प्रोषित-
नक्षत्रचन्द्रम्—प्रोषितानि अस्तं गतानि नक्षत्राणि तारकाः चन्द्रश्च चन्द्रमा च
यस्मात् तत् तादृशं, नभः—आकाशम्, इव—तद्वत्, अरमणीयः—अशोमनीयः,
संवृत्तः—संजातः, स ग्रामः । ततः—तेन कारणेन तस्मात् ग्रामात्, ग्रहमपि
निर्गतोऽस्मि—प्रस्थितोऽस्मि ।

अनुवाद—ब्रह्मचारी—वह तो अब मुझे मालूम नहीं । 'इस जगह उसके साथ
हँसा था, इस जगह उससे बातचीत की थी, इस जगह उसके साथ बैठा था, इस
जगह उससे खड़ा था, इस जगह उसके साथ सोया था' इस प्रकार विलाप करते हुए
राजा को बड़े प्रयास से साथ लेकर मंत्री लोग उस गाँव से चले गये । पश्चात्
राजा के चले जाने पर वह गाँव उसी तरह हतथी हो गया जैसे चन्द्रमा और
तारों के अस्त हो जाने पर आकाश । इस कारण मैं भी वहाँ से चला आया हूँ ।

Brahmchari—I have no knowledge of this. All I know how
have the king made lamentation. "Here we talked and laughed
together here we told each other stories, here we passed the
day. Here I was angry with her. Here I did sleep with her" and
thus lamenting, the king was with great effort taken away from
the village by ministers; (and then they) went. When the king
had departed, that town lacked all attraction like the heavens
bereft of the moon and the stars. Therefore I too departed.

१. पाठान्तर—अपक्रान्तमपश्यम् ।

२. अपक्रान्ते ।

टिप्पणी—(१) जाने—जानता हूँ। यद्यपि जाँ घातु परस्मैपदी है और तदनुसार 'जाने' की जगह 'जानामि' प्रयोग होना चाहिए किन्तु 'भनुपसर्गाज्जः' इस सूत्र से आत्मनेपद कर देने पर जाने रूप हो सकता है। यही कारण है कि 'तत्र जाने सखे हे, 'जानीते नितरामसौ गुधकूलविलप्यो मुरारिः कविः' इत्यादि प्राचीन श्लोकों में जा घातु के आत्मनेपदी रूप मिलते हैं। (२) पर्युषितम्—रहा, स्थित हुआ। परि+वस्+क्त (भावे) 'ग्रहिज्यावयिव्यधि'—इत्यादि सूत्रेण सम्प्रसारणम् तथा 'वसतिक्षुघोरिट्' इति सूत्रेण इडागमः। इसी प्रकार हसितम्, कुपितम्, शयितम् में क्त प्रत्यय हुआ है। (३) प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम्—चन्द्रमा और नक्षत्रों से विहीन। प्रोषित=भ्रन्तहित। (४) नम—आकाश। 'नमोऽन्तरिक्षं गगनम्' इत्यमरः। यहाँ लावाणक ग्राम की तुलना आकाश से, राजा उदयन की समता चन्द्रमा से तथा मंत्रियों की उपमा नक्षत्रों से दी गई है।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राज्ञा, जो आग्रन्तुएण वि इमिणा एवं पसंसीधदि । [सखलु गुणवान् नाम राजा य आग्रन्तु-केनाप्यनेनैवं प्रशस्यते ।]

तापसी—वह राजा अवश्य ही गुणवान् है, जिसकी प्रशंसा बटोही भी इस प्रकार कर रहा है।

Lady ascetic—That king is certainly virtuous, as he is praised even by such a new-comer.

चेटी—भट्टिदारिए ! कि णु खु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि ? [भट्टिदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

दासी—राजकुमारी जी ! क्या दूसरी स्त्री उनके हाथ जायगी ? (अर्थात् वे दूसरा व्याह करेंगे ?)

Maid—Is it possible that another woman may fall in his hands (i. e. marry him)

पद्मावती—[आत्मगतम्] मम हिअएण एव्व सह मंतिदं । [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्] ।

पद्मावती—(मन में) मेरे मन के समान ही सोचा (अर्थात् मेरे मन की बात कही) ।

Padmavati—(To herself) My heart too thinks likewise.

ब्रह्मचारी—आपुच्छामि भवन्तो । गच्छामस्तावत् ।

ब्रह्मचारी—आप दोनों की अनुमति चाहता हूँ । मैं अब जा रहा हूँ ।

Brahmchari—I take leave of you both we go now.

उभो—गम्यतामर्थसिद्धये ।

दोनों—प्रयोजन-सिद्धि के लिए जाइये ।

Both—Go for success in your under-taking.

ब्रह्मचारी— तथास्तु । (निष्क्रान्तः)

ब्रह्मचारी—अच्छा । (चल देता है)

Brahmchari—Let it be so (Exit).

योगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्रभवत्याभ्यनुज्ञातो गन्तु-
मिच्छामि ।

योगन्धरायण—अच्छा, मैं भी राजकुमारी जी से आज्ञा लेकर जाना चाहता हूँ ।

Yaug.—I too wish to go after permission from her ladyship.

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल ।

काञ्चुकी—आपसे अनुमति लेकर ये भी जाना चाहते हैं ।

Chamberlain—He wishes to go after permission from your ladyship.

पद्मावती—अय्यस्स भइणिअ अय्येण विना उवकण्ठस्सदि । [आयंस्य
भगिनिकाऽय्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।]

पद्मावती—इनकी बहन इनके बिना घबड़ाएगी ।

Padmavati—Your sister may feel alone in your absence.

योगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतंया नोत्कण्ठिष्यते । [काञ्चुकीयम-
थलोक्य] गच्छामस्तावत् ।

योगन्धरायण—मैंने लोगों के हाथ में पड़ने के कारण यह नहीं घबराएगी ।

(काञ्चुकी को देखकर) मैं अब जाता हूँ ।

Yaug.—She will not feel alone when she is in the hands of good persons, (looking to the Chamberlain) me go now.

काञ्चुकीयः—गच्छतु भयान् पुनर्दंशनाय ।

काञ्चुकी—जाइये धीरे, फिर दर्शन दीजिएगा ।

Chamberlain—May your honour go for a later visit.

स्व० ८०—१०

योगन्धरायणः—तथास्तु । (निष्क्रान्तः)

योगन्धरायण—अच्छा । (चल देता है)

Yaug.—Let it be so (exit).

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम् ।

कञ्चुकी—अब भीतर चलने का समय हो गया ।

Chamberlain—It is time now to go in.

पद्मावती—अय्ये ! वंदामि । [आयें ! वन्दे ।]

पद्मावती—आयें ! प्रणाम करती हूँ ।

Padmavati—Madam I salute.

तापसी—जादे ! तव सदिसं भर्तारं लभेहि ! [जाते ! तव सदृशं भर्तारं लभस्व ।]

तापसी—पुत्री ! तुम्हें अपने योग्य पति मिले ।

Lady ascetic—Child may you find a husband worthy of you.

वासवदत्ता—अय्ये ! वंदामि दाव अहं । [आयें ! वन्दे तावदहम् ।]

वासवदत्ता—आयें ! मैं भी प्रणाम करती हूँ ।

Vasava—I too salute, you lady.

तापसी—तुवं पि अदरेण भर्तारं समासादेहि । [त्वमपि अदरेण भर्तारं समासादय ।]

तापसी—तुम्हें भी शीघ्र तुम्हारा पति मिले ।

Lady ascetic—You, too may be soon united with your lord.

वासवदत्ता—अनुगृहीदमिह । [अनुगृहीतास्मि ।]

वासवदत्ता—अनुगृहीत हूँ ।

Vasava.—I feel obliged.

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इत इतो भवति ! सम्प्रति हि—

कञ्चुकी—तो आइये । इधर से चलिये, इधर से ; इस समय—

Chamerlain—Then come. This way. this way Madam; for now:—

टिप्पणी (१) गुणधान्—प्रशस्ताः गुणाः सन्ति यस्मिन् इति विग्रहे गुण + मनुष । (२) नाम—एक अव्यय है, जिसका प्रयोग वाक्य को अलंकृत करने के लिए

पाठान्तर—१. अज्जे । गच्छामि । २. लभेहि ।

किया जाता है। यहाँ व्यंग्यार्थ यह है कि ऐसा गुणी राजा निश्चित ही पद्मावती का बरहोने योग्य है। (३) हस्तं गमिष्यति—हस्तगत होगी, विवाह करेगी। यहाँ भी व्यंग्यार्थ है कि आपको ऐसे अप्रतिम प्रेमी का वरण अवश्य करना चाहिए। (४) मम हृदयेन सह—मेरे मन के अनुसार। इसकी तुलना कीजिए शकुन्तला की उक्ति से—‘हृदय मा उत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितानि प्रनूया मन्थयते’। (५) आपृच्छामि—विदा चाहता हूँ। यहाँ ‘प्राडि नुप्रच्छयोः’ इस वाक्तिक से आत्मनेपद होता अनिवार्य है। तब शुद्ध रूप ‘आपृच्छे’ लिखना चाहिए था। किन्तु ‘निरंकुशाः कवयः’ कहकर अथवा आ ओर पृच्छामि अलग-अलग पद मान कर समाधान कर सकते हैं। अथवा उदयन की दशा का वर्णन करते-करते उम ब्रह्मचारी का चित्त विह्वल हो जाता है जिससे वह अनुद्ध प्रयोग कर देता है, कदाचित् यह भाव दिवाना कवि को अभिप्रेत हो तो आश्चर्य नहीं। (६) तत्र भयत्या—माननीया, पद्मावती। (७) अम्यनुज्ञातः—आज्ञा प्राप्तः सन्। अमि+अनु+ज्ञा+क्त (त) कर्मणि। (८) किल—वाक्य की शोभा बढ़ाने के लिए इस अध्यय का प्रयोग किया जाता है। (९) उत्कण्ठिष्यते—उन्मन या उदाम होगी। उत्+कण्ठ्+लृट् प्र० पु० ए० व०। (१०) साधुजनहस्तगता—साधुश्चासी जनश्च कर्मधारय समास, तस्य हस्तः पञ्चीतत्पुरुष, तं गता द्वितीयात्पुरुष। भले आदमी के आश्रय में स्थित। (११) गच्छामस्तावत्—प्रव में चलता हूँ। यहाँ आदर में बहुवचन हुआ। (१२) तावत्—यह वाक्यालंकारार्थ है। (१३) दर्शनाय—दर्शन के लिए। दृश्+ल्युट्-अन भावे=दर्शनम् तस्मै, ‘तुमर्थाच्च नावरचनात्’ अर्थान् तुमुन् प्रत्यय के अर्थ को व्यसन करने के लिए उमीचातु से बना हृद् भाववाचक मज्ञा का प्रयोग करने पर उममे चतुर्थी होती है। (१४) अम्यन्तरम्—गुटी के भीतर। (१५) तत्र सद्गम्—यहाँ ‘तुल्यायैरनु-लोमाम्या तृतीयाज्जनरस्याम्’ इस मूत्र में तृतीया विलुप्त में होने के कारण पञ्ची हुई। (१६) समासादय—प्राप्त करो। गम्+प्राड्+गद्+णिव् लोट् म० पु० ए० व०। तावमी वानवदता को यह आनोवाँद दे रही है क्योंकि वह पतिविष्णुता है।

एषा वासोपेताः सलिलमयगाढो मुनिजनः

प्रदोप्तोऽग्निर्नाति प्रविचरति धर्मो मुनियनम् ।

परिभ्रष्टो दूराद्विरपि ध मंक्षितकिरणो

रथं व्याश्रयासी प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।) इति प्रथमोऽङ्कः

धन्यम्—सखाः वासोपेताः । मुनिजनः सलिलम् अवगाढः । प्रदीप्तः अग्निः
माति । घूमः मुनिवनम् प्रविचरति । दूरात् परिभ्रष्टः च संक्षिप्तकिरणः अग्नौ
रविः अपि रयं व्यावर्त्य शनैः अस्ताक्षरं प्रविशति ॥१६॥

संस्कृत टीका—सखाः—पक्षिणः, वासोपेताः—वासं निवासस्थानं नोदं
यावत् उपेताः प्राप्ताः । मुनिजनः—तपस्विनः, सलिलम्—जलम्, अवगाढः—
अवतीर्णः प्रविष्टः इत्यर्थः । प्रदीप्तः—प्रज्वलितः, अग्निः—बह्निः, माति—
प्रगल्भते । घूमः—वह्निजन्मः, मुनिवनम्—तापसाश्रम, प्रविचरति—व्याप्नोति ।
दूरात्—दूरस्थानात्, परिभ्रष्टः—क्षुतः, च—पुनः, संक्षिप्तकिरणः—संक्षिप्ताः
उपसहृताः किरणाः रश्मयः येन स तथाविधः, अग्नौ—दृश्यमानः, रविः—सूर्यः,
अपि, रयं—स्वस्य यानं, व्यावर्त्य—सन्निरोध्य, शनैः—मन्दम्, अस्ताक्षरम्—
अस्ताचलस्य शृङ्गम्, प्रविशति—गच्छति । (अयं भावः—प्रादिनमाह्वरचयनेन
परिधान्ताः पक्षिणः स्वस्वनीडं प्रविशन्ति । तपस्विनः स्नातु जलाशयम् अवतरन्ति ।
जागृत्यमानः श्वेतः स्मार्तो वा अग्निः शोभते । गगनतलात् पतितः सूर्यः मन्दो-
द्वृत्किरणः सन् स्वकीयं रयं परावर्त्य शनैः शनैः अस्ताचलशिखरमारोहति ।
अग्नीभिः लक्षणैः सायंवेला समुपागतेत्यनुमीयते । अतोऽगमाभिः कुटीराभ्यन्तरं
गन्तव्यम् ।) ॥१६॥

प्रनुवाद—पक्षी घोगर्तो में चले गये हैं । मुनि लोग (स्नान करते के लिए)
जल में डार गये हैं । जलती हुई प्राग चमक रही है । सूर्य तपोवन में फैल
रहा है । दूर में गिरा हुआ और भरनी किरणों को मन्द सेने वाला वह सूर्य
भी रय को छोड़ा कर धीरे-धीरे अस्ताचल की चोटी की ओर जा रहा है ॥१६॥

(गणका प्रस्थान) पहला घण समाप्त ।

The birds have resorted to their abodes, the sages have
plunged into water, the flaming fires shine brilliantly, the smoke
is moving onward in the ascetic grove. The sun too with beams
subdued, swerving his car from the long course aslant, sinks
slowly down towards the setting mountain. (Excunt Omnes)
End of Act I.

दिप्यन्ती—(१) सखाः—पक्षिणः । ये—आवासी गच्छन्ति इति सखाः । १५/
धूमः+च 'गुहुरोरपि च' इति वाक्ये 'अग्निश्च दृश्यते' इति वचनात् दिप्यन्ती
शिरः । (२) वासोपेताः—निवास स्थानं यस्यां घोगर्तो में चले गये हैं ।

वासम् उपेताः, द्वितीयातत्पुरुष समास । उपेताः—उ॒/इण्+क्त कर्तरि
 'गत्यर्थाकर्मक'—इत्यादिना । (३) सलिलम्—जल । 'सलिलं कमलं जलम्'
 इत्यमरः । (४) अथगाढः—(जल मे) प्रविष्ट । प्रविष्ट । अथ॒/गाहू+क्त (त)
 कर्तरि । (५) प्रदीप्तः—प्रज्वलित । प्र॒/दीप्+क्त (त) कर्तरि दीप् घातोः
 अकर्मकत्वात् 'गत्यर्थाकर्मक' इत्यादिना । (६) प्रविचरति—व्याप्त कर रहा है ।
 यहाँ व्याप्ति अर्थ मानने पर ही 'मुनिवनम्' में कर्म में द्वितीया हुई है । (७) संक्षिप्त-
 किरणः—जिसकी किरणें संकुचित हो गई हों । (८) व्यापत्य—सोटा कर ।
 वि+भाह्+वृत्+णिच्+त्यप् । अस्तावल को जाते हुए सूर्य का स्वाभाविक
 चित्र अंकित किया गया है । इसी तरह का भाव 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में मिलता
 है—'सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादलासोऽयमयूखः' । माम ने यहाँ सन्ध्या का कर्मा
 सूक्ष्म एवं हृदयग्राही वर्णन सरल, सरस तथा अर्थबोधगम्य भाषा में प्रस्तुत किया
 है । इस श्लोक में 'खगा यासोपेताः' इत्यादि हेतुप्रो से सन्ध्याकाल का अनुमान
 किया गया है, इसलिये अनुमान अलंकार है और शिखरिणी छन्द है । तत्त्वार्थ
 काव्यप्रकाशे—'अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः ।' अर्थात् साध्य-साधन
 का वचन करना अनुमान अलंकार होता है ॥१६॥

अथ द्वितीयोऽङ्कः

[यह द्वितीय अंक पद्मावती का वासवदत्ता के साथ गेंद खेलने से आरम्भ होता है । बहुत देर खेलने के पश्चात् वह विश्राम करने लगती है । उसी समय पद्मावती की दासी द्वारा ज्ञात होता है कि राजकुमारी उदयन के गुणों पर मुग्ध है । तदनन्तर सूचना मिलती है कि पद्मावती का विवाह उदयन के साथ तय हो गया तथा आज ही पाणिग्रहण की शुभ घड़ी है ।]

(ततः प्रविशति चेटो)

चेटो—कुञ्जरि ए ! कुञ्जरि ए ! कहि कहि भट्टिदारिआ पद्मावती कि भणसि, एसा भट्टिदारिआ^१ माह्वीलदामण्डवस्स पस्सदो^२ कन्दु-
एण^३ कोलदिति^४ । जाव^५ भट्टिदारिअं उवसप्पामि । (परिक्रम्यावलो-
क्य) अम्मो इअं भट्टिदारिआ उवकरिदकण्णचूलिएण वाआमसञ्जा-
दसेदधिन्दुविदित्तिदेण परिस्सन्तरमणोअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कोलन्दी
इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्स^६ । [कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुप्र-
कत्र भर्तृदारिका पद्मावती ? कि भणसि, एसा भर्तृदारिका माघ-
वीलतामण्डपस्य पाइवंतः कन्दुकेन क्रीडतीति । यावद् भर्तृदारिकाम्-
पसर्पामि । अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकण्णचूलिकेन व्यायामस-
ञ्जातस्वेदधिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणोयदर्शनेन मुखेन कन्दुकं
क्रीडन्तीति एवागच्छति । यावदुपसर्पामि ।] (निष्क्रान्ता)

संस्कृत टीका—रगमंच समागता चेटो कुञ्जरिकाख्यायाः चेटपाः नामोल्लेख-
पुरः तत् प्रसङ्गानुकूलं वचनमुपक्षिपति—कुञ्जरिके इति, कुप्र—वयं, भर्तृदारिका—
राजकुमारी, पद्मावती । किं भणमि—किं कथयसि, एसा भर्तृदारिका, माघवी-
लतामण्डपस्य—माघवीलतायाः वासन्तीलतायाः मण्डप निकुञ्जः तस्य, पाइवंतः—
निषटे, कन्दुकेन—केन्दुकेन, क्रीडति—खेति । यावत्—यतः, भर्तृदारिकाम्,
उपसर्पामि—उपगच्छामि । अम्मो—विस्मयानन्दमूचकमध्ययमिदम्, इयं—इयम्-

१. पाठान्तर—दारिद्र्य पद्मावती । २. पस्सगदा (पाइवंगता) । ३. कोलन्दी ।
४. ति । गच्छ तुवं । ५. यहं वि । ६. पसप्पामि ।

माना, भर्तृदारिका, उत्कृतकर्णचूलिकेन—उत्कृते उपरिष्कृते कर्णयोः इति शेषः
कर्णचूलिके कर्णावर्तसौ यस्मिन् तेन तथामूलेन, व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रि-
तेन—व्यायामात् कन्दुकक्रीडाजन्यायासात् सञ्जाताः समुत्पन्नाः स्वेदबिन्दवः
धर्मोदककणाः तैः विचित्रितेन अपूर्वसौन्दर्यं दधता, परिधान्तरमणीयदग्ननेन—
परिध्यान्तेन—कलान्तया रमणीयं कमनीयं दग्नं नम् अवलोकनं यस्य तादृशेन,
मृगेन—माननेन उपलक्षिता इति शेषः, कन्दुकेन, श्रोङ्गन्ती—गेलन्ती । इत
एव—इममेव प्रदेशम्, प्राग्वच्छति—गमयाति । यावत्—वायानंकारार्थमेतन्,
उपमन्वामि—तमीपं गमिष्यामि ।

(तदनन्तर दासी का प्रवेश)

दासी—प्ररी कुंजरिका ! राजकुमारी पद्मावती यहाँ है ? क्या कहती
हो, यह राजकुमारी माधवी कुज की बगल में बैठ गेल रही है । अच्छा, तो
राजकुमारी के पास चलूँ । (घूम कर ओर देखकर) ओहो ! यह राजकुमारी,
जिन्होंने कर्णफूलों को ऊपर उठा लिया है ओर जिसका मुँह व्यायाम में उत्पन्न
पसीने की बूंदों से विलक्षण एवं थकावट में रमणीय दिग्न रहा है, बैठ गेलनी
हुई इसपर ही सा रही हैं । अच्छा, तमीप तो पले । (पली गई)

(Then enter a maid) Maid—Kunjarika, where is the princess
padmavati ? What do you say Here the princess is playing
with a ball in the vicinity of the bower of Madhavi (jasmine)
creepers. I shall now go to the princess. (Turns about and
looking) Oh ! here only comes the princess, the locks of hair
on her ear put up, her face looking beautiful on account of
fatigue and bespangled with drops of perspiration through exercise
and playing with a ball, I shall just approach her (Exit)

इत्यमरः । (५) भ्रमो—हृषं तथा आश्चर्यसूचक अव्यय । (६) उत्कृतकर्ण-
चूलिकेन—क्रीड़ा से समय कर्णफूलों या कुंडलों को कानों पर चढ़ाए हुए ।
(७) व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन—कन्दुक-क्रीड़ा की श्रान्ति से निकले
हुए पसीनों की बूंदों से अपूर्व छवि वाले । (८) मुखेन—इसमें 'इत्यमृततमणे'
सूत्र से तृतीया हुई ।

प्रवेशकः

[ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासव-
दत्तया^१ सह ।]

(तब गेंद खेलती हुई पद्मावती परिजनों तथा वासवदत्ता के साथ आती है ।)

(Then enter Padmavati playing with a ball accompanied by
her attendants and Vasavadatta).

टिप्पणी—(१) प्रवेशकः—दो भ्रंकों के बीच का एक प्रकार का भ्रंक जिसमें
नीच पात्र न दिखायी हुई तथा भावी घटनाओं की सूचना देते हैं । जैसा कि
साहित्यदर्पणकार ने कहा है—'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रयोजितः ।
भ्रकद्वयान्तविज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥' विष्कम्भक का लक्षण यह है—
'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य
दर्शितः ॥ मध्येन मध्यमाम्यां वा पात्राम्या सम्प्रयोजितः । शुद्धः स्यात् न तु
मंकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कन्दुओ । [हला ! एष ते कन्दुकः] ।

वासवदत्ता—सखी ! यह तुम्हारा गेंद है ।

Vasava.—Oh, here, this is your ball.

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणि एत्तमं [आय्ये ! भवतु इदानीम्
एतावत् ।]

पद्मावती—आय्ये ! इस समय इतना ही पर्याप्त है ।

Padmavati.—Madam, it is enough now.

वासवदत्ता—हला ! अतिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ
परकेरआ विअ दे हत्या संबुत्ता । [हला ! अतिचिरं कन्दुकेन
क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागो परकीयाविअ ते हस्तो संबुत्तो ।]

१. पाठान्तर—आवन्तिका वेयधारिणी वासवदत्ता च ।

२. पाठान्तर—इला किणिमित्त वारेत्ति । किनिमित्तं वारयत्ति ।

सस्कृत टीका—हे सखि !, अतिचिरं—दीर्घकालं, कन्दुकेन, क्रीडित्वा—
खेलित्वा कन्दुकेन क्रीडनाद्धेतोरित्यर्थः, ते—तव, हस्ती—करो, अधिकसञ्जात-
रागो—अधिकम् बहु (सञ्जननक्रियायाः विशेषणमिदम्) सञ्जातः उत्पन्नः रागः
लालिमा ययोः तौ, परकीयो, अन्यदीयो, इव—तद्वत्, संबन्धो—सञ्जातो ।

वासवदत्ता—सखी ! अधिक देर तक गेंद खेलने के कारण लालिमा बढ़
जाने से तुम्हारे हाथ मानो पराये हो गए हैं ।

Vasava.—Friend, having played with the ball for a very long
time your hands, with their reddishness enhanced greatly as it
were, now belong to another.

टिप्पणी—(१) हला—यह सम्बोधनसूचक अव्यय है । इसका प्रयोग सखी
के लिए किया जाता है—‘हण्डे हण्डे हलाह्वाने नीचा चेटो सखी प्रति’ इत्यमरः ।
यहाँ स्पष्टार्थ यह है—‘यह तुम्हारा गेंद है । सो, खेलो । (२) एतावत्—यहाँ
तात्पर्यार्थ यह है—‘बहुत देर तक खेलने से मैं थक गई हूँ और अधिक खेलना नहीं
चाहती हूँ । इसलिए इस समय इतना ही रहने दो । (३) कन्दुकेन—गेंद से ।
इसमें ‘साधकतम करणम्’ सूत्र से करण सञ्जा होने पर तृतीया हुई । (४) क्रीडित्वा
—खेलकर । यहाँ हेत्वर्थ में क्त्वा प्रत्यय हुआ है । ‘क्रीडित्वा’ के बाद ‘बलान्तायाः’
पद का अध्याहार करने पर ‘समानकर्तृकयोः पूर्वकाले’ सूत्र से क्त्वा प्रत्यय के
होने में कोई बाधा नहीं है । यहाँ मावायें यह है कि जैसे दूसरे के हाथ धपना वायें
करने में असमर्थ होते हैं उसी तरह बड़ी देर तक क्रीडा करने से थके हुए तुम्हारे
दोनों हाथ इस समय मानो दूसरे के हो जाने से गेंद खेलने में असमर्थ हैं । गूढ़ार्थ
तो यह है कि अत्यन्त लालिमा से युक्त तुम्हारे दोनों हाथ अब छीघ्र ही पाणि-
ग्रहण होने पर पराये हो जायेंगे । (५) परकीयो—दूसरे के । पर+ (ईय)
और तब कुक् का आगम । (६) संबन्धो—हो गये हैं । सम्+बन्धु+क्त (त)
कस्मिन् ।

खेटी—कीलतु कीलतु दाव भट्टिदारिमा । निरवत्तीघ्रतु दाव अं
कण्ठाभायरमणीयो कालो । [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भन्तु वारिका ।
निर्यंत्यंती तावद् अयं कण्ठाभावरमणीयः कालः ।]

दासी—राजकुमारी खूब मेमें । वरारेपन के हम रमणीय समय को गुरुत करें ।

Maid—Nay keep on playing, princess, and enjoy these
golden hours of girlhood while you may.

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ।
[आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यापसि ।]

पद्मावती—आर्ये ! क्या इस समय मेरी हँसी उड़ाने के लिए ताक रही हो ?

Padmavati—Madam, why do you seem to be thinking of making fun of me.

वासवदत्ता—णहि णहि । हला ! अधिअं अज्ज सोहदि^१ । अभिदो विअ दे अज्जवरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि । हला ! अधिकमद्य शोभते । अभित्त इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।]

संस्कृत टीका—नहि नहि—नो नो । हला !—सखि । अद्य—प्रद्युम्ना, (ते मुखम्) अधिकम्—अत्यन्तं, शोभते—राजते । अद्य ते, वरमुखं—वरस्य वरणकर्तुः मुखं वदनम्, अभित्त इव—आसन्नमिव, पश्यामि, साक्षात्करोमि ।

वासवदत्ता—नही नही । सखी ! तुम्हारा मुख आज बहुत शोभित हो रहा है । अब मैं तुम्हारे वर का मुख निकट ही देख रही हूँ ।

Vasava.—Oh no, I do not. You are lovelier to-day than ever and I wish to see your pretty face from every point of view.

टिप्पणी—(१) क्रीडतु क्रीडतु—यहाँ पौनःपुन्य के अर्थ में द्वित्व हुआ है । (२) निर्वर्त्यताम्—उपयुक्त कर्म में (खेल में) लगावें । नि+वृत्+णिच्+लोट् । प्र० पु० ए० व० । (३) कन्याभावरमणीयः—बालोचित लीला से मनोहर । कन्याभावेन=कोमार्येण रमणीयः । भाव यह है कि आप अपनी इस किशोरावस्था को बालोचित खेल में बितायें । कन्या शब्द की परिभाषा साहित्य-दर्पणकार ने इस प्रकार दी है—कन्या त्वजातोपयमा सतज्जा नवयोवना । यस्मिन् काले बालानां कन्यात्वमुपजायते ॥ कन्याभाव में स्वभावतः सौन्दर्य रहता है । नि+घ्नं+लट् म० पु० ए० व० । (४) निध्यापसि—पश्यसि । एकटक देख रही हो । 'निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्यमरः । (५) नहि नहि—निषेध की दृढ़ता दिखाने के लिए दो बार उच्चारण किया गया है । भाव यह है कि तुम्हारा उदाहार करने के लिए तुम्हारे मुख को नहीं देख रही हूँ, बल्कि आज तुम्हारे मुख की गोमा ही मुझे यह सोचने के लिए विवश कर रही है कि मानो तुम्हारा प्रियतम तुम्हारे मनीष हो विद्यमान है, जिसके समागम के सोमाग्य में तुम इतनी मुन्दर सग रही हो ।

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस । [अपेहि । मेदानी-
मामपहस ।]

पद्मावती—हटो अब मेरी खिल्ली मत उड़ाओ ।

Padmarati—Go away, do not laugh at me.

वासवदत्ता—एतहि तुहणीआ भविस्सम्महासेणवहू ! [एवास्मि
तूणीका भविष्यन्महासेनवधु !]

वासवदत्ता—प्रच्छा लो महासेन जी की मावी पतोहू । मैं चुप हो गई ।

Vasava.—Oh would be daughter-in-law of Mahasena here
I keep quiet.

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एय महासेनो नाम ?]

पद्मावती—ये महासेन कौन हैं ?

Padmarati—Who is this Mahasena ?

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राज्ञा पज्जोदो णाम । तस्स बल-
परिमाणणिवत्तं णामहेअं महासेणोत्ति । अस्ति उज्जयिन्या
राजा प्रद्योतो नाम तस्य बलपरिमाणनिवृत्तं नामधेयं महासेन
इति ।)

वासवदत्ता—उज्जैन के राजा प्रद्योत हैं । दिग्गज बाहिनी के स्वामी होने
के कारण उनका नाम महासेन पड़ गया है ।

Vasava.—There is a king of Ujjain by name Pradyota;
Mahasena is his name from the size of his army.

चेट्टी—भट्टिददारिआ तेण रज्ज्जा सह सम्बन्धं नेच्छदि ! [भनू-
दारिका तेन राजा सह सम्बन्धं नेच्छति ।]

दासी—राजकुमारी उम राजा के साथ सम्बन्ध करना नहीं चाहती ।

Maid—The princess desires to have no connection with him-

वासवदत्ता—अह कोण लु दाणिं अभितसदि ? (अय केन सत्थिदा-
नीमभितपति ?)

वासवदत्ता—नो फिर किसके साथ चाहती है ?

Vasava.—There with whom does she desire it ?

चेट्टी—अत्थि वच्छराओ उअअणी णाम । तस्स गुणानि भट्टिददारिआ
अभितसदि । [अस्ति वत्सराज उदयनी नाम तस्य गुणान्
भनूदारिकाभितपति ।]

दासी—उदयन नाम का वत्स देश का राजा है । राजकुमारी उसी के गुणों पर लट्ट हैं ।

Maid—It is Udayan; the Vatsa king. It is for his virtues that my lady loves.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भर्तारं अभिलसदि ।
(प्रकाशम्) केण कारणेण ? [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलपति । केन कारणेण ?]

वासवदत्ता—(मन मे) आर्यपुत्र को स्वामी बनाना चाहती है । (प्रकट)
किस कारण ?

Vasava.—(To herself) It is my lord, my husband that she loves (aloud) say for what virtues ?

चेटी—साणुवकोसोत्ति । (सानुक्रोश इति ।)

दासी—चूकि वह दयालु हैं ।

Maid—For his loving kindness-

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जानामि जाणामि । अअं विजणोएव उम्मादिदो । [जानामि जानामि । अयमपि जन एवमुम्मादितः]

वासवदत्ता—(मन मे) जानती हूँ, जानती हूँ, यह व्यक्ति भी इसी प्रकार उन्मत्त बनाया गया था ।

Vasava.—((To herself) I know, I know it was this that won my heart.

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राजा विरूधो भवे ? [भर्तृ-
दारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

दासी—राजकुमारी ! यदि वह राजा कुरूप हो, तो ?

Maid—(To Padmavati) what if the prince should prove to be ill-favoured.

वासवदत्ता—णहिणहि । दंसणीओएव्व । [नहि नहि । दर्शनीय एव ।]

वासवदत्ता—नहीं, नहीं । वे तो देखने योग्य ही हैं भर्ता बड़े ही सुन्दर हैं ।

Vasava.—Oh no, Oh no, he is a handsome prince.

पद्मावती—अय्ये ! कहुं तुवं जानासि ? [आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?]

पद्मावती—आर्ये ! तुम कै जानती हो ?

Padmavyti—Lady, how do you know ?

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अय्यउत्तपखवादेण अदिक्कन्दो समुदा-
आरो । किं दाणिं करिस्सं ? होदु, दिट्ठं । (प्रकाशम्) हला !
एव्वं उज्जईणीओ जणो मन्तेदि ? (आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः
समुदाचारः । किमिदानीं करिष्यामि ? भवतु, दृष्टम् । हला !
एवमुज्जयिन्याः जनो मन्त्रयते ।)

संस्कृत टीका—आर्यपुत्रपक्षपातेन—आर्यपुत्रस्य स्वामितः उदयनस्य पक्षपातेन
तत्पक्षसमर्थनेन तस्य रूपशालित्वस्य प्रशंसयेति यावत्, (मया) समुदाचारः—
शिष्टाचारः कर्तव्यमिति यावत्, अतिक्रान्तः—उल्लङ्घितः । इदानीम्—अधुना,
किं करिष्यामि ?—किं विधास्यामि ?, भवतु,—अस्तु, दृष्टम्—ज्ञातम् उत्तरमिति
शेषः । हला !—सखि !, उज्जयिन्याः जनः—उज्जयिनीवासिनो लोकाः, एव
मन्त्रयते—इत्थं कथयन्ति ।

वासवदत्ता—(मन मे) आर्यपुत्र का पक्ष लेकर मैंने कर्तव्य की अवहेलना
की । अब क्या करूँ ? अच्छा, उत्तर सूझ गया । (प्रकट) ऐसा उज्जैन के लोग
कहते हैं ।

Vasava.—(to herself) My eagerness to praise my lord made
me forget myself, what shall I do now ? Ah ? I have it (aloud)
why, so all the people of Ujjain declare.

टिप्पणी—(१) अपेहि—दूर जा । अप उपसर्गपूर्वकं इण् गती घातु के लोट्
लकार—मध्यम पुरुष—एकवचन का यह रूप है । (२) मा—यह निषेधार्थक
अव्यय है । अतएव 'अपहस' में विध्यर्थ में लोट् लाकर हुआ है, अन्यथा 'माङि
लुङ्' सूत्र से लुङ् लकार हो जाता । (३) भविष्यन्महासेनवधु—होने वाली
महासेन की वधू । महती सेना यस्य स महासेनः, तस्य वधूः महासेनवधूः भविष्यन्ती
चासी महासेनवधूश्च भविष्यन्महासेनवधूः तत्सम्बद्धौ भविष्यन्महासेनवधु ।
'स्त्रियाः पुंवद्भाषित'—इत्यादि सूत्र से 'भविष्यन्ती' में पुंवद्भाव हुआ । 'वधूः'
में 'टिति ह्रस्वदच' सूत्र से नदीसज्ञा, 'अम्भार्यनद्योहंस्वः' सूत्र से ह्रस्वता और
'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' सूत्र से 'सु' का लोप होने पर 'वधू' यह सम्बोधन का रूप
सिद्ध होता है । 'वधू' कहते हैं पतोहू को—'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः ।
(४) तूष्णीका—चुप । तूष्णीरीलस्तु तूष्णीकः' इत्यमरः । 'तूष्णीम्' यह अव्यय
है । इसमें 'रीले को मलोपदच' इम वातिक से क प्रत्येय और म् का लोप होने पर

तूष्णीक शब्द बना, फिर तूष्णीक से स्त्रीलिंग में टाप् होने पर तूष्णीका शब्द मिट्ट होता है। किसी पुस्तक में 'उज्जयिन्या राजा' की जगह 'उज्जयिनीयो' राजा पाठ है। इसकी व्युत्पत्ति होगी—उज्जयिन्या अयम् इति उज्जयिनीयः=उज्जयिनी सम्बन्धी। उज्जयिनी+छः 'तस्येदम्' इत्यधिकारे 'वा नामधेयस्य' इति वृद्ध-संज्ञाया 'वृद्धाच्छः' इत्यनेन, तस्य च 'आयनेयीनीयि' इत्यादि सूत्रेण ईयादेशः। (५) वक्त्रपरिमाणनिर्वृत्तम्—वक्त्रस्य=सेनायाः परिमाणेन=महत्त्वरूपेण निर्वृत्तम्=सम्पन्नम् अर्थात् असंख्य मेना होने के कारण सम्पन्न। (६) वत्सराज-वत्मानां राजा वत्सराजः, 'राजाहुः सखिभ्यष्टच्' इति सूत्रेण समासान्तटच्प्रत्ययः। (७) सानुक्रोशः—दयाजु। अनुक्रोशः=दया, तेन सहितः सानुक्रोशः। 'कृपा दयाऽनुकम्पा म्यादनुक्रोशोऽपि' इत्यमरः। (८) समवाचारः—सदाचार। सम्-उद्—आ/चर्+घञ् (अ)। (९) मन्त्रपते—कानाफूसी करते हैं, कहते हैं। चुरादि गणीय गत्रि गुणपरिमाणे घातु के लट् लकार—प्रथम पुरुष-एकवचन का यह रूप है।

पद्मावती—जुज्जइ। ण खु एसा उज्जइणोदुल्लहो। सर्वजन-मणोभिरामं एु सोभगं णाम (युज्यते। न खल्वेय उज्जयिनी-दुल्लभः। सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।)

संस्कृत टीका—युज्यते—संगच्छते त्वदुत्तमिति शेषः। एव. श्रीमान् उदयनः, उज्जयिनीदुल्लभः—उज्जयिन्याः। उज्जयिनीवासिनामुपलज्जनात् दुर्लभः दुःप्रापः, न खलु—नखेव (प्रति)। सौभाग्यं—सौन्दर्यं, नाम—प्रतिद्वयं क-मेतन्, खलु—निश्चयेन, सर्वजनमनोऽभिरामम्—सर्वेषां समस्तानां जनानां लोकानां मननः पितृस्य अभिरामम् आकर्षकम् (भवति)।

धनुवाद—ठीक है। उज्जैन के निवासियों के लिए उनका (उदयन का) दर्शन दुर्लभ नहीं है। और सौन्दर्य सबके मन को आकृष्ट कर लेता है।

Padmarati—Right. He is not difficult of access (to people) in Ujjain. Indeed beauty gratifies the mind of all men.

टिप्पणी—(१) न खलु उज्जयिनीदुल्लभः—भाव यह है कि उज्जैन के लोगों के लिए उदयन का दर्शन दुर्लभ नहीं है, क्योंकि वहाँ मसुराव होने के कारण वे कई बार गये-आये होंगे तो जब वहाँ के लोग उन्हें सुन्दर पाते हैं तब थोड़ा बारण नहीं है कि वे सुन्दर न हों।

(ततः प्रविशति धात्री)

धात्री—जेदु^१ भट्टिदारिका । भट्टिदारिका ! दिष्णासि । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! दत्तासि ।]

(तदनन्तर घाई का प्रवेश) घाई—राजकुमारी की जय हो । राजकुमारी ! तुम दे दी गई अर्थात् तुम्हारी सगाई हो गई ।

(Then enter the nurse) Nurse—May fair fortune be fall your Royal Highness. Your hand has been bestowed.

वासवदत्ता—अय्ये ! कस्स ? [आये ! कस्मै ?]

वासवदत्ता—देवी ! किसे ?

Vasava.—Revered lady on whom ?

धात्री—वच्छराग्रस्स उदअणस्स^२ । [वत्सराजायोदयनाय ।]

घाई—वत्स देश के राजा उदयन को ।

Nurse—The Vatsa king, Udayan.

वासवदत्ता—अह कुसली सो रात्रा ! [अय कुशली स राजा ?]

वासवदत्ता—वे राजा कुशल से तो हैं न ?

Vasava.—Is the king doing well.

धात्री—कुशलो सोइह आअदो । तस्स भट्टिदारिका पडिच्छिदा अ ।

[कुशली स इहागतः । तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च ।]

धात्री—वे कुशलपूर्वक पाये हैं और उन्होंने राजकुमारी को (ब्याहना) स्वीकार भी कर लिया है ।

Nurse—The king is well and has come here and has accepted to marry my princess.

वासवदत्ता—^३अच्चाहिदं ।^४ [अत्पाहिजम् ।]

वासवदत्ता—घनरुं हो गया ।

Vasava.—How terrible. ?

१. पाठान्तर । जेदु जेदु । २. णस्स दिष्णा (दत्ता) । ३. पाठान्तर—
सो प्रापसो । ४. पाठान्तर—हिदं सु एहं (वत्सेनम्) ।

धात्री—किं एतत् अच्चाहिदं ? (किमत्रात्याहितम् ?)

षाई—इसमें क्या घनयं हुआ ?

Nurse—What is that ? why terrible ?

वासवदत्ता—ण ह्रु किञ्चित् । तद् नाम सन्तप्पिज उदासीणो होवित्ति । [न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्पोदासीनो भवतीति]

वासवदत्ता—कुछ नहीं । (बे राजा) उस प्रकार (वासवदत्ता के वियोग से) सन्तप्त होकर (वासवदत्ता से) उदासीन हो गये यही सोच कर मैंने ऐसा कहा ।

Vasava.—Nothing really. Having been pained in that way, now he has become indifferent.

धात्री—अय्ये ! आअप्पमहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुत्त-
ह्मिअआणि होन्ति^१ । [आय्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्था-
नानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।]

षाई—भीमती जी ! महापुरुषों के हृदय शास्त्रों पर विश्वास करने के कारण आसानी से प्रकृतित्य हो जाते हैं ।

Nurse—Revered lady, the minds of great men are advanced in knowledge and can easily become composed.

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण चारिदा ? [आय्ये ! स्वयमेव तेन वृत्ता ।]

वासवदत्ता—देवी ! क्या उन्होंने स्वयं चरण किया ?

Vasava.—Revered lady, has she been chosen by himself (of his own free will) ?

धात्री—णहि णहि । अणप्पमोअणेण इह आअदत्त अभिजण-
यिअजाणवओरुव्वं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा । [नहि
नहि, अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरुप्य वृद्ध्वा
स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।]

संस्कृत टीका—नहि नहि—नैवम् । अन्यप्रयोजनेन—कारणान्तरेण, इह—

अत्र, आगतस्य—समायातस्य, अभिजनविज्ञानवयोरुप्यम्—अभिजनः कुलम्
विज्ञानम् शिक्षाशास्त्रपटुत्वम् वयः प्रवस्था सादृश्यमिति यावत् रूपम् सोढयम्
इति दृष्ट्वा—प्रवृत्तौ, महाराजेन—दर्शकेन, स्वयम्—आत्मनैव, दत्ता—
वाग्दानेन समर्पिता ।

१. होन्ति सोममुण्यानि (शोभशुण्यानि) ।

नहीं नहीं। किसी दूसरे उद्देश्य से आये हुए उनके कुल, शिल्प और शास्त्रों का ज्ञान यौवन तथा सौन्दर्य देख कर महाराज ने स्वयं ही पद्मावती को दे दिया।

Nurse—No, not certainly. She was given by the king himself after noticing his exalted birth, achievements, age and personal charms when he came here on a different mission.

टिप्पणी—(१) धात्री—उपमाता, धाई। 'धात्री स्यादुपमातापि' इत्यमरः।

(२) कुशली—कुशलयुक्त। कुशलम् अस्ति अस्य इति विग्रहे कुशल+इनि 'अत इनिठनौ' इत्यनेन। (३) तस्य प्रतीष्टा—उन्होंने स्वीकृत वचन दे दिया है। यहाँ 'तेन प्रतीष्टा' होता चाहिए था, किन्तु कर्ता के अर्थ की अविषया करके सम्बन्ध सामान्य में पड़ी हुई है। प्रति+इप्+क्त (त), टाप् (आ)—प्रतीष्टा।

(४) अत्याहितम्—मारी अनर्थ, महामय। 'अत्याहितं महाभीतिः' इत्यमरः। अतिशयेन आघीयते मनसि इति अत्याहितम्, अति—आ+घा+क्त (त), 'दघातेहि' इति सूत्रेण घा इत्यस्य हि आदेशः। (५) आगमप्रधानानि—शास्त्रों को महत्त्व देने वाले। आगमः=शास्त्रम् प्रधानम्=मुख्यो येषु तानि आगमप्रधानानि।

(६) सुलभपर्यवस्थानानि—सु+लभ्+खल् (घ) कर्मणि। परि+अव+स्था+ल्युट् (अन) भावे—पर्यवस्थानम्। सुलभम्=अनायाससाध्यम् पर्यवस्थानम्=प्रकृतिस्थितिः येषां तानि तथाविधानि। यहाँ वाक्य का तात्पर्य यह है कि शास्त्रों के ज्ञान से उद्भासित अन्तःकरण वाले पुरुष शीघ्र प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। उदयन शास्त्रवेत्ता हैं अतः वे अव प्रकृतिस्थ हैं। उनमें उदासीनता नहीं है। इसलिए अनर्थ होने का कोई कारण नहीं है। (७) वृता—वरण किया। पत्नीत्वेन अभिलपिता। √वृ+क्त (त), टाप् (आ)। किसी-किसी पुस्तक में 'वरिता' पाठ मिलता है। ईप्स्तार्थक चुरादिगणीय वर् घातु से क्त प्रत्यय करने पर इसकी सिद्धि होगी। (८) अन्यप्रयोजनेन—दूसरे प्रयोजन से। अन्यत् च तत् प्रयोजनम् अन्य-प्रयोजनम् कर्मधारय समास तेन। अत्र हेतौ तृतीया अर्थात् करण में तृतीया हुई है। (९) अभिजनविज्ञानवयोरुपम्—'अभिजनश्च विज्ञानं च वयश्च रूपं च' इस विग्रह में समाहार द्वन्द्व करने पर नपुंसकत्व और एकवचन हुआ।

(१०) अभिजन—कुल। 'सन्ततिर्गोत्रजननकुलाग्यमिजनान्वयो' इत्यमरः।

(११) विज्ञान—शिल्प और शास्त्रविषयिणी बुद्धि। 'विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः' इत्यमरः। घर के लिए आवश्यक गुण ये बताये गये हैं—कुलं च शीलं च सनायता च विद्या च वित्तं च धनपूर्वयश्च।

स्व० ८०—११

(३) कौतुकमङ्गलम्—विवाह के अवसर पर वर और कन्या के हाथों में जो कगन बाँधा जाता है, उसी को कौतुममंगल कहते हैं। 'कौतुकं त्वमिलापे स्यादुत्सवे नमंर्हर्षयोः । विवाहसूत्रगीतादिभोगयोरपि न द्वयोः ॥' इति मेदिनीकोशः । मत्स्यपुराण के अनुसार कंगन में दूब, हल्दी आदि का व्यवहार किया जाता है— 'दूर्वायवाङ्कुराश्चैव बालकं चूतपल्लवाः । हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः । कङ्कणीयघयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृताः ।' कौतुकरूपं मङ्गलम् इति कौतुकमंगलम्, मध्यमपदलोपी समाप्त । (४) भट्टिनी—प्रकृतामिपेका रानी । 'देवी कृतामिपेकायामितरासु तु भट्टिनी ।' इत्यमरः ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे ह्रिअअं । [यथा यथा ह्वरते तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।]

वासवदत्ता—(मन मे) जैसे-जैसे यह शीघ्रता कर रही है, वैसे-वैसे मेरा हृदय सूना होता जा रहा है ।

Vasava—(To herself) The more they haste, still the deeper the shadows on my heart.

टिप्पणी—(१) अन्धीकरोति—अंधा (किंकर्तव्यविमूढ़) बना रही है । न अन्धम् अन्धं करोति इति विग्रहे 'कुम्बस्त्रियोगे सम्पद्यकर्तारि च्विः' इति सूत्रेण च्विप्रत्ययः, 'अस्य च्वौ' इति सूत्रेण ईत्वम्, ततः √कृ+लट्—तिप् । कृ+लट् प्र० पु० ए० व० ।

धात्री—एडु' एडु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका !]
(निष्क्रान्ताः सर्वे ।) इति द्वितीयोऽङ्कः ।

घाई—आइये, राजकुमारी जो ! आइये । (सबका प्रस्थान ।) दूसरा अंक समाप्त ।

Nurse—Come, come my princess (Exeunt omnes). Here ends Act II.

१. पाठान्तर—पविसडु दाव अन्धमन्तर० । (प्रविशतु तावदन्धमन्तर०) ।
पाठान्तर मे अर्थ हुआ 'तो अन्धर प्रवेश करें । प्र+विग्+लोट् प्र० पु० ए० व० ।

अथ तृतीयोऽङ्कः

(इस अंक में अपने पति के साथ पद्मावती का विवाह होने से वासवदत्ता की व्याधा का वर्णन किया गया है। वह मनोविनोदार्थं राजमदन से निकल कर प्रमदवन में चली जाती है। वहाँ मगधराज्ञी के कहलाने पर वह विवाह-माना भूषती है जिसमें अविषयाकरण ओषधि को ही भूषती है सपत्नीमर्दन को नहीं। इस विवाह से व्यथित होकर शान्तिसामार्थ्य वह सोने का उपक्रम करती है।)

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता ।)

वासवदत्ता—विवाहमोदसङ्कुले अन्तेऽरचउत्साले परित्तजग्र पदुमावदि इह आग्रदहि पमदवर्णं । जाव दाणि भाग्रधेग्रणिद्वुत्तं दुःखं विनोदेमि । (परिक्रम्य) अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो विणाम परकेरओ संवुत्तो । जाव उवविसामि । (उपविश्य) धञ्जा ख चक्कवाअवह, जा अण्णोणविरहिदा ण जीवइ । ण ख अहं पाणाणि परित्तजामि । अय्यउत्तं पेक्खामि ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ । [विवाहमोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुश्शाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम् । यावदिदानीं भागधेयनिवृत्तं दुःखं विनोदयामि । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावद् उपविशामि । धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽप्योऽप्यविरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्रं पश्यामीति एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ॥ १]

संस्कृत टीका—विवाहमोदसङ्कुले—विवाहस्य परिणयस्य प्रमोदः प्रहृष्टानन्दः तेन सङ्कुले व्याप्ते, अन्तःपुरचतुश्शाले—अन्तःपुरे गुह्याने राज्ञीनां निवासस्थाने इति यावत् यत् चतुःशाल मञ्जवनं परम्परामिमुनी-भिश्चतसृभिः शालाभिः युक्तं स्थानमिति यावत् तस्मिन्, पद्मावती—मगध-राजकुमारी, परित्यज्य—त्यात्वा, इह—एकान्ते, प्रमदवनम्—श्रीशेषानम्, भागतास्मि—उपस्थितास्मि । यावत्—तावत्, इदानीम्—साम्प्रति, भागधेय-निवृत्तं—दुर्भाग्यसंशयम् दुःखं—दृष्टम्, विनोदयामि—घटनयामि । अहो !

—ग्रहह !, अत्याहितम्—महामीतिः सम्प्राप्ता । आर्यपुत्रोऽपि—स्वामी अपि,
परकीयः—अन्यदीयः, संवृत्तः—सञ्जातः । यावद् उपविशामि । चक्रवाकवचूः—
चक्रवाकी, खलु—निश्चयेन, धन्या—अमिनन्दनीया, या, धन्योऽन्यविरहिता—
परस्परं वियुक्तान् जीवति—न प्राणान् धारयति । न खल्वहं—ग्रहन्तु नैव,
प्राणान्—असून्, परित्यजामि—भुञ्चामि । आर्यपुत्रं—स्वामिनं, पश्यामि—
अवलाकयिष्यामि, इत्येतेन—आर्यपुत्रदर्शनप्रत्याशारूपेण, मनोरथेन—अमिलापेण,
(ग्रहं) मन्दमागा—अल्पमागा, जीवामि—श्वमिमि ।

अनुवाद—(तदनन्तर सोचती हुई वासवदत्ता का प्रवेश ।)

वासवदत्ता—विवाह के आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण रनिवास के चौसाले में
पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ क्रीडोद्यान में चली आई हूँ । अभी दुर्भाग्य से उप-
स्थित दुःख को तब तक कुछ शान्त करूँ । (घूम कर) हाय ! विपत्ति पड़ी । आर्यपुत्र
भी परामे हो गये । तब तक बैठ जाती हूँ । (बैठकर) निःसन्देह चक्रवे की बहू
(चक्रवी) धन्य है, जो एकदूसरे से भलग होकर नहीं जीती । मैं तो प्राण भी नहीं
छोड़ती हूँ । आर्यपुत्र को देखूँगी, इसी अनिलापा से मैं भ्रमाग्नि जी रही हूँ ।

(Then enter Vasavadatta in meditation). Vasava.—Leaving
padmavati in the quadrangle of internal apartments, astir with
the marriage festivities, here have I come to the ladies' garden.
Now then I shall suppress the sorrow laid upon me by fate.
(Walking about) Oh, alas, (how bad it is ?) Even the king should
really belong to another. I shall sit down (sitting). Happy
indeed is the female chakrawaka who does not live, if separated
from her mate, but I do not leave my life, unfortunate as I am,
I live in this hope that I can see my lord.

टिप्पणी—(१) विवाहामोदसंकुले—विवाह के आमोद-प्रमोद से व्याप्त ।
विवाहस्य आमोदः तेन सकुले पष्ठीर्गमित तू० तदु० । (२) अन्तःपुरचतुदशाले—
जनानस्थाने की चौखट में । 'चतसृणा शालाना ममाहारः इति अनुदशालम्' इय
विग्रह में समाहार द्वन्द्व करने पर एकवद्भाव तथा नपुंसकलिंग हो जाता है ।
अन्तःपुरस्य चतुदशालम्, पष्ठीतत्पुष्टय । तस्मिन् अन्तःपुरचतुदशाले । (३) प्रमद-
वनम्—वह उद्यान जिसमें राजा अपनी रानियों के साथ विवाह करता है,
क्रीडोद्यान, प्रमोदवन । 'स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इत्यमरः । प्रमदाना
वनम् इति प्रमदवनम् । यहाँ 'दयापोः सजाद्यन्दसोर्बहुसम्' इस भूत से प्रमदा में
हस्तना हुई । (४) परित्यग्य—छोड़कर । परि+त्यज्+त्यर् । (५) भागपेय-

निर्वृत्तम्—द्रुमाग्न्य से प्राप्त । भागधेयम् में स्वार्थ मे धेय प्रत्यय; तस्मात् निर्वृत्तम् । यह विशेषण है 'दुःखम्' की विशेषता बतलाता है । (६) दुःखं विनोदयामि—दुःख हल्का करती हूँ । (७) अन्योन्यविरहिता—एक दूसरे से वियुक्त । (८) न जीवति—नहीं जीती है । अर्थात् चकवी चकवे से बिलुडने पर मृतप्राय हो जाती है । (९) यावत् उपविशामि—अच्छा बैठती हूँ । उप+विश्+लट् उ० पु० ए० व० । (१०) विनोदयामि यावत्, उपविशामि यावत्—यहाँ 'यावत्' के योग में 'यावत्पुराणिपातयोल्लङ्' सूत्र से भविष्यत् के अर्थ में लट् लकार हुए हैं । (११) पदयामि—यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से भविष्यत् के अर्थ में लट् लकार हुआ । (१२) मनोरथेन—आशा से । हेतु में तृतीया हुई । वियोग में प्रिय-मिलन की आशा से ही प्राणियों का जीवन-धारण होता है । जैसा कि मेघदूत में आया है । 'आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रावक्षो ह्यङ्गनानां, सद्यः पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रणदि' ।

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटो)

चेटो—कहिणु खु अय्या आविन्तम्मा ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअं चिन्तामुण्णहिप्रग्गा णोहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डिद-भट्ठअं वेसं धारअन्दी पिअड्गुसिलापट्टए उवविट्ठा । जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य) अय्ये ! अवन्तिए ! को कालो, तुमं अण्णेसामि । [क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका ?] अम्मो ! इयं चिन्ताशून्यहृदया नोहार-प्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेपं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा । यावदुपसर्पामि । आर्ये ! आवन्तिके ! कः कालः, त्वामभिन्यस्यामि ।]

संस्कृत टीका—क्व नु खलु गता—कुत्र हि गता, आर्या—पूज्या, आवन्ति-आ ?—अवन्तिसमुत्पन्ना ? अम्मो !—हर्षविस्मयद्योतकमव्ययमिदम्, इयम्—आवन्तिका, नोहारप्रतिहतचन्द्रलेखा—नोहारेण तुषारेण प्रतिहता ताडिता या चन्द्रसेया घातिका सा, इव—तद्वत्, चिन्ताशून्यहृदया—चिन्तया प्रियतमविरह-विग्ननेन हेतुना शून्य वर्तव्यज्ञानरहित हृदयं चित्तं यस्याः सा तथामृता, अमण्डित-भद्रकम्—अमण्डितः अमृषितस्यासौ भद्रकः मनोहरः तम्, वेपम्—स्वरूपम्, धारयन्ती—गृह्णन्ती, प्रियङ्गुशिलापट्टके—प्रियङ्गोः गन्धकल्पारूपलतायाः प्रयो-वतिनि शिलापट्टके पाषाणगण्डे, उपविष्टा—तमासीना (अस्ति) । यावदुप-सर्पामि—तस्मात्मीं गच्छामि । उपसृत्य—निर्बृट् गत्वा कथयतीति शेषः, आर्ये !

कः कलाः—कियान् समयः व्यतीत इति शेषः, त्वाम्—भवन्तीम्, अन्विष्यामि—भवत्याः अन्वेष्टनं करोमि ।

अनुवाद—(तदनन्तर फूल लेकर दासी आती है।)

दासी—उज्जैन वाली आर्या कहां चली गई ? (धूम कर धीरे देखकर) अहो ! ये तो हिमाच्छादित चन्द्रकला की भाँति चिन्ता के मारे अपने आप में खोकर बिना शृङ्गार के भी सुन्दर वेश धारण किए हुए प्रियगु लता के नीचे पत्थर की चौकी पर बैठी हैं । अच्छा, समीप चलूँ । (समीप जाकर) श्रीमती आवन्तिका जी ! मैं आपको कब से ढूँढ़ रही हूँ ।

(Then, enter a maid with flowers). Maid—Where has the honourable Avantika gone ? (turning about and seeing) oh this, (she is) sitting here on the stoneseat under the priyangu (creeper) with a heart vacant in meditation, clad in an unadorned but chaste dress, like the moon's crescent, dimmed by mist. Now I approach (approaching) Honourable Avantika, for how long a time should I search you ?

टिप्पणी—(१) आर्या—पूज्या । (२) आवन्तिका—अवन्तिप्रदेश में उत्पन्न । अवन्त्यां भवा इत्यर्थे अवन्ति+ठञ् 'काश्यादिभ्यष्ठञ्जिटौ' इति सूत्रेण, तस्य इकादेशे स्त्रीत्वाद्वाप् । (३) बब नु खलु गता—कहाँ चली गई । (४) चिन्ता-शून्यहृदया—चिन्ता में शून्य हृदय वाली । चिन्तया शून्यं हृदयं यस्याः सा बहुव्रीहि । (५) नीहारप्रतिहृतचन्द्रलेखा—हिमाच्छादित चन्द्रमा की कला के समान । नीहारेण प्रतिहृता या चन्द्रलेखा सा इव, तद्वत् । (६) अमण्डितभद्रकम्—बिना सजाये ही सुन्दर लगने वाला, निसर्गसुन्दर । भद्र एव भद्रकः, तम् । भद्र+कः स्वार्थे । न मण्डितः अमण्डितः, अमण्डितश्चासौ भद्रकः अमण्डितभद्रक विशेषणो-भयपदकमंघोरय, तम् । यह 'वेपम्' का विशेषण है । (७) प्रियङ्गु शिलापट्टके—प्रियङ्गुनीचैः शिलापट्टकम् मध्यमपदलोपीसमाप्तः तस्मिन् । प्रियंगुलता के पर्यायवाची शब्द ये हैं—'लतागोवन्दिनी गुन्द्रा प्रियगु. फलिनी मली । विष्वक्सेना गन्धफली' इत्यमरः । इसको मैथिली में 'दहिगन' कहते हैं । इस लता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जहाँ उसे किसी सुन्दरी स्त्री ने स्पर्श किया कि वह फूलने लगती है । (८) उपविष्टा—बैठी हुई । उप+विष्+क्त (त) +टाप् (भा) यिनान् (९) यावदुपसर्पामि—अच्छा, समीप चलती हूँ । (१०) उपसृत्य—समीप जाकर । उप+सृ+ल्यप् । (११) अन्विष्यामि—खोज रही हूँ । अनु+इप्+सट् । उ० पु० ए० व० ।

वासवदत्ता—किण्णिमित्तं ? (किण्णिमित्तम् ?)

वासवदत्ता—किसलिए ?

Vasava.—What for ?

चेटी—अह्माअं भट्टिणी भणादि—महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउणा
त्ति इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्यदु अय्या । [अस्माकं भट्टिनी
भणति—महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुक-
मालिकां गुम्फत्वार्या ।]

संस्कृत टीका—अस्माकं भट्टिनी—स्वामिनी दशकस्य अन्नमयिक्ता राज्ञी
इति यावत्, भणति—वदति (यत्), महाकुलप्रसूता—महति उच्च कुले वशे
प्रसूता उत्पन्ना, स्निग्धा—स्नेहपूर्णा, निपुणा—दक्षा, इति—अस्मादेतोः, भार्या—
भवती, इमा—गुम्फनीया, कौतुकमालिका—सौभाग्यकारकं मङ्गलमाल्यं,
गुम्फतु—ग्रथ्नातु ।

वासी—हमारी स्वामिनी कह रही हैं कि भार्या (प्राप) उच्च कुल में उत्पन्न
हुई हैं, स्नेह रखती हैं और निपुण हैं; इसलिए (प्राप ही) यह सोहाग की माला
पूँछें ।

Maid—Our queen says : you are born in a noble family and
are affectionate and skilled. Then honourable madam should,
please, string this wedding garland.

टिप्पणी—(१) भट्टिनी—भट्टः राजा, सोऽस्ति अस्याः पतित्वेन इति भट्टिनी
भट्ट+इनि—ङीप् । जिसके पति का राज्याभिषेक हो जाता है, उसे 'राज्ञी' 'देवी'
नाम से सम्बोधित किया जाता है और रानियों को 'भट्टिनी' । 'देवी' इत्या-
भियेकायामितरासु तु भट्टिनी' । इत्यमरः । (२) महाकुलप्रसूता—कुलोत्तमा,
जानवानी । महच्च तत् कुलं महाकुलम्, तस्मिन् प्रसूता महाकुलप्रसूता ।
(३) स्निग्धा—स्नेहशीला । स्निह्+घट (त) कर्त्तरि+टाप् (घा) ।
(४) निपुणा—दक्ष, कार्यभूता, ये विशेषण वासवदत्ता के बड़ी कुशलता, प्रेम
और सीधता से माता गुंथने के शीतक हैं । (५) कौतुकमालिका—मंगल माला ।
विवाह के समय हाथ में धारण किया हुआ मूत्र । कौतुकमयी मालिका । शक-
पाषिषादित्वात् समासः । (६) तावत्—यह अथवा वाक्य को संस्कृत करने के
लिए प्रयुक्त होता है । यहाँ प्रार्थना में लोड सकार हुआ । (७) गुम्फतु—
गुंथें । लोड प्र० पु० ए० ४० ।

वासवदत्ता—अहं कस्मै किल गुह्यदत्तं ? (अथ कस्मै किल गुह्य-
तव्यम् ?)

टिप्पणी—(१) कस्मै—किसके लिए । 'कर्मणा यममिप्रेति स सम्प्रदानम्'
अर्थात् कर्म के द्वारा जिसे कर्ता सन्तुष्ट करना चाहता है वह सम्प्रदान कहा
जाता है ।

वासवदत्ता—किसके लिए (मुझे माला) गुँथनी है ?

Vasava.—For whom am I to string it.

चेटी—अह्माश्रं भट्टिदारिआए । [अस्माकं भर्तृदारिकायं ।]

दासी—हमारी राजकुमारी के लिए ।

Maid—For our princess.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एवं पि मए कत्तव्वं आसी । अहो !
अकहणा खु इस्सरा । [एतदपि मया कर्तव्यमासीत् । अहो !
अकहणाः खल्वीश्वराः ।]

वासवदत्ता—(मन मे) यह भी मुझे करना था । हाय ! ईश्वर बड़े
निंद्यी हैं ।

Vasava.—(To herself) Oh, was it also to be done by me ?
Cruel indeed are the Gods.

चेटी—अय्ये ! मा दाणि अण्ण चिन्तिअ । एसी जामादुओ
मणिभूमोए हणाअदि । सिग्घं दाव गुह्यदु अय्या । [आयं !
मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा । एष जामाता मणिभूम्या स्नायति ।
शीघ्रं तावद् गुह्यत्वार्था ।]

दासी—देवी जी ! इस समय दूसरी बात न सोचें । ये दुलहा जी मणि-
बेदिवा पर स्नान कर रहे हैं । इसलिए आप शीघ्र गुँथ दें ।

Maid—Pray think not now of anything but this, why in the
Jewelled chamber, even now matrons anoint the bridegroom
pray make haste.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्णि चिन्तेदु'
(प्रकाशम्) हला ! कि दिट्ठो जामादुओ ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्त-
यितुम् । हला ! कि दृष्टो जामाता ?]

वासवदत्ता—(मन में) दूसरी बात सोच नहीं सकती (प्रकट) सखी ! क्या तुमने दुलहे को देखा है ?

Vasava.—(To herself) How could I think of anything but this ? (aloud) Tell me have you seen the bridegroom.

चेटी—आम, दिठ्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ ।
आम्, दूष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च ।]

दासी—हाँ, राजकुमारी के स्नेह और अपने कौतूहल से देखा है ।

Maid—Oh yes I saw him through affection for the princess and through our curiosity.

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ ? [कीदुशो जामाता ?]

वासवदत्ता—दुलहा कैसा है ?

Vasava.—How is he ?

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुषो । [आये !
भणामि तावद्, नेदुशो दूष्टपूर्वः ।]

दासी—देवी जी ! मैं तो कहती हूँ कि ऐसा दुलहा कभी देखा ही नहीं था ।

Maid—Madam, I do say, never such a one was seen before.

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला !
भण भण, किं दर्शनीयः ?]

वासवदत्ता—सखी ! कहो कहो, क्या देखने योग्य है ?

Vasava.—Friend ! tell me is he charming ?

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो कामदेवो त्ति । [शक्वं भणिदुं
शरचापहीनः कामदेव इति ।]

दासी—(दुलहा) यन्त्र और बाण से रहित कामदेव कहा जा सकता है ।

Maid—Why you might call him the god of love, without his bow and arrows.

वासवदत्ता—होदु एत्तअं । [भयत्येतावत् ।]

वासवदत्ता—घन्झा रहने दो ।

Vasava.—Enough of this. No more.

चेटी—किन्निमित्तं यारेसि ? [किन्निमित्तं वारयसि ?]

दासी—क्यों मना कर रही हैं ।

Maid—Why do you forbid ?

वासवदत्ता—अजुतं परपुरुषसङ्कित्तणं सोढुं । [अयुक्तं परपुरुष-
संकीर्तनं श्रोतुम् ।

वासवदत्ता—पराये पुरुष का गुणानुवाद सुनना उचित नहीं है ।

Vasava.—It is not proper to listen to the praises of one who is the husband of another.

चेटी—तेण हि गुह्यादु अय्या सिधं । [तेन हि गुम्फत्वार्या शोध्रम् ।]

दासी—अच्छा, तो आप शोध्र माला गुँथ दीजिये ।

Maid—Then, please, your ladyship should soon put together (the flowers in a wreath.)

वासवदत्ता—इअं गुह्यामि । आणेहि दाव । [इयं गुम्फामि । आनयः
तावत् ।]

वासवदत्ता—यह गुँथती हूँ । लाओ तो ।

Vasava.—I will, Bring me the flowers.

चेटी—गहणदु अय्या । [गृहणात्वार्या ।]

दासी—लीजिये ।

Maid—There take them lady.

वासवदत्ता—(यजंयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ?
इदं तावदीपधं किं नाम ?]

वासवदत्ता—(हटा कर ओर देखकर) इस ओपधि का क्या नाम है ?

Vasava.—(Putting away same flowers and closely observing) what here is this ?

चेटी—अविहवाकरणं णाम । [अविधवाकरणं नाम ।]

दासी—मुहागिन बनाने वाली ।

Maid—They call it "husband's life."

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुशो गुह्यस्त्वं मम अ पटुमावदोए
अ । (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं बहुशो
गुम्फित्तयं मह्यं च पटुमावत्यं च । इदं तावदीपधं किं नाम ?]

वासवदत्ता—(मन में) अपने लिए और पद्मावती के लिए इस ओषधि को अनेक बार गूँथना चाहिए । (प्रकट) इस ओषधि का क्या नाम है ?

Vasava.—(To herself) of these I must weave many in the garland, both for myself and Padmavati, (aloud) what again is the name of this plant ?

चेटी—सवित्तमद्वणं नाम । [सपत्नीमर्दनं नाम ।]

दासी—सौत का मर्दन करने वाली ।

Maid—The destroyer of a co-wife.

वासवदत्ता—इदं न गुह्यदव्यं । [इदं न गुम्फितव्यम् ।]

वासवदत्ता—इसको नहीं गूँथना चाहिए ।

Vasava.—This should not be wreathed.

चेटी—कोस ? [कस्मात् ?]

दासी—क्यो ?

Maid—And why not ?

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं निप्पओअणं त्ति । [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति ।]

वासवदत्ता—उनकी स्त्री तो मर चुकी है । इसलिए (इसका गूँथना बेकार है ।)

Vasava.—His wife is dead there is no need for it.

(प्रविश्यापरा) चेटी—तुवरदु तुवरदु अय्या । एसो जामादुओ अविह-
याहि अम्भन्तरचउस्सालं पवेसोअदि । [त्वरतां त्वरतामार्गं ।
एष जामाता अविधवाभिरम्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते ।]

(दूमरी दासी का प्रवेश) दासी—देवी जी ! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता ।
ये दुलहा मुहागिनों द्वारा कोह्वर में लाये जा रहे हैं ।

(Enter another Maid-servant). 2nd Maid—Your ladyship should hurry up; hurry up please. Here the bridegroom is being ushered into the innermost quadrangle by married ladies whose husbands are alive.

वासवदत्ता—अइ ! वदामि, गहण एदं । [अपि ! वदामि, गृह्णतन् ।]

वासवदत्ता—धरो ! बहनी हूँ, इसे लो ।

Vasava.—Oh, I say, take this.

चेटी—सोहणं । अय्ये ! गच्छामि दाव अहं । [शोभनम् आयें !
गच्छामि तावदहम् !] (उभे निष्क्रान्ते)

दासी—बहुत सुन्दर । देवी ! अब मैं जाती हूँ । (दोनों का प्रस्थान)

Maid—Well done, Your ladyship. I shall now go.

(both retire.)

वासवदत्ता—गदा एसा । अहो ! अच्छाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम
परकेरओ संबुत्तो । अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि, जदि
णिद्वं लभामि । [गतेपा । अहो अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि
नाम परकीयः संबुत्तः । अविदा ? शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि,
यदि निद्रां लभे ।] (निष्क्रान्ता) इति तृतीयोऽङ्कः ।

संस्कृत टीका—एषा—चेटी, यता—याता । प्रहो ! —ग्रह । अत्याहितम्—

महानीतिः, (उपस्थिता) । आर्यपुत्रोऽपि—स्वामी अपि, परकीयः—अन्यदीयः,
संबुत्त—सजातः । अविदा ! —विषादार्थकमध्ययमिदम् । शय्यायां—शयनीये,
मम—स्वकीयं, दुःख—कष्टम्, विनोदयामि—प्रपनेष्यामि, यदि—चेतु, निद्रां—
स्वप्न, लभे—प्राप्स्यामि ।

वासवदत्ता—वह चली गई । हाय ! अनर्थ हुआ ! आर्यपुत्र भी पराये हो
गए । ओह ! यदि नींद आ जाय तो मेज पर अपना बट्ट निवारण कर लूँ ।
(वासवदत्ता का प्रस्थान) तीसरा अंक समाप्त ॥

Vasava.—She is gone. Oh alas. Even the king has become
a stranger (to me) now Oh (help) I shall remove my pain in my
bed, If I get sleep (Exit, Vasavadatta) Here ends the third Act.

शोचे घातु के लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का यह रूप है। (५) ग्राम्—हाँ। यह स्वीकृतिसूचक अव्यय है। (६) कौतूहलेन—कुतूहलता के कारण—‘हेतो तृतीया’ से तृतीया हुई है। ‘रम्यवस्तुसमालोके लोलता स्यात् कुतूहलम्।’ (७) कीदृशः—कंसा। (८) दृष्टपूर्वः—पूर्वं दृष्टः इति दृष्टपूर्वः मयूरव्यमकादित्वात् ममासः। (९) सक्कं भणिदु... इसके स्यान मे ‘सग्र खु नम्रव सरचावहीणो कामदेवोत्ति’ ऐसा पाठभेद मिलता है। इसकी संस्कृतच्छाया होगी—‘स्वयं खलु भगवाञ्छरचापहीनः कामदेव इति’ शरश्च चाप च शरचापे द्वन्द्व समास ताम्या हीनः तृतीया तत्पुरुष। (१०) सपत्नीमर्दनम्—सौत को नष्ट करने वाला। समानः पतियस्याः सा सपत्नी, ‘नित्यं सपत्न्यादिपू’ इत्यनेन समानस्य स आदेशः, ‘विनाया सपूर्वस्य’ इत्यनेन ङीप् नकारादेशश्च। मर्दते अनेन इति मर्दनम्/मृद्+णिच्+ल्युट् करणे, तस्य अनादेशः, सपत्न्याः मर्दनम् सपत्नीमर्दनम्। (११) उपरता—मृता। उप/रम्+क्त+टाप्। तत्—यह हेत्वर्थक अव्यय है। (१२) निष्प्रयोजनम्—निर्गत प्रयोजन यस्मात् तत् निष्प्रयोजनम् प्रादि बहुव्रीहि समास। (१३) स्वरताम् त्वरताम्—इस प्रकार की द्रुति ‘सम्भ्रमेण प्रवृत्तो यषेष्टम् अनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः’ के अनुसार होती है। (१४) अविधवामिः—सोमाप्यवती स्त्रियों द्वारा। विगतो धवो यस्याः सा विधवा, न विधवा इति अविधवा। विधवा स्त्रियों का मागतिक कायों मे सम्मिलित होना यजित है। (१५) प्रवेक्ष्यते—प्र/विद्+णिच्+लट् कर्मणि। लाये जा रहे हैं। (१६) अविशः—यह विपादायं अव्यय है। इसका प्रयोग प्राकृत मे पाया जाता है। वही यह विस्मय तथा शोक के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। (१७) विनोदयामि, लभे—यही ‘वर्तमानतामीप्ये वर्तमानवद्वा’ सूत्र मे भविष्यत् काल के अर्थ में लट् लकार हुए हैं।

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(विवाहोपरान्त पद्मावती एक दिन वासवदत्ता के साथ प्रमदवन में जाती है। उसी समय महाराज उदयन भी वसन्तक के साथ वहाँ आते हैं। पद्मावती और वासवदत्ता का प्रसंग छिड़ने पर राजा वासवदत्ता के गुणों का स्मरण कर के मूर्च्छित हो जाता है तथा उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। अबसर पाकर पद्मावती वहाँ सहसा प्रविष्ट होकर राजा की आँखें धोती है। प्रणय सकट से बचाने के लिए विदूषक मगधराज के सम्मानार्थ आयोजित उत्सव में सम्मिलित होने का स्मरण राजा को दिलाता है। उसे मुनकर वह तत्काल वहाँ से प्रस्थान कर देता है।)

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराग्रस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खिता उम्मज्जिस्सामो त्ति । इदाणि पासादेसु वसोअदि, अन्देउरदिग्घिआसु, ह्णाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअलज्जआणि खज्जीअन्ति त्तिअणच्छरसंवासो उत्तरकुट्टवासो मए अणुभयोअदि एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिदं ण लभामि, जह वाद-सोणिदं अभिदो विअ वत्तदि ति पेक्खामि । भो ! मुहं णामअपरि-भूदं अकल्लयत्तं च ।

[भो: ! दिष्ट्या तत्रभवतो यत्सराजस्याभिप्रेतविवाह-मङ्गलरमणोपः कालो दृष्टः । भो: ! को नामंतज्जानाति—तादृशे वयमनयंसलिलायते प्रक्षिप्ताः पुनरन्मद्गृह्याम इति । इदानीं प्रासादेषु उष्यते, अन्तःपुरदीपिकासु रमायते, प्रकृति-मधुरसुकुमाराणि मोदकषाद्यानि साद्यन्त इति अनप्सरस्तायात उत्तरकुट्टयासो मयानुभूयते । एकः रात्रु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे, यथा यातशोणितमभित इव यतंत इति पश्यामि । भो: मुहं नामप-परिभूतमकल्पयते च ।]

संस्कृत टीका—भोः—सम्बोधनात्मकमव्ययमिदम्, दिष्ट्या—माग्येन तत्र-
भवतः—माननीयस्य, वत्सराजस्य—वत्सदेशाधिपतेः उदयनस्येति यावत्, अमि-
विवाहमङ्गलरमणीयः—अमिप्रेतम् अमीप्सितम् यद् विवाहमङ्गलम् परिणयोत्स-
तेन रमणीयः आह्लादकरः, कालः—समयः, दृष्टः—प्रवलोकितः अस्माभिरिति
शेषः । को नाम एतत् जानाति—कः इदम् चिन्तितवान् न कोऽपीत्ययं, इति—
तत्, तादृशे—तथाविधे भयानके, अनपेक्षितवर्ते—अनर्थः राज्यापहरणादि-
लक्षण महत्कष्ट तद्रूपो यः सलिलावर्तः जलभ्रमिः तस्मिन्, प्रक्षिप्ताः—निपातिताः,
वयम्—उदयनसहिताः सर्वे राजाश्रिता जनाः, पुनः—भूयः, उन्मदश्यामः—
उन्मग्नाः भविष्यामः ततो बहिर्भविष्यामः इति यावत् । इदानीम्—सम्प्रति,
प्रासादेषु—राजमन्दिरेषु, उष्यते—निवातः क्रियते, भन्तःपुरदीधिकासु—भन्तः-
पुरस्य शुद्धान्तस्य दीधिकानु वापीषु, स्नायते—स्नानं क्रियते, प्रकृतिमधुर-
सुकुमाराणि—प्रकृत्वा स्वभावेन मधुराणि मिष्टानि च तानि सुकुमाराणि
कोमलानि, मोदकखाद्यानि—मोदकाः सङ्कुकाः तद्रूपाणि खाद्यानि भोज्यपदार्थाः,
खाद्यन्ते—भक्ष्यन्ते, इति, अस्मात् कारणात्, भ्रन्तस्संवासः—नास्ति भ्रन्तस्सं-
स्वगवेश्यानां संवासः सहवासः यस्मिन् तथाविधः, उत्तरकुरुवासः—उत्तराः कुरवो
नाम देवभूमयः तत्र वासः निवासः, मया—विदूषकेण, भ्रन्तभूयते—उपभूयते ।
एकः—एकतः, सलु—मिश्रयेन, महान्—विशालः, दोषः—विकारः (यत्) ।
मम आहारः—भोजनम्, मुष्टु—सम्पत्, न—नहि, परिणमति—परिवर्तति,
सुप्रच्छदनाया—शोभनास्तरणयुक्ताया, शय्यायाम्—शयनीये, निद्रां—स्वापं, न
समे—न प्राप्नोमि, यथा—येन हेतुना, वातशोणितम्—वातरक्तनामा रोगः,
अमित इय—अम्पूर्णशरीरस्थितिमिव, वर्तते—विद्यते, इति—एवम्, पश्यामि—
जानामि । आमयपरिभूतम्—आमयेन व्याधिना परिभूतम् आक्रान्तम्, (तथा)
अकल्पवर्तम्—नास्ति कल्पवर्तः प्रातर्भोजनम् यस्मिन् तत् तथामृतं मुखं, न—
नहि मुखं वक्तुं शक्यते इति यावत् । (अयं भावः—पद्यावस्था सह उदयनस्य
विवाहे जाते सन्मुहद् विदूषकः भ्रान्तोत्सारा प्रकटयन् कथयति—सोमाग्येन राज्ञः
उदयनस्य विवाहोत्सवस्य शुभसमयः अस्माभिः साक्षात्कृतः । मानयसादेव
वयं राज्यापहरणवासावदत्तादाहादिरूपात् जलावर्ताद् बहिरभवाम । इदानीमहम्
प्रासादेषु निवमामि, भन्तःपुरस्य वापीषु स्नानं करोमि, सुस्वाद्भू मोदकान्
खादामि । एतावता भन्तरा भ्रन्तस्संवासे सहवास साक्षात् स्वर्गसुखमहमनुभवामि ।
किन्तु एकः घत्र दोषो विद्यते यत् मम भोजनं मुष्टु न पचति । तेन कारणेन

सुकुमलायामपि शय्यायां मम निद्रा न समायाति, प्रत्युत वातरक्त रोगः आक्रामति । हन्त ! रोगाक्रान्तस्य प्रातराशवञ्चितस्य च कुतः सुखम् ?) ।

(तदनन्तर विदूषक का प्रवेश ।) विदूषक—(हर्षपूर्वक), भजी ! माय्य से हमने वत्सराज उदयन के मनचाहे विवाहोत्सव का आनन्दमय समय देख लिया । आह ! किसको मालूम था कि वैसे अनर्थ (राज्यापहरण और वासवदत्तामरण) रूपी जन के भँवर में डाले हुए हम लोग उससे निकल आएंगे । इस समय तो मैं राजमहल में रहता हूँ, रनवास की बावलियों में नहाता हूँ और स्वभावतः मधुर तथा मुलायम लड्डू आदि पदार्थों को खाता हूँ । इस तरह मैं (केवल) अप्सराओं के सहवास से रहित स्वर्ग का सुख लूट रहा हूँ । हाँ, एक बड़ा भारी दोष है कि मुझे खाना ठीक से हजम नहीं होता, (जिस कारण) अच्छे बिछोने वाली शय्या पर भी नीद नहीं आती । मालूम पड़ता है कि वातरक्त के रोग से मैं बिल्कुल आक्रान्त हो गया हूँ । भजी ! वह सुख सुख नहीं माना जाता, जो रोग से आक्रान्त हो और जिसमें कलेवा न मिले ।

(Enter Vidushaka) Vidushaka:—(joyfully) oh, fortunately the happy days of the desired auspicious marriage of his honour, the king of Vatsas are seen. (i. e. have arrived) Oh who knew that after being thrown into that whirlpool of the water of calamity, we could have risen up again ? Now we can live in palaces, can bathe in the oblong wells of the harem and eat eatables like sweetmeat naturally tasteful and delicious; thus I am enjoying our stay in Uttara Kuru country except for the company of Apsarases. There is (however) one great defect. My food does not get properly digested. I do not get sleep on a bed with a fine coverlet. I see acute gout on all sides, as it were, oh, there can be no pleasure in bad health without a morning meal (or breakfast).

टिप्पणी—(१) विदूषकः—यह हास्यप्रिय पात्र होता है । अपने हाव-माय कार्य और व्यवहार आदि ने दर्शकों को हँसाता है । इसका सङ्गण है—'कुसुमवसन्ताद्यभिषः (कर्मवपुर्वेपमापाद्यः । हास्यकरः कसहरतिविदूषकः स्यात् स्वकर्मजः ।। (सा० दर्पण ३-४२) । 'विदूषाङ्गवयोर्वेपहास्यकारी विदूषकः ।' (मुष्काकर) (२) अभिप्रेतविवाहमंगलरमणीयः—मनचाहे विवाह के कारण रमणीय । अभिप्रेत विवाहमङ्गलं (कर्मधारय) तेन रमणीयः तू० तत्पु० । अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए यह विवाह अभिप्रेत था । (३) जानाति—यह'

भूतकाल के अर्थ में लट् लकार हुआ है । (४) आवर्त—पानी का भँवर । 'स्वादावर्तोऽम्मसां भ्रमः' इत्यमरः । (५) अनन्यसलिलावर्त—अनन्यरूपी जल के भँवर में । सलिलस्य आवर्तः (प० तत्पु०) अनन्य एव सलिलावर्तः तस्मिन् । (मग्नूरव्यसकादित्यात् रूपक समासः) । (६) प्रलिप्ताः—फोंके हुए । प्र+लिप्+वत (त) । (७) उग्नद्विष्यामः—इसमें 'अनवक्लृप्यमर्पयोरकिवृत्तेऽपि' इस सूत्र से भ्रमभावना के अर्थ में लट् लकार हुआ है । उद्+भस्ज्+लृट् । यहाँ लृट् लकार का प्रयोग भ्रमभावना के अर्थ में हुआ है । उ० पु० बहु० व० । (८) प्रासादेषु—राजमहलों में । 'हर्म्यादि धनिना वासः प्रासादो देवभूम्याम्' इत्यमरः । (९) उष्यते—निवास करता है । वस् निवासे धातु से कर्म में लट् लकार, यक् और कित्वात् सम्प्रसारण करने पर इसकी सिद्धि होती है । (१०) दीर्घिकासु बावलिषी मे । 'वापी तु दीर्घिका' इत्यदरः । (११) प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि—मधुराणि च तानि सुकुमाराणि विशेषणोभयपदकर्मधारय, प्रकृत्वा मधुरसुकुमाराणि तृतीया तत्पुरुष । (१२) मोदकेष्वानि—लड्डू आदि मिठाइयाँ । मोदकानि खाद्यानि । कर्मधारय । (१३) अप्सरस्संवासः—अप्सरसों से रहित निवास । अप्सरसां सवामः (प० तत्पु०) अविद्यमानः अप्सरस्संवासः यस्मिन् सः बहुव्रीहि । (१४) उत्तरकुववासः—उत्तरकु में रहना । उत्तरकु सुमेरु पर्वत के उत्तर में है, जो शाश्वत सौन्दर्य और आनन्द का स्थान माना जाता है । इसको देवभूमि कहते हैं, जहाँ समस्त सुखों की अधिकता है और अप्सरारों निवास करती हैं । कतिपय विद्वानों के मतानुसार उत्तरकु हिमालय प्रदेश के उत्तर में (काश्मीर) में अवस्थित है । (१५) परिणमति—परि+नम्+लट् ति प्र० पु० ए० व० । पचता है । (१६) सुप्रच्छदनायाम्—सुन्दर बिछोने वाली । प्रकर्षेण छजते आस्तीर्यते अनेन इति प्रच्छदनम्, प्र+छद्+ल्युट् (करणे)—अन । सु शोभनम् प्रच्छदनम् यस्याम्, सा सुप्रच्छदना, तस्याम् । (१७) वातशोणितम्—वात व्याधि, गठिया । वातेन संसक्तम् शोणितम् इति वातशोणितम्, मध्यमपदलोपी समास । (१८) सुखं नामयपरिभूतमकल्पवर्तं च—इसका भाव यह है कि रोग के बन्धोभूत होना और कलेवा न कर सकना सुख नहीं है; क्योंकि रोगी पीड़ा से कराहता रहता है । उसके बिहार और भोजन बंद हो जाते हैं । नीद नष्ट हो जाती है । अतएव इस अवस्था में सुख असंभव है । (१९) कल्पवर्त—कलेवा, सवरे का हलका भोजन ।

(ततः प्रविशति चेटी)—चेटी—काँहण खु गदो अग्र्यवसन्तप्रो ?

(परिक्रम्यावलोक्य) अहो ! एसो अय्यवसन्तओ । (उपगम्य)
अय्य ! वसन्तम ! को कालो, तुमं अण्णेसामि ! [कुत्र नु खलु गत
आर्यवसन्तकः ? अहो ! एय आर्यवसन्तकः । आर्य ! वसन्तक !
कः कालः, त्वामन्यिष्यामि ।]

(तदनन्तर दासी का प्रवेश) दासी—आर्यं वसन्तक कहाँ गए ? (धूमकर
घोर देखकर) घरे ! यही तो आर्य ! वसन्तक है । (समीर जाकर) वसन्तक
महोदय ! कल से मैं आपको ढूँढ़ रही हूँ ।

(Then enter a maid) Maid—(Turns about and looking)
where has the revered Vasantaka gone ? Oh ! here is revered
Vasantaka (Approaching) Oh ! revered Vasantaka how long
am I searching you ?

विदूषकः—(बुट्वा) किं निमित्तं भद्रे ! मं अण्णेससि ? [किं नि-
मित्तं भद्रे ! मामन्यिष्यसि ?]

विदूषक—(देखकर) देवी ! क्यों मुझे ढूँढ़ रही हो ?

Vidushaka—(Looking) good girl why are you searching me ?

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अयि ह्णावो जामादुग्घो त्ति ।
[अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि म्नातो जामातेति ।]

दासी—हमारी मातकिन पूछनी है कि दुग्घा जो नहा चुके ।

Maid—Our queen asks if the bride-groom has bathed.

विदूषकः—किं निमित्तं भोदि ! पुच्छदि ! [किं निमित्तं भवति !
पुच्छति ?]

विदूषक—देवी ! किं निमित्तं पूछ रही हैं ?

Vidushaka—Why does her ladyship enquire ?

चेटी—विमण्णं [मुमणोयण्णं अण्णेमि त्ति । [किमण्णं । मुमनो-
यण्णं रुमान्णमोति ।]

विदूषक—महाराज स्नान कर चुके हैं। आप सब (चीजें) ले आइए सिवा भोजन के।

Vidushaka—The bath is finished. Let her Majesty bring anything she pleases, barring food.

चेटी—किंनिमित्तं चारेसि भोजनं ? [किंनिमित्तं चारयसि भोजनम् ?]

दासी—भोजन के लिए क्यों मना कर रहे हैं ?

Maid—Why do you bar food ?

विदूषकः—अधर्णस्य मम कोद्वलाणं अखिलपरिवट्टो विभ्र कुक्षि-परिवट्टो संवृत्तो । [अधर्णस्य मम कोद्वलाणामखिलपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः ।]

विदूषक—मुझ अभाग के पेट में ऐसा उलट-फेर हो गया है जैसा कि कोयल की आँख में हुमा करता है।

Vidushaka—Wretched that I am, there is a twisting in my inwards like the surviving of a thousand cuckoo's eye.

चेटी—ईदिसो एव्व होहि । [ईदृश एव भव ।]

दासी—आप ऐसे ही हों।

Maid—Ever be it thus with you.

विदूषकः—गच्छदु भोदी ! जाव अहं वित्तहोदी सभ्रासं गच्छामि । [गच्छतु भंवती । यावदहमपि तत्र भवतः सकाशं गच्छामि ।] (निष्क्रान्तौ) (प्रवेशकः)

विदूषक—तुम जाओ। अब मैं भी महाराज के पास जाता हूँ। (दोनों का प्रस्थान)।

Vidushaka—You may go madam, In the meantime I shall also go to his honour. (Both retire) (End of interlude)

टिप्पणी—(१) वसन्तक—यह उदयन के मित्र विदूषक का नाम है। (२) किंनिमित्तम्—यह क्रियाविशेषण है। किंनिमित्तमस्यां क्रियायाम् इति किंनिमित्तम्। (३) भद्रे !—कल्याणी ! भद्र=कल्याण । इवःश्रेयस शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम् इत्यमरः । भद्रम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे भद्र+भव प्रशंसित्वात्, ततः स्त्रियां टाप्=तत्सम्बुद्धौ भद्रे इति । (४) अपि—यहाँ यह शब्द प्रश्नवाची अव्यय है। 'गर्हासमुच्चयप्रश्नशकासम्भावनास्वपि' इत्यमरः ।

(५) स्नातः—√स्ना+वत् (त) 'गत्यर्थाकिर्मक'—इत्यादिना सूत्रेण कर्तरि ।
 (६) सुमनोवर्णकम्—पुष्प या उपलक्षक मानने से पुष्पमाल्य तथा चन्दन या
 भगराग । सुमनसश्च वर्णकं च इत्यनयोः समाहारः सुमनोवर्णकम्, समाहारद्वन्द्वेन
 नपुंसकत्वम् एकत्वं च । 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पम्' इत्यमरः । (७) आनयामि—
 आङ्+नी+लट् उ० पु० ए० व० । यहाँ विध्यर्थ में लट् लकार हुआ है अर्थात्
 'आनयेयम्' की जगह इसका प्रयोग हुआ है । (८) अघन्यस्य मम कोकिला-
 नामक्षिपरिवर्तं इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः—भाव यह है कि 'जिस प्रकार कोयल
 की आँखें ऊपर-नीचे घूमती रहती हैं, उसी प्रकार मुझ अमागे का पेट घूम रहा
 है अर्थात् गड़गड़ा रहा है, जिससे मैं भोजन करने में असमर्थ हूँ । अतएव तुम
 भोजन न लाना ।' यद्यपि आँखें घूमती हैं कोए की, इसलिए शास्त्रों में 'काका-
 क्षिगोलकन्याय' प्रसिद्ध है किन्तु यहाँ विदूषक ने भ्रम से कोए की जगह कोयल
 का नाम ले लिया है, ऐसा कह सकते हैं । अदणोः परिवर्तः अक्षिपरिवर्तः । परि
 √वत्+घञ् (प्र) । भवती—√भा+इवतु—ङीप् ।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आरवन्तिकावेपधारिणी वासव-
 दत्ता च)

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आभ्रदा ? [किण्णिमित्तं
 भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

(तदनन्तर परिजन समेत पद्मावती और मालव-निवासिनी के वेप में
 वासवदत्ता का प्रवेश ।)

दासी—राजकुमारी जी आनन्दबाग में किसलिए आई हैं ?

(Then enter with retinue Padmavati and vasavadatta in
 the garb of Avantika.)

Maid—Why has the prince come to the lady's garden.

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुहाआणि पेक्खामि कुमुमि-
 दाणि या न वेत्ति । [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः
 पश्यामि कुमुमिता या न वेत्ति ।]

पद्मावती—मजी ! मैं अभी देख रही हूँ कि हरतिगार के वे गुच्छे फूले हैं
 या नहीं ।

Padmavati—Oh ! I have just come to see if the shephalika
 plants have blossomed.

चेटी—भट्टिदारिए! ताणि कुसुमिदाणि जाम, पवालन्तरिदेहि विप्र
मोत्तिआलम्बएहि आइवाणि कुसुमेहि [भट्टिदारिके! ते कुसुमिता
नाम, प्रवालान्तरितैरिव मोत्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।]

बासी—राजकुमारी जी ! वे तो फूल कर मूँगों से छिपी हुई मोती की
लड़ियों के समान पुष्पों से लद गये हैं ।

Maid—They have indeed blossomed. They are covered with
flowers like pearl-pendants interspersed with coral.

पद्मावती—हला! जदि इव्वं, किं दाणि विलम्बेसि? [हला ! यथेवं,
किमिदानीं विलम्बसे ?]

पद्मावती—सखी ! यदि ऐसा है तो फिर क्यों अब विलम्ब कर रही हो ?

Padmayati—Oh ! if it is so why are you delaying (to show
then to me.)

चेटी—तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तअं उपविस्तदु भट्टिदारिआ ।
जाव अहं वि कुसुमावचअं करेमि । [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके
मुहुत्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करेमि ।]

दागी—तो कुछ देर इस शिला-खड पर आप बैठ जायें । तब तक मैं भी
फूलों को बटोर लेती हूँ ।

Maid—Then may the princess take a seat on the stone chair
until I myself gather flowers.

पद्मावती अय्ये ! किं एत्थ उपविस्तामो? [आर्ये ! किन्नरोपविशोवः ?]

पद्मावती—आर्ये ! क्या हम दोनों यहाँ बैठें ।

Padmayati—Revered lady I should we both sit here ?

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।] उभौ उपविशतः)

वासवदत्ता—ऐसा ही हो (दोनों बैठ जाती हैं) ।

Vasava.—Be it so (Both sit)

टिप्पणी—(१) शेफालिकागुल्मका—हरसिगार के पीये । शेफालिकाख्याः

गुल्मकाः अथवा शेफालिकाया गुल्मकाः इति शेफालिकागुल्मकाः । गुल्मा एव
गुल्मकाः, स्वार्थे कः । गेड की जड़ से लेकर शाखा तक का भाग प्रकाण्ड (तना)
कहलाता है और बिना तने का पीया जिसमें जड़ से ही कई शाखायें निकलती हैं

हैं गुल्म कहलाता है। अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरोः । 'अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मो' इत्यमरः । (२) कुसुमिता—पुष्पित, खिले हुए । कुसुमानि सञ्जातानि येषां तादृशाः, कुसुम+इतच् 'तदस्य सञ्जातम्' इति सूत्रेण । (३) इति—इसको 'पश्यामि' क्रियापद से पूर्व जोड़ना चाहिए, ताकि पूर्व वाक्य 'पश्यामि' का कर्म धन जाय । (४) नाम—यह अव्यय यहाँ निश्चायक है । (५) प्रवालान्तरितः—मूर्तों से ढके हुए या खचित । प्रवालः अन्तरितानि इति प्रवालान्तरितानि, तैः । (६) मौक्तिकलम्बकः—मुक्ता एव मौक्तिकानि, तेषां लम्बकानि=ललनिकाः, तैः । लम्बक—नाभिपर्यन्त लटकने वाला सामान्य हार । (७) आचिताः—आप्त, परिपूर्ण । आङ्+चि+क्त (त) । कर्मणि (८) शिलापट्टके—बैठने के लिये शिला-खड, पत्थर की चौकी । (९) मुहूर्तकम्—क्षणमात्र ।

चेतो—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहि विअ सेहालिआकुसुमेहि पूरिअ मे अंजलि । [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका । अद्धमणसिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमेः पूरितं मेऽञ्जलिम् ।]

दासी—(वंसा करके) राजकुमारी जी ! देखिये, देखिये ! मैनशिल के समान (अरुण) मूल प्राग वाले हरसिगार के पुष्पों में मेरी अञ्जलि भर गई ।

Maid—(Doing so) Look, look my lady, both my hands are filled with scarlet blossoms of Shephalika lika flakes of natural vermillion.

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो ! विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या । [अहो ! विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यत्वार्या ।]

पद्मावती——प्रहा ! कैसे रङ्गविरगे फूल हैं । देवी जी देखिये ।

Padmavati—Oh what delicious flowers look, lady, look.

वासवदत्ता—अहो दस्सणीअदा कुसुमाणं [अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

वासवदत्ता—प्रहा ! फूलों की सुन्दरता कैसी है ।

Vasava.—How lovely.

चेतो—भट्टिदारिए ! कि भूयो अवइणुस्सं ? [भर्तृदारिके ! कि भूयोऽवचेत्थामि ?]

दासी—राजकुमारी जी ! क्या और चुना जाय ?

Maid—Princess, shall I gather more ?

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

पद्मावती—सखी ! न, न, अब मत चुनो ।

Padmavati—No, no, gather no more.

वासवदत्ता—हला ! किणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किन्निमित्तं वारयसि ?]

वासवदत्ता—सखी ! किसलिए मना कर रही हो ?

Vasava.—Friend, why do you stop her ?

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धि पेक्खिअ सम्मानिदा भवेअं । [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धि दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

पद्मावती—यदि आर्यपुत्र यहाँ आकर फूलों की यह बहार देखेंगे तो मेरा सम्मान होगा ।

Padmavati—Because I hope my lord will honour me by visiting this grove, and seeing all its wealth of blossom.

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता । [हला ! प्रियस्ते भर्ता ।]

वासवदत्ता—सखी ! तुम्हें स्वामी प्रिय हैं ।

Vasava.—Do you love your lord ?

पद्मावती—अय्ये ! ण जानामि, [अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि । [आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

पद्मावती—आर्ये ! यह तो मैं नहीं जानती, पर उनसे अलग होने पर व्याकुल हो जाती हूँ ।

Padmavati—I do not know, and yet my heart full with longing for him when he is not near.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खरं खु अहं करेमि । इअं वि णाम एव्वं मन्तेदि । [दुष्करं खल्वहं करोमि । इयमपि नामेवं मन्त्रयते ।]

वासवदत्ता—(मन में) मैं बड़ा कठिन काम कर रही हूँ । यह भी ऐसा कह रही है ।

Vasava.—(aside) How great the burden that is laid on me, when even she already speaks like this.

चेटी—अभिजातं खलु भर्तृदारिद्र्या मन्त्रितं—प्रियो मे भर्तेति ।

[अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं—प्रियो मे भर्तेति ।]

दासी—कुलीनता के अनुरूप ही राजकुमारी ने कहा कि पतिदेव मुझे प्रिय हैं ।

Maid—Courteously indeed did the princess say “I love the lord.”

पद्मावती—एकको खलु मे सन्देहो । [एकः खलु मे सन्देहः ।]

पद्मावती—मुझे एक सन्देह है ।

Padmavati—Only one thing I suspect.

वासवदत्ता—किं किं ? [किं किम् ?]

वासवदत्ता—क्या क्या ?

Vasava.—What, what is it ?

पद्मावती—जहं मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति ?

[यथा ममार्थपुत्रस्तथैवार्थाया वासवदत्ताया इति ।]

पद्मावती—आयेपुत्र जैसे मेरे प्रिय हैं उसी तरह आपां वासवदत्ता के भी (थे क्या) ?

Padmavati—That the lord belongs to me (i.e. loves me) only equally with Vasavadatta.

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं । [अतोऽप्यधिकम् ।]

वासवदत्ता—इससे भी अधिक ।

Vasava.—Even more than that.

पद्मावती—कहं तुवं जानासि ? [कथं त्वं जानासि ?]

पद्मावती—कैसे तुम जानती हो ?

Padmavati—How do you know ?

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अप्यउत्तपक्खवावेण अदिक्कन्दो समुदारो । एव्वं दाव भणिस्सं । (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सज्जणं ण परित्तजदि । [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिव्रान्तः

समुदाचारः एवं तावद् भणिष्यामि । यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजनं
न परित्यजति ।]

वासवदत्ता—(मन में) उहे ! आर्यपुत्र के पक्षपात से मैंने शिष्टाचार का
उल्लंघन कर दिया । अच्छा तो इस प्रकार कहूँ । (प्रकट) यदि (वासवदत्ता
का) प्रेम थोड़ा होता तो वह अपने परिवार को नहीं छोड़ती ।

Vasava.—(To herself) Through my love towards the lord
due limits have been overstepped. I shall thus say now (loudly).
If her love was less, she would not leave her own people.

पद्मावती—होदवं [भवितव्यम् ।]

पद्मावती—हो सकता है ।

Padmavati—May be.

चेटी—भट्टिदारिण ! साहु भट्टारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खि-
स्मामि त्ति [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण—अहमपि वीणां
शिक्षिष्य इति ।]

दासी—राजकुमारी जी ! आप पतिदेव से अच्छी तरह कहें कि मैं भी
वीणा सीखूँगी ।

Maid—Princess, well tell the lord. "I too shall learn (to
play on the flute).

पद्मावती—उत्तो नये अय्यउत्तो [उवतो मयायंपुत्रः ।]

पद्मावती—मैंने तो आर्यपुत्र से कहा था ।

Padmavati—I have told my lord.

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं ? [ततः किं भणितम् ?]

वासवदत्ता—तब (उन्होंने) क्या कहा ?

Vasava.—Then what did he say ?

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुह्णीओ संवत्तो ।

[अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।]

पद्मावती—बिना कुछ कहे ही लम्बी साँस लेकर चुप हो गये ।

Padmavati—He said no word, but, sighing deeply, stood
silent.

वासवदत्ता—तदो तुवं विअ तवकेसि ? [ततस्त्वं किमिय तर्कयसि ?]

वासवदत्ता—तो इससे तुम्हारा क्या अनुमान है ?

Vasava.—And what do you derive from this ?

पद्मावती—तवकेमि श्रय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिम्न दक्षिण-
पादाए मम अगदो ण रोदिदि त्ति । [तर्क्याभ्यार्याया वासव-
वत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

पद्मावती—मेरा अनुमान है कि आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण
करके उदारता के कारण मेरे सामने नहीं रोए ।

Padmavati—I inferred that remembering the virtues of the
revered Vasavadatta, he did not weep before me through courtesy.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धण्णा खु ह्ति, जदि एव्वं सच्चं भवे ।
[धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

वासवदत्ता (मन मे) यदि यह गत्य है, मैं कृतार्थ हो गई ।

Vasava.—(To herself) happy indeed am I, if this be true.

टिप्पणी—(१) तथा कृत्वा—फूलों को चुनकर भयया फूलों से अञ्जलि
मन् कर । (२) अर्धमनश्शिलापट्टकः—जिनके छाये भाग मैनसिल के टुकड़ों
के समान लात रङ्ग के हैं । (३) मनश्शिला—पर्वत में उत्पन्न होने वाली एक
लात रङ्ग की धातु, मैनसिल । 'धातुमनः शिलाद्यदेः' इत्यमरः । अर्धम्=एकदेशः
मनश्शिलापट्टो येषां, तैः । मनःशब्दवाच्या शिला मनश्शिला मध्यमपदलोपी
समास । मनश्शिलायाः पट्टः पट्टी तत्पुरुष । (४) विचित्रता—अनेकरूपता ।
प्रायः सभी फूल एक रंग के होते हैं, किन्तु गोफाभिका सातिमा तथा श्वेतना में
दृक्न होने के कारण विचित्र या विस्मयकारक है । (५) दर्शनीयता—गुन्दरता ।
दृग्+घनीयर् कर्मणि दर्शनीयः तस्य भार्यः दर्शनीयता दर्शनीय+तत् ।
(६) अवचेष्ट्यामि-चुनूं । यहाँ विध्यर्थ में मूट् लकार हुआ है । अव+चि+मूट्
(स्थासि) उ० पु० ए० व० । (७) मा मा—यह द्विरुच्चारण नियम की दृढ़ता के
लिए किया गया है । (८) अवचित्प—यहाँ 'मा' के योग में क्त्वा प्रत्यय आगमि-
नीय है, किन्तु 'निरङ्कुशा क्ययः' मान कर क्ययित् ममाधान किया जा सकता
है । अव+चि+त्यप्+मोक्षि 'घतस्तत्त्वोः प्रतिषेधयोः प्राप्ता क्त्वा' अर्थात् निषेधावयव
घतन् और तत्त्व के योग में 'क्त्वा' का विधान होता है 'मा' के नाश नहीं ।
(९) अप्यउत्तो—(धायंतुतः)—यह पाठ असुद्ध है । इसकी जगह 'अप्यउत्तेन'
(धायंतुतेन)—ऐसा पाठ होना चाहिए । इस वाक्य का भावार्थ यह है कि मेरे

प्रिय पति यहाँ आकर और इन फूलों की बहार देखकर बहुत प्रसन्न होंगे और पुष्पों की सुगंध बढ़ाने में मरी सुखि जानकर मेरा सम्मान करेंगे । (१०) उत्कण्ठिता—अधीर । उत्कण्ठा जाता अस्याः इति विग्रहे उत्कण्ठा+इत्+टाप् (प्र) । (११) दुष्करम्—कठिन । दुःखेन कर्तुं शक्यम् दुस्+कृ खल् 'इषद्दुःसुप-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् (अ) । इत्यनेन । (१२) यया भग्न—वासवदत्तायाः इति—नवोढा पत्नी पद्मावती का अपने प्रगाढ़ पतिप्रेम की समानता अपनी पूर्व सपत्नी वासवदत्ता से करना स्वामाविक ही है । (१३) हम्—यह अव्यय शंका, वितर्क और अनुशाप का सूचक है । (१४) आर्यपुत्रपक्षपातेन—पक्ष पातः पक्षपातः सप्तमी तत्पुरुष, आर्यपुत्रस्य पक्षपातः, पृष्ठी तत्पुरुष, तेन इति हेतु तृतीया । (१५) परिस्पृजति—यहाँ सम्मानना के अर्थ में लट् लकार हुआ है । (१६) भवितव्यम्—भू+तव्यत् । यहाँ हेतु में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है । 'दाक्षिण्यतया' पाठ भी मिलता है । दक्षिण एव दाक्षिण्यः स्वार्थे ण्यत् । उदात्ता के कारण अथवा 'दक्षिण' नायक होने के कारण सभी पत्नियों से समान प्रेम करता है । (१७) अभिनिष्ठा—यहाँ नञ् समाप्त है । इसलिए 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वा ल्यप्' सूत्र से क्त्वा को ल्यप् भादेश नहीं हुआ । (१८) नृणीकः—मौन । (१९) वक्षिणतया—उदात्ता या विदग्धता के कारण । (२०) रोदिति—यहाँ भूत के अर्थ में लट् लकार हुआ है ।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

विदूषकः—हो ! हो ! 'पचिमपडिग्रबन्धुजीवकुसुमविरलवाटरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं । [हो ! हो ! प्रचितपतितबन्धुजीव-कुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

संस्कृत टीका—हो हो—मानन्दसूचकमन्यमिदम्, प्रचितपतितबन्धुजीव-कुसुमविरलपातरमणीयम्—प्रचितानि अवचितानि पतितानि च वृन्ततः स्वयं भ्रष्टानि च यानि बन्धुजीवकुसुमानि बन्धुकपुष्पाणि तेषां विरलेन स्वल्पेन इतस्तत इति यावत् पातेन पतनेन रमणीयम् आकर्षकम्, प्रमदवनम्—क्रीडोद्यानम् (अस्ति) । इतः—अस्मात् प्रदेशात्, तावत्—इति वाक्यान्तद्वारे, भवान्—महाराजः, भागच्छतु इति शेषः ।

१. पाठान्तर—नवविषद्विम् (नवविषद्वित) विरलतंताप पाठ अधिक उगृक्ष प्रतीत होता है, नवानि विषद्वितानि बन्धुजीवकुसुमानि ।

(तदनन्तर राजा और विदूषक का प्रवेश ।) विदूषक—प्रहाहा ! कुछ चुन लिये गये, कुछ बिल्लरे पड़े हुए और कुछ गिरते हुए दुपहरिया के फूलों से आनन्द वाग सुशोभित हो रहा है । आप इधर से चले ।

(Enter king and Vidushaka) Vidushaka—Aha, How lovely is this pleasure grove in which the intermittent breeze has stiuml. A crimson carpet of Bandhuka Blossoms. This way, sir.

टिप्पणी—(१) प्रचितपतित --प्रचितानि च तानि पतितानि प्रचितपतितानि विशेषणोभयपद कर्मधारय समास खञ्जकुञ्जवत् । प्रचितपतितानि च बन्धुजीवकुसुमानि कर्मधारय समास । (२) बन्धुजीवकुसुमानि—दुपहरिया के फूल । 'रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः' इत्यमरः ।

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अयमहमागच्छामि ।

राजा—मित्र वसन्तक ! यह मैं आ रहा हूँ ।

King—Friend, Vasantaka. I too am coming.

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरभवन्तिराजतनयां पञ्चैपवः पातिताः ।

तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं

पञ्चैपुर्मदनो यदा कथमयं पृष्ठः शरः पातितः ॥१॥

अन्वय—तदा उज्जयिनी गते, भवन्तिराजतनया स्वैरं दृष्ट्वा काम् अपि अवस्थां गते मयि कामेन पञ्च इपवः पातिताः । तैः अद्य अपि (मम) हृदयम् सशल्यम् एव । वयं भूयः च विद्धाः । यदा मदनः पञ्चैपुः (तदा तेन) अय पृष्ठः शरः कथं पातितः ॥१॥

संस्कृत टीका—तदा—तस्मिन् समये, उज्जयिनीं—प्रद्योतराजधानी, गते—प्रयाते, भवन्तिराजतनया—वासवदत्ता, स्वैरं—यथाकामं, दृष्ट्वा—भवलोक्ष्य, काम् अपि—अनिर्वचनीयाम्, भव्यया—दत्ता, गते—प्राप्ते, मयि—उदयने कामेन—मदनेन, पञ्च—एतत्संख्याकाः, इपवः—वाणाः, पातिताः—प्रक्षिप्ताः । तैः—वाणैः, अद्य अपि—अद्युना अपि, (मम) हृदयं—चेतः, सशल्यम् एव—कीलितम् एव (विद्यते) । वयम्—महम्, भूयः—पुनः, च—अपि, विद्धाः—आह्वाताः । यदा—यदि । मदनः—कामदेव, पञ्चैपुः—पञ्चवाणः (अस्ति तदा तेन), अयम्—एषः, पृष्ठः—एतत्संख्याकः, शरः—वाणः, कथं—कृतः, पातितः—प्रक्षिप्तः ? ॥१॥

अयं भावः—राजा विदूषकं कथयति—मित्र ! यदाऽहम् उज्जयिनीं गत्वा साक्षाद् रतिमिव वासवदत्तां दृष्ट्वा मोहमुपगतः तदा कन्दर्पेण स्वीयाः पञ्चापि बाणाः मयि निपातिताः । परमाश्चर्यं मत् इदानीं पद्मावतीमुद्दिश्य कामेन पुनरप्यहं विद्वोऽस्मि ! यदि कामः पञ्चैषुः उच्यते तदा पञ्चानामपि बाणानां निपातनानन्तरं पष्ठः बाणः तेन कुत आनीतः ?

अनुवाद—उक्त समय उज्जैन जाने पर मालवराजकुमारी को इच्छानुसार देखकर किसी विचित्र अवस्था को प्राप्त हुए मुझपर कामदेव ने पाँचों बाण गिरा दिये थे । उनसे अब भी मेरा हृदय पीड़ित ही है । फिर भी हम बंध दिये गये हैं । जब कामदेव के पाँच ही बाण हैं तो यह छठा बाण उसने कहाँ से फँका ॥१॥

The God of love shot all his arrows at me, when in Ujjain I felt his utmost power. Gazing upon the eyes of that fair maid, my heart is still entertaining those shafts. We are again smitten, when Madan has five arrows only, how, could this sixth (arrow) be discharged.

टिप्पणी—(१) कामेन—पातिताः क्रिया के साथ संबंध, 'अनुक्ते कर्तरि तृतीया' से तृतीया हुई है । (२) स्वरम्—इच्छानुसार, अव्यय 'स्वादीरेरिणोः' सूत्र में वृद्धि हुई है । (३) सशल्यम्—शल्यः सह वर्तमानम् इति सशल्यम् । (तुल्ययोगे बहुव्रीहिः ।) (४) ययम्—यहाँ अस्मदो द्वयोश्च' सूत्र से बहुवचन हुआ । (५) विद्राः—बंध दिये गये । √व्यध् + क्त 'ग्रहिण्याविव्यधि' इत्यादि-सूत्रेण सम्प्रसारणम् । (६) पञ्चैषुः—कामदेव । पञ्च इषवः=बाणाः यस्य स पञ्चैषुः बहुव्रीहि समास । कामदेव के पाँच बाण माने गये हैं । जैसे—प्ररविन्दम-शोक च चूतं च नवमस्तिका । नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥' 'उन्मादस्तापनश्च शोषणः स्तम्भनस्ततया । सम्मोहनश्च कामस्य पञ्च बाणाः प्रकीर्त्ताः ॥' (७) पष्ठः—छठा । पष्ठा पूरणः इति विग्रहे पृथक्छात् षट् प्रत्यये कृते 'पठ्कतिरुतिरयक्तुरां यूक्' इति सूत्रेण घुगगमः । यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है । तत्तद्यण यत्तत्तनाकरे—गूयार्श्वैर्मंसजैस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥१॥

विदूषकः—कहि णु रा गदा तत्तहोवो पदुमावदो, लदामण्डयं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्यचम्मायगुण्ठिदं विग्र पव्यदतिलग्रं णाम तिलापट्टमं गदा भवे, आरु अघिग्रकटुअगन्धसत्तच्छदवणं पयिट्ठा भवे, अहव आतिहिदमिअपरितसंकुलं दारपव्यदमं गदा भवे । [ऊर्ध्वमवलोक्य] हो हो सरसकालणिम्मले अन्तरिक्षे पसारि-

अबलदेवबाहुदंशगीअं सासरसपन्तिं जाव सामाहिदं गच्छन्तिं पेखलदु
दाव भवं । [कुत्र नु खलु गता तत्रभवती पद्मावती, लतामण्डपं
गता भवेत्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माविगुण्ठितमिव
पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत् अथवा अधिककटुकगन्ध-
सप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं
दारुपर्वतकं गता भवेत् । ही ! ही ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे
प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् गच्छन्तीं पश्यतु
तावद् भवान् ।]

संस्कृत टीका—तत्रभवती—माननीया, पद्मावती—मगधे शनन्दिनी, कुत्र नु खलु
गता—कब प्रस्थिता भवेत्, उताहो—अथवा, असनकुसुमसञ्चितम्—असनानां
सर्जकवृक्षाणां कुसुमं पुष्पैः सञ्चितम् आच्छन्नम्, (अतएव) व्याघ्रचर्माविगुण्ठितमिव
व्याघ्रचर्माच्छादितमिव, पर्वततिलक नाम—एतन्नामक, शिलापट्टकं—शिलाखण्डं,
गता—प्रयाता, भवेत् अथवा—आहोस्वित्, अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवन—अधिक-
कटुकः अतितीक्ष्णः गन्धः आमोदः येषां तादृशानां सप्तच्छदानां सप्तवर्णवृक्षानां
वनम् धरण्याम् तद्बहुलप्रदेशमिति यावत्, प्रविष्टा—गता, भवेत्, अथवा, आलिखित-
मृगपक्षिसङ्कुलम्—आलिखितैः चित्रितैः मृगपक्षिभिः पशुपक्षिभिः सङ्कुलं व्याप्तम्,
दारुपर्वतकं काष्ठनिर्मितं क्रोडापर्वतं, गता—प्रयाता, भवेत् । ही ही—विस्मयप्रसन्नता-
सूचकमव्ययमिदम्, शरत्कालनिर्मले—शरत्कालेन शरदृतुना निर्मले स्वच्छे,
अन्तरिक्षे—आकाशे, प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीया—प्रसारितो विस्तारितो
बलदेवस्य बलरामस्य बाहुं भुजीतो इव दर्शनीयां मनोहरा, सारसपङ्क्तिं सारसा-
नाम् एतन्नामकपक्षिणां पङ्क्तिं येषां, समाहित—आवधानं सम्यक् रूपेण शृङ्खलित
यथा स्यात् तथा, गच्छन्ती—व्रजन्ती, पश्यतु—प्रवलोकयतु, भवान्—महाराजः ।

विदूषक—माननीय पद्मावती जी कहीं चली गई ? (गायद) कुज में गई
हो । अथवा भ्रमन वृक्ष के फूलों से ढँक जान के कारण बाघ की शाल में मड़े
हुए की भाँति (दीलने वाले) पर्वततिलक नामक शिलाखट्ट पर गई हो ।
अथवा बहुत बड़वी गध वाले अतिवन के वन में गई हो । अथवा लकड़ी के
बने कृत्रिम पहाड़ पर, जहाँ बहुत-से पशु-पक्षियों के चित्र खुदे हुए हैं, गई होंगी ।
(ऊपर ताककर) प्रहाहा ! शरद् ऋतु के कारण निर्मल आकाश में फैलाई हुई

बलदेव जी की मुजाओं के समान कमनीय सारस पक्षियों की कतार को, जो निश्चिन्त रूप से उड़ रही है, आप देखें।

Vidushaka—Where indeed has her ladyship Padmavati gone ? She might have gone to the bower of creepers, or it might be that she has gone to the stone chair called "Parvat tilaka" covered with tiger's skin, as it were, on account of its being heaped with the flowers of the Asanu tree (or the Pitasala tree); or she might have entered the saptachhada woods with greater pungent odour, or she might have gone to the Daruparvataka crowded with birds and beasts drawn in a picture. (Looking up) Hi, Hi, in the meantime Your honour may see the group of cranes going calmly in the clear autumnal sky as beautiful to look at as the arm of propitiated Baldeva.

टिप्पणी—(१) उताहो—या, भयवा । 'आहो उताहो किमुत' इत्यमरः । असन० पीतशाल नामक वृक्ष । 'पीतसारके सज्जेकासनवन्धूकपुष्पप्रियकजीवकाः' इत्यमरः । (२) असनकुसुमसंचितम्—असनवृक्ष के फूलों से ढँके हुए । असनाना कुसुमैः संचितम् । (पल्लीगमितं तू० तत्पु०) । (३) व्याघ्रचर्मवगुण्ठितम्—व्याघ्रचर्म से आवृत । व्याघ्रचर्मणा अवगुण्ठितम् । तू० तत्पु० । (४) अधिककटुकः—अधिकं कटुकः इति अधिककटुकः सुप्सुपा समास । (५) अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनम्—बहुत कड़वी गन्धवाली सप्तच्छद का वन । अधिककटुकः गन्धः येषां (बहुव्रीहि) ते अधिककटुकगन्धाः तादृशाः सप्तच्छदाः (कर्मणा०) तेषां वनम् (प० तत्पु०) । (६) आलिलितमृगपक्षिसंकुलम्—मृगारथ पक्षिणश्च मृगपक्षिणः । (द० स०) आलिलिताश्च ते मृगपक्षिणः (कर्मणा०) तैः संकुलम् (तू० तत्पु०) । चित्र मे लिखे हुए पशुपक्षियों से युक्त । (७) दारुपर्वतकम्—दारुनिमित्तः पर्वतः दारुपर्वतः मध्यमपदलोपी समास, दारुपर्वत इव इति दारुपर्वतकः 'इवे प्रतिवृत्तौ' इत्यनेन कन् प्रत्ययः, तम् । (८) प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयाम्—बलदेव जी की फैली हुई मुजाओं के समान सुन्दर । प्रसारितौ बलदेवस्य बाहु तौ इव दर्शनीयाम् (कर्मणा०) । प्रसारित—प्र+सृ+णिष्+पठ (त) कर्मणि । (९) यावत्—तावत् ये दोनों शब्द वाक्य की लोभा बढ़ाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं । (१०) समाहितम्—निश्चिन्त रूप से । अत्र क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया ।

राजा—ययस्य ! पद्माम्येनाम्,

श्रुज्यायतां च विरतां च नतोन्नतां च
सप्तपिण्डाकुटितां च नियतनेपु ।

मर्त्तते ज्ञेयाश्चित्रशिलण्डिनः ॥' इत्यमरः । (५) निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य—
उतरती हुई केंचुली वाले साँप के पेट के समान । निर्मुच्यमानश्चासौ भुजगः
(वर्मघा०) तस्य उदरस् (प० तत्पु०) तदिव निर्मलम् तस्य । निर्मुच्यमान—
निर्+मुच्+शानच् (कर्मणि) । (६) विभज्यमानाम्—अलग की जाती हुई ।
वि+भज्+शानच् (कर्मणि) । इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में चार 'ध' से चार विशेषणों
का समुच्चय समझना चाहिए । 'सप्तपिवंशकुटिलाम्' और निर्मुच्यमानभुजगोदर-
निर्मलस्य' इन दोनों जगह उपमा अलंकार है 'सीमामिव' में उत्प्रेक्षा अलंकार
है । इस प्रकार उपमा और उत्प्रेक्षा से संसृष्ट स्वभावोक्ति अलंकार यहाँ
उत्पन्न होता है । यह वसन्ततिलका छन्द है । तत्त्वक्षण—ज्ञेया वसन्ततिलका
तमजा जगो मः ॥२॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टदारिका एवं कोकनदमालापण्डररमणीअं
सारसपन्ति जाव समाहितं गच्छन्ति । अम्मो ! भट्टा । [पश्यतु
पश्यतु भट्टदारिका एतां कोकनदमालापण्डररमणीयां सारसपङ्क्तिं
यावत् समाहितं गच्छन्तीम् । अम्मो ! भर्ता ।]

संस्कृत टीका—प्रेक्षताम्—पश्यतु, भट्टदारिका—राजकुमारी, एता—
पुरो दृश्यमानाम्, कोकनदमालापण्डररमणीया—कोकनदाना श्वेतकमलाना माला
पङ्क्तिः तद्वत् पाण्डरा श्वेता रमणीया मनोहरा च ताम्, सारसपङ्क्तिं—सारसप्रेणि,
समाहित—सङ्घटितरूपेण, गच्छन्तीम्—व्रजन्तीम् । अम्मो !—महो ! भर्ता—
पतिरपि, समुपागत इति शेषः ।

बासी—राजकुमारी जी ! देखिये, देखिये—यह श्वेत कमल की माला के
गमान उज्ज्वल एव मनोहर सारसों की पङ्क्ति (कैसी) निश्चितता से उड़ी
जा रही है । घरे ! स्वामी (यही हैं) ।

Maid—Look, just behold the line of cranes beautiful and
white like a garland of Kokanada lotuses calmly proceeding
oh ! the lord.

टिप्पणी—(१) पश्यतु पश्यतु—यह द्विवचन आदर भूवनार्थ है । (२)
कोकनदमालापण्डररमणीयाम्—श्वेत कमल की माला के समान उज्ज्वल एव
मनोहर । पाण्डरा च रमणीया च इति पाण्डररमणीया विशेषणोपपदसंघारण
मन्त्रम्, कोकनदमाला इव पाण्डररमणीया उपमित ममात् । यद्यपि 'रमणीयस
कोकनदम्' इति अमरकोश के प्रमाण से कोकनद लाज कमल की कहते हैं, किन्तु

यहाँ प्रसंगानुसार श्वेत कमल का अर्थ घट रहा है । पाण्डर—श्वेत 'विशदश्वेत-पाण्डराः' इत्यमरः । (१) समाहितम्—संघटित रूप से या सावधानी से या निश्चिन्तता से । यह क्रियाविशेषण है ।

पद्मावती—हं ! अय्यउत्तो अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि । ता इमं दाव माहवीलदामण्डपं पविशामो । [हम् ! आर्यपुत्रः । आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि । तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः ।]

संस्कृत टीका—हम्—मङ्कोचसूचकमव्ययमिदमत्र, आर्ये !—देवि ! तव—भवत्याः, कारणात्—हेतोः, आर्यपुत्रदर्शनं—पतिदेवस्य दर्शनं, परिहरामि त्यजामि । तत्—तस्मात् कारणात्, इमं—समीपस्थित, माधवीलतामण्डपम्—वामन्तीकुञ्जम्, प्रविशामः—प्रविश्य तिष्ठाम इत्यर्थः ।

अनुवाद—हैं ! आर्यपुत्र ! देवी ! तुम्हारे कारण मैं आर्यपुत्र का दर्शन छोड़ती हूँ । इसलिए अभी हम लोग इस माधवी-कुंज में चलें ।

Padmavati—it is my husband, venerable lady, on your account I shall avoid the sight of the prince. Then we enter this bower of Madhavi creepers.

वासवदत्ता—एवम् होदु । [एवं भवतु ।] (तथा कुर्वन्ति ।)

वासवदत्ता—ऐसा ही हो । (माधवी-कुंज में प्रवेश करती हैं)

Vasava.—Let it be so. (They go inside the harbour)

विदूषकः—तत्तहोदी पद्मावती इह आगच्छिष्य णिगदा भये । [तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।]

विदूषक—महारानी पद्मावती यहाँ आकर चली गई है ।

Vidushaka—It seems that her ladyship Padmavati has been here and has gone.

राजा—कथं भवान् जानाति ?

राजा—आप कैसे जानते हैं ?

King—How do you know ?

विदूषकः—इमानि अयइदकुमुमानि शेकालिआगुच्छआणि पेयएदु दाव भयं । [इमानपचितकुमुमान शेकालिरागुच्छवान् प्रेक्षतां तावद् भवान् ।]

संस्कृत टीका—इमान्—पुरो विद्यमानान्, अपचितकुसुमान्—अपचितानि
त्रोटितानि कुसुमानि पुष्पाणि येभ्यः तान्, शेफालिकागुच्छकान्—शेफालिका-
कुसुमस्तवकान्, भवान्—महाराजः, प्रेक्षतां—पश्यतु ।

अनुवाद—विदूषक—इन हर्षसमार के गुच्छों को तो देखिये, जिनके फूल
तोड़ लिये गये हैं ।

Vidushaka—Just see these shephalika plants from which the
blossoms have been gathered.

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य, वसन्तक !

राजा—अहो ! कैसे रंग-विरंगे फूल हैं, वसन्तक !

King—Oh, the variety of flowers, Vasantaka.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] वसन्तकसङ्क्षितेण अहं पुन जाणामि
उज्जइणीए वत्तामि स्ति । [वसन्तकसंकीर्तनेनाहं पुनर्जानामि
उज्जयिन्यां वर्त इति ।]

वासवदत्ता—(यन मे) वसन्तक का नाम लेने से तो मैं समझती हूँ कि मैं
पुनः उज्जैन में हूँ ।

Vasava.—(Aside) By the repetition of the name Vasantaka,
I think, I am again in Ujjain (as it were).

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे ।

राजा—वसन्तक ! इसी शिला-खण्ड पर बैठकर हम दोनों पद्मावती की
प्रतीक्षा करें ।

King—Vasantaka, sitting on this very stone we (two) shall
await Padmavati.

विदूषकः—भो ! तह । (उपविश्योत्थाय) हो ! हो ! शरत्काल-
तिथलो दुस्सहो आदयो । ता इमं दाव माहवोमण्डवं पविसामो ।
[भोस्तथा । हो ! हो ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः !
तदिमं तावन्माधवोमण्डपं प्रविशायः ।]

विदूषक—ओ ! अच्छा । (बैठते ही उठकर) हा हा ! शरद् ऋतु की
तीखी धूप सह्य नहीं जाती । इसलिए इस वासन्ती-कुज में चलें ।

Vidushaka—Yes, alright (sitting down and getting up)
Hi, hi the sunshine, hot in the autumnal season, is unbearable.
There we two shall enter the Madhavi bower.

राजा—बाढम्, गच्छाग्रतः ।

राजा—अच्छा, आगे चलो ।

King—Alright, Move on,

विदूषकः—एवम् होदु । [एवं भवतु ।] (उभौ परिक्रामतः ।)

विदूषकः—ऐसा ही हो । (दोनों का प्रस्थान)

Vidushaka—Let it be so. (Both turn round.)

पद्मावती—सत्त्वं आजलं कर्तुंकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणिं करेह्य ?

[सर्वमाकुलं कर्तुंकाम आर्यवसन्तकः । किमिदानीं कुर्मः ?]

पद्मावती—आर्यं यन्तकं नव चीगट करना चाहते हैं । अब क्या करें ?

Padmaravati—Revered Vasantaka wishes to upset everything, what may we do now ?

चेटी—भट्टिदारिए ! एवं मधुकरपरिणलीणं ओलंबलदं ओधूय भट्टारं

वारइस्सं । [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिणलीणामवलम्ब-

न्तामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।]

दासी—राजकुमारी ! भौरो मे लदी इस महारे की लता को हिला कर स्वामी को (आने में) रोक दूँगी ।

Maid—My lady, shall I shake this hanging branch, with a buzz with bees to keep the king back ?

पद्मावती—एवम् करेहि । [एवं कुरु ।] (चेटी तथा करोति ।)

पद्मावती—ऐसा ही करो । (दासी यँगा ही करती है ।)

Padmaravati—Do this (The maid does so.)

विदूषकः—अविहा, अविहा, चिट्ठु चिट्ठु दाय भयं । [अविह

अविह, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भयान् ।]

विदूषकः—मोह ! मोह ! ठहरिये, जरा धाय ठहरिये ।

Vidushaka—Oh, oh, wait just wait, your honour.

राजा—किमयम् ?

राजा—क्यों ?

King—Why,

विदूषकः—दासीएपुसहि महुअरेहि पीडियो हि । [दास्याः पुत्रमंपुकरं

पीडितोऽस्मि ।]

विदूषकः—हरामी भौरों ने मुझ पर आक्रमण कर दिया है ।

Vidushaka—I am troubled by these whorl-son bees.

राजा—मा मा भवानेवम् । मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः । पश्य,

राजा—न न, ऐसा न कहो । भौरों का भय मिटा देना चाहिए । देखो—

King—Let it not be with you, let it not be so Harming the bees should be avoided.

टिप्पणी—(१) तव कारणात्—तुम्हारे कारण । वासवदत्ता पर-पुरुष का मुख नहीं देखती है । इसलिए पद्मावती पति से मिलने की उत्कण्ठा रखते हुए भी उसके पास नहीं जाती है । (२) परिहरामि—छोड़ती हूँ । परि+ह+लट् उ० पु० ए० व० । (३) प्रविशामः—प्रवेश करते हैं । प्र+विश्+लट् उ० पु० बहु० व० । (४) अवचितकुसुमान्—जिनके पुष्प तोड़ लिये गये हैं । अव+धि+क्त (त) कर्मणि अवचित । अवचितानि कुसुमानि येभ्यः तान् बहुव्रीहिः । (५) शोफालिकागुच्छकान्—हरसिंघार के गुच्छे । गुच्छा एव गुच्छकाः, स्वार्थे कः, तान् । 'स्पाद् गुच्छकस्तु स्तवकः' इत्यमरः । (६) विचित्रता—अनेकवर्णता, सुन्दरता । (७) वसन्तकसंकीर्तनेन—'वसन्तक' इस सम्बोधन पद के उच्चारण से । उज्जैन में वासवदत्ता इस नाम को अनेक बार सुन चुकी थी । इसलिए चिरकाल के बाद आज प्रियतम के मुख से इसका उच्चारण सुनकर उसे अपने जीवन के मधुर दिनों का स्मरण हो आता है । इसलिए वह कहती है कि मानो आज मैं उज्जैन में ही हूँ । (८) आसीनौ—उपविशन्तौ । √आस् (उपवेशने)+शानच्, 'ईदासः' इत्यनेन ईत्वम् । (९) प्रतीक्षिष्यावहे—इंतजार करें । यहाँ विध्यर्थ में लट् लकार हुआ है । प्रति+ईष्+ (स्यावहे) उ० पु० द्वि० व० । (१०) ही ही—यहाँ दुःखसूचक अव्यय है । (११) दुःसह—दुःखेन मोड़ शक्यः । दुर्+सह+लृत् (अ) 'ईषदुःमुपु' इत्यादिना । (१२) तत्—यह हेत्वर्थक अव्यय है । (१३) प्रविशामः—प्रवेश करें । विध्यर्थ में लट् लकार हुआ । प्र+विश्+लट् । उ० पु० द्वि० व० । (१४) सर्वमाकुलं कर्तुं कामः—सारे प्रयत्न को विफल करने की इच्छा । कर्तुं कामः यस्य स कर्तुं कामः, 'तुङ्काममनसोरपि' के द्वारा 'कर्तुम्' में 'म्' का लोप हो गया । (१५) मधुकरपरिनिशीताम्—भौरों से व्याप्त । मधुकरैः परिनिशीता, ताम् । अथवा परिनिशीताः मधुकराः यस्या सा, ताम् । वाङ्महिताग्न्यादिपुं से 'परिनिशीत' का परनिपात हो गया । (१६) अवलम्बताम्—अन्य लताओं को अवलम्ब देने वाली प्रधान लता या वह लता

जिसके सहारे पद्यावती बँठी हुई है । अवलम्बमूला लता इति अवलम्बलता ताम्, मध्यमपदलोपी समास । (१७) अवधूय—हलाकर या कपोकर । अव+धू (कम्पन)+वत्वा=ल्यप् । (१८) अविह—यह विपादसूचक अव्यय है । (१९) दास्याः पुत्रैः—कमीनो ने । यहाँ अलुक् समास है । 'पठ्या आक्रोशे' सूत्र से पठ्ठी विभक्ति का अलुक् हो जाता है । निन्दा या घृणा सूचित करने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है । (२०) मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः—परि+हृ+ण्यत् कर्मणि ।—मधुकराणां भ्रमराणां सन्त्रासः—भयम् । अर्थात् मीरो को सन्त्रास देने वाला कार्य न करो ।

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।

पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥३॥

तस्मादिहैवासिष्यावहे ।

अव्यय—मधुमदकलाः मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढाः मधुकराः पादन्यासविषण्णाः (सन्तः) वयम् इव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥३॥

संस्कृत टीका—मधुमदकलाः—मधुमदेन पुष्परसपानजन्यमानसविकार-विशेषेण कलाः अव्यक्तमधुराः मधुर गुञ्जन्त इति यावत्, मदनार्ताभिः—काम-पीडिताभिः, प्रियाभिः—प्रियतमाभिः भ्रमरीमिरिति यावत्, उपगूढाः—आश्लिष्टाः, मधुकराः—भ्रमराः, पादन्यासविषण्णाः पादन्यासेन चरणक्षेपेण विषण्णाः खिन्नाः (सन्तः), वयम् इव—महम् इव, कान्तावियुक्ताः—कान्ताभिः प्रियाभिः वियुक्ताः विरहिताः स्युः—भवेयुः (अतएव भ्रस्माभिः एते भ्रमराः प्रियाविरहशोके न निपातनीयाः) ॥३॥

फूलों का रस पीकर मरती में गुञ्जार करने वाले तथा कामानुर प्रियाओं से आलिंगित किये जाने वाले ये मीरे (हमारे) पैरों के रखने से दुखी होकर हमारी तरह प्रियाओं में वियुक्त हो जायेंगे ॥३॥

इसलिए हम दोनों यही बैठे ।

The bees, sweet in their intoxication, clasped by their beloveds, tormented by love, getting distracted by our footsteps, would, like us, become separated from their beloveds. (Therefore let us both sit here)

टिप्पणी—(१) मधुमदकला—मधु पान के मद में गुञ्जने वाले । (२) मधु-पुष्परस । 'मधु मते पुष्परसे' इत्यमरः । (३) मधुकराः—मीरे । 'मधुव्रतो मधुकरो मधुलिङ्गमधुपानिनः । द्विरेषपुष्पलिङ्गपट्टदभ्रमरात्मयः' इत्यमरः ।

(४) मदनात्ताभिः—मदनेन प्रार्ताभिः तृ० तत्पु० । (५) उपगूढः—प्रातिगित ।
उप/गूह्+कृत (त) । (६) पादग्यासविषणाः—पैरो के रखने या चलने या
प्राहट से दुःखित । (७) पादग्यासेन विषणाः । तृ० तत्पु० । विषणा—वि/
सद्+कृत (त) । (८) कान्ताविपुक्ताः—प्रियतमामो से विपुक्ता । कान्ताभिः
विपुक्ताः तृ० तत्पु० ॥३॥

विदूषकः—एवम् होदु । [एव भवतु ।] (उभावुपविशतः)

विदूषक—ऐसा ही हो । (दोनों बैठते हैं ।)

Vidushaka—Let it be so. (Both sit down.)

राजा—(अवलोक्य) ।

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोऽप्यम शिलातलम् ।

नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

अन्वय—पुष्पाणि पादाक्रान्तानि इदं शिलातलं च सोऽप्यम । नूनम् इह आसीना
काचित् मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

संस्कृत टीका—पुष्पाणि—कुसुमानि, पादाक्रान्तानि—पादः चरणः प्राक्रा-
न्तानि दक्षितानि (वर्तन्ते), इदं—दृश्यमान, शिलातलं—प्रस्तरतलं, सोऽप्यम—
ऊष्मणा सहितं (बिद्यते) । (अतः) नून—निश्चितम्, इह—अत्र, आसीना—
उपविष्टा, काचित्—महिला, माम्—उदयनं, दृष्ट्वा—विलोक्य, सहसा—
अचानक, गता—याता ॥४॥

राजा—(देखकर) कूल पैरो ने कुचले हुए हैं, यह शिलातल भी गरम है ।

(अतएव) निःसन्देह्यहाँ बैठी हुई कोई महिला मुझे देखकर झटपट चली गई ॥४॥

King—Looking. Here flowers are trampled upon by feet.
| This slab is also hot. Therefore (it is clear) that some lady who
sat here has gone away seeing me.

टिप्पणी—कई संस्करणों में राजा—(अवलोक्य) समेत इस श्लोक का
पाठ नहीं मिलता है । यद्यपि प्रकृत स्थल में पूर्वपरसन्दर्भ के अनुसार इतने पाठ
के न होने से भी कोई क्षति नहीं है, तो भी 'अधिकं तु प्रविष्टं न च तद्गाम्नी'
इस न्याय में हमने इस अधिक पाठ का समावेश कर देना ही उचित समझा ।
यह श्लोक रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में आया है—'यथा भासकृतैः स्वप्नवासवदत्ते
शेफालिकामण्डपशिलातलमवलोक्य वत्सराजः पादाक्रान्तानि इत्यादि ।'
(१) भासिष्यावह—उपवेष्टायः । बैठें । यहाँ विषय में लट् लकार हुआ है ।

(२) पादाक्रान्तानि—पैरो से कुचले हुए । पादः आक्रान्तानि (तु० तत्पु०) ।
 (३) इदम्—यह समीपता का चोतक है । (४) सोष्म—गर्मी ज्ञेयुक्त ।
 ऊष्मणा सह वर्तमानम् । तु० तत्पु० । (५) आसीना—बैठी हुई । भास् + शानच् ।
 चेटी—भट्टिदारिए ! रुद्धा खु ह्य वयं । [भर्तृदारिके । रुद्धाः खलु
 स्मो त्रयम् ।]

दासी—राजकुमारी जी । हम लोग तो घिर गयी हैं ।

Maid—Princess we are indeed imprisoned.

पद्मावता—दिदिठआ उपविठ्ठी अय्यउत्तो । [दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः ।]

पद्मावती—भाग्य मे आर्यपुत्र बैठ गये हैं ।

Padmavati—Fortunately the prince has sat down,

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] दिदिठआ पकिदित्यसरारो अय्यउत्तो ।
 [दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(मन मे) भाग्य से आर्यपुत्र शरीर से स्वस्थ हैं ।

Vasava.—(To herself) fortunately the prince is good health.

चेटी—भट्टिदारिए ! सस्मुपादा खु अय्याए दिठ्ठी । [भर्तृदारिके !
 साश्रुपाता खल्यार्याया दृष्टिः ।]

दासी—राजकुमारी जी ! मायाँ की आँखें डबडबा आईं ।

Maid—Princess, the eyes of her ladyship are full of tears.

वासवदत्ता—एसा खु महुअराणं अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण
 सोदआ मे दिठ्ठी । [एसा खलु मधुकराणामविनयात् काशकु-
 सुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः ।]

वासवदत्ता—यह तो मीरो की चबलता मे मेरी आँखों मे कासपुष्पो की
 धूल पड जाने के कारण आँसू आ गये हैं ।

Vasava.—My eyes are full of tears on account of the falling
 of the pollen of Kusha flowers through the rudeness of the bees.

पद्मावती—जुज्जइ [युज्यते] ।

पद्मावती—ठीक रहती हैं ।

Padmarati—Right.

विद्वक्कः—नो ! सुण्णं खु इदं पमदवणं । पुच्छिदवत्थं किञ्चि अत्थि ।

पृच्छामि भवन्तं । [भोः । शून्यं खल्विदं प्रमदवनम् । प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति । पृच्छामि भवन्तम् ।]

विदूषक—श्रीमान् ! यह आनन्दवन बिलकुल सूना है । आपमें कुछ पूछना है । पूछूँ ?

Vidushaka—Sir the lady's garden is lonely, I have to ask you something. May I ask your honour ?

राजा—छन्दतः ।

राजा—खुशी से पूछो ।

King—You may happily do so.

विदूषकः—का भवदो पिआ ? तदाणि तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणि पद्मगवदी वा । [का भवतः प्रिया, तदानीं तत्रभवती वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।]

विदूषक—आपको कौन प्रिय है ? तब की माननीया वासवदत्ता या अब की पद्मावती ?

Vidushaka—Who is dear to you ? Her former ladyship Vasavadutta or her present ladyship padmavati ?

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसंकटे मां न्यस्यति ?

राजा—क्यों आप इस समय मुझे बहुत बड़े प्रेम-संकट में डाल रहे हैं ?

King—Why do you put me in this embarrassment of very great magnitude.

पद्मावती—हला ! जादिसे संकटे निबिल्लत्तो अय्यउत्तो । [हला ! यादृशे संकटे निक्षिप्तः सार्यपुत्रः ।]

पद्मावती—सखी ! जैसे संकट में सार्यपुत्र डाले गये हैं (वैसे संकट में मैं भी) ।

Padmavati—Oh in what kind of an embarrassment has my lord been put.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अहं अं मन्दभाआ । [अहं च मन्दभागा ।]

वासवदत्ता—(मन में) मैं अभागिन भी ।

Vasav.—And I so unluckily.

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भवं । एवका उवरदा, अवरा असन्निहिदा ।
[स्वरं स्वरं भणतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता ।]

विदूषक—आप निःसंकोच कहें । एक तो मर गई और दूसरी पास में नहीं है ।

Vidushaka—Tell me at your will, at your pleasure, one of them is dead another not near.

राजा—वयस्य ! न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः ।

राजा—मित्र ! मैं नहीं कहूँगा । तुम मुँहफट हो ।

King—Friend I will not say. You are talkative.

पद्मावती—एतएण भणिदं अय्यउत्तेण । [एतावता भणितमार्यपुत्रेण ।]

पद्मावती—इतने से आर्यपुत्र ने (अपना मन्तव्य) कह दिया ।

Padmarati—The King has answered in those words.

विदूषकः—भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्स ।
एसा सन्दट्ठा मे जीहा । [भो ! सत्येन शपामि, कस्यापि
नाख्यास्ये । एसा सन्दट्ठा मे जिह्वा ।]

विदूषक—महाराज ! मैं सत्य की शपथ खाता हूँ, किसी से भी नहीं कहूँगा । यह मैंने अपनी जीभ काट ली ।

Vidushaks—I pledge my word, I will not tell anyone. See have I put a padlock on my tongue (puts his tongue out and bites it.)

राजा—सखे ! नोत्सहे ववतुम् ।

राजा—मित्र ! कहने का साहम नहीं होता ।

King—Friend, I do not venture to speak it.

पद्मावती—अहो ! इमस्स पुरोभाइदा । एत्तिएण हिअअं ण जानादि ।
[अहो ! अस्य पुरोभागिता । एतावता हृदयं न जानाति ।]

पद्मावती—हाय ! इनकी हृदयादिता । इतने से भी हृदय (का भाव) नहीं समझते ।

Padmarati—Ha, his impudence, can he not know his heart by this much ?

टिप्पणी—(१) प्रकृतिस्य शरीरः—प्रकृतिस्य भीरोगमिनि यावत् शरीरं

यम् म तथाभूतः । वामवदत्ता ने चुपके में उदयन को देख लिया इसलिए कहती है कि सोमाग्न से मेरे प्रतिदेव का शरीर स्वस्थ है । (२) खलु—यह निश्चयार्थक प्रथम है । (३) अधिनयात्—उदृष्ट होकर स्वच्छन्दतापूर्वक श्वर-उश्वर घूमने से । यहाँ हेतु में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है । (४) सोदका—उदकेन जलेन सहिता इति सोदका धश्रुजलपूर्णेत्यर्थः । (५) साधुपाता—अधुपात से युक्त । अधुपाता पातः धश्रुपातः पष्ठी तत्पुरुष । (६) कान्कमुमरेणुना—कान्काना कमुमानि तेषां रेणुः (घृतः) पष्ठी तत्पुरुष तेन । यहाँ करणे तृतीया हुई है । (७) शून्यं खलु—तात्पर्य यह है कि महाराज ! प्रमोदयन ने दम, समय हम दोनों को छोड़ कर कोई नहीं है । इसलिए मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ । श्रीर विश्वाम दत्ताता हूँ कि आप जो उत्तर देंगे, उसे मैं गुप्त रखूँगा । इसलिए आप मेरे प्रश्नों का यथोचित उत्तर दें । यहाँ नाटककार ने बड़े कोमल से नायक एवं दोनों नायिकाओं को एक स्थान में लाकर विदूषक के माध्यम से मधुर-दृश्य का उपक्रम कर दिया है । यह दृश्य उदयन का वासवदत्ता के प्रति धाराप्र प्रेम और पद्मावती की उच्चहृदयता एवं मौम्य स्वभाव का चित्र धीनता है । (८) उन्वतः—अभिप्राय या इच्छा के अनुसार । 'अभिप्रायतद्वाद धामनः' इत्यमरः । (९) प्रष्टव्यम्—प्रच्छ+तव्यत् कर्त्तरि । (१०) बहुमानमकुटे—अधिक मान वयन रूप विपत्ति में, धर्मात् 'मं' किमको अधिक मानता हूँ यह बनाने में जो संघट उन्मिश्र होता है, लगने । क्योंकि यदि राजा मरता है तो वह वामवदत्ता को अधिक मानता है तो विदूषक की सुगरता से पद्मावती को यह बात मालूम हो जाने पर वह खुपि होगी श्रीर यदि पद्मावती को अधिक मानने की बात कहता है तो उसके वागवदत्ता के प्रति अवशोनीय प्रेम में बड़ा दृष्टा । (११) यादुसे सकुटे—यह वाक्य कपूर या मालूम होता है । इसलिए हमने धामने 'यादुसे सकुटि' या 'तनु म एव जानानि' इत्यादि जोड़ सेवा यादित । (१२) उपरता—मृगा । मृगः—अधिक बोझने वाला, बाधन । बहुवचन मृगम् धर्तिष्य धाम्य इति विभक्ते मृग+य 'उपरतने मृगमकुटप्रेम्य उगमजानम्' इति कालिदेव । (१३) लपेन—यह करण में तृतीया हुई । (१४) लपेन—मे निद्रा—मैंने धात्री जीस बात सी धर्मात् मैंने धात्री बापास निद्रा को सोच लिया । यह वह नहीं सोचती । (१५) कर्म धरि कान्कानाये—जिसी में श्री ५५ श्री कहेंगे । 'कर्मका मरिमिर्द्विज म मरिमिर्द्विज' रूप में 'कर्म' में खुदी का प्रयोग

हुषा है । (१६) अहो अस्य पुरोभागिता...—पद्मावती कहती है कि इसके हठ पर आश्चर्य है, जो इतने में भी मन को नहीं समझ सका है । क्योंकि महाराज ने यह कह कर कि मैं नहीं बताऊँगा, तुम वाचाल हो, प्रकट कर दिया कि मैं वासवदत्ता से अधिक प्रेम करता हूँ । फिर भी वह जिद कर रहा है, यह मूर्खता की पराकाष्ठा है । (१७) पुरोभागी—ढीठ, हठी, दोपैकदर्शी । 'दोपैकदृक् पुरोभागी' इत्यमर । पुरोभागिनो नावः पुरोभागिता, पुरोभागिन्+तल्—टाप् (घ्रा) ।

(विदूषकः—किं ण भणादि मम ? अणाच्चविस्सअ इमादो सिलावट्टआदो ण सबकं एवकपदं वि गमिदुं । एसो रुद्धो अत्तभवं । किं न भणति मम ? अनाख्यायास्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम् । एष रुद्धोऽत्रभवान् ।]

विदूषक—वो नहीं मुझसे कहते ? बिना बहे इस शिला-खंड से अन्यत्र एक पग भी नहीं जा सकते । यह आप यहीं रोक दिये गये ।

Vidushaka—Why do you not reply ? Unless you speak, you shall not stir step from this stone bench.

राजा—किं वत्तात्कारेण ?

राजा—क्या जबरदस्ती ?

King—What ? By force.

विदूषकः—आम, वत्तात्कारेण । [आम्, वत्तात्कारेण ।]

विदूषकः—हाँ, जबरदस्ती ।

Vidushaka—Yes, by force.

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत् ।

राजा—तो देखता हूँ (कैसे मुझे रोकते हो) ।

King—Then I see (how do you check me ?)

विदूषकः—प्रसीददु पनीददु भवं । यअस्वभावेण साविदो, जह सच्च ण भणाति । [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान् । यवस्यभावेन शापितोऽसि, यदि मत्तं न भणसि ।]

विदूषक—प्रसन्न होइये महाराज, प्रसन्न होइये । मानकी मित्रता की सीढ़ी है, यदि सचची बात नहीं बहने ।

Vidushaka—Be pleased your highness, be pleased, I conjure you to tell the truth in the name of friendship.

राजा—का गतिः ? भूय म्—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।

वासवदत्तावद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥४॥

अन्वय—यद्यपि पद्मावती रूपशीलमाधुर्यैः मम बहुमता । वासवदत्तावद्धम् मे मनः तु न तावत् हरति ॥४॥

संस्कृत टीका—यद्यपि, पद्मावती—दर्शकमगिनी, रूपशीलमाधुर्यैः—रूप-सौन्दर्यं शीलं सञ्चरित्य माधुर्यं मधुरमापित्वम्—एतैः गुणै, मम—उदयनस्य, बहुमता—अस्यादत्ता प्रेमास्पदमिति यावत् (वर्तते तथापि सा), वासवदत्तावद्धं—वामवदत्ताया पूर्वपत्न्याम् आवद्धम् आसक्तं, मे—मम, मनः—चेतः, तु, न तावत् हरति—नैव आकर्षयति (अयं भावः—पद्मावती सौन्दर्यसुशीलतादिगुणैः मम बहुमानपात्रं भूत्वाऽपि वासवदत्तया स्वगुणैः आकृष्टं मम हृदयं वशीकृतुं न प्रभवति । अतएव सा वासवदत्तापदवीमारोढुं चाहति ।) ॥४॥

राजा—क्या करें ? मुनो—यद्यपि पद्मावती (अपने) रूप, शील और (वचन) माधुर्य से मेरी बड़ी प्यारी है तो भी वासवदत्ता मे आसक्त मेरे मन को बहोतीच नहीं सकती ॥४॥

King—Is there no way out ? Then listen. Though padma-
vati is greatly thought of by me on account of her form, virtue,
and amiability, yet she does not attract my mind attached to
Vasavadatta.

टिप्पणी—(१) शितापट्टकत्—पत्थर की चीज़ी । यहाँ 'शितापट्टकं विहाय
'अपमत्र' इस प्रकार अप्रत्याहार करके 'त्यक्तोपे' कर्मण्यधिकरणे 'च' धातिक मे
'पथमा' हुई । (२) धाम्—यह स्वीकारार्थक भव्यय है । (३) प्रतीवतु-
प्रतीवतु—एहाँ अतिशय प्रमत्तता द्योतित करने के लिए द्रिक्विन हुई है ।
(.) वयस्यभावेन शक्तिर्जाति—मित्रतायाः क्षयमेव एव यदोक्तिः । यहाँ विदूषक
का भावार्थ यह है कि मैं मित्रता की कतम देता हूँ, प्राय मन्त्रो बात यह दीजिये ।
यदि नहीं कहेंगे तो प्राय तो हम दोनों की मित्रता समाप्त हो जाएगी । (४) रूप-
शीलमाधुर्यैः—रूपं च शीलं च माधुर्यं च इत्येतेषां समाहारद्वन्द्वः, रूपशील-

माधुर्याणि, तैः । शील=सदाचरण । 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः । (६) मम बहुता—मेरी बहुत ही माननीया या प्रेमास्पद है । मता-मन्+क्त(त) +टाप् (घा) । 'मम' मे 'मतिवृद्धिपूर्वाभ्युच्च' सूत्र से पठ्ठी हुई । (७) वासवदत्तावदम्—वासवदत्ता मे आसक्त—वासवदत्तायाम् आवदम् स० तत्तु० अथवा वासवदत्तया आवदम् । राजा का आशय है कि वासवदत्ता के उत्कृष्ट गुणों द्वारा उस पर आसक्त मेरे मन को पद्मावती अपने रूप, शील, प्रिय भाषण आदि गुणों से आकृष्ट नहीं कर पाती है । इस श्लोक मे आर्या छंद है । तल्लक्षण—यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश सार्या । वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अहो ! अज्जादवासं पि एत्थ बहुगुणं सम्पज्जइ । [भवतु भवतु । दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।]

संस्कृत-टीका—भवतु भवतु—कामं भवतु परिखेद इति शेषः, अस्य—वियोग-रूपस्य, परिखेदस्य—क्लेशस्य, वेतन—पुरस्कारः, दत्तं—वित्तीयम् । अहो ! —आनन्दविम्वद्योतकमव्ययमिदम् अज्ञातवासोऽपि—अज्ञातः अविदितः स वासो वासः निवासः अपि, अत्र—पद्मावत्याः निकटे, बहुगुणः—गुणविशेषशाली, सम्पद्यते—प्राप्नोति ।

अनुवाद—वस वस । इस (विरह रूप) क्लेश का पुरस्कार दे दिया । अहो ! यहाँ छिप कर रहना भी बहुत गुणकारी हो रहा है ।

Vasava.—Well, let it be so. It has given me compensation for my pains. Oh, even remaining incognito has many advantages.

टिप्पणी—(१) भवतु-भवतु—यहाँ मृगार्थ में द्वित्व हुआ । (२) वेतनम्—पारिश्रमिक । 'भूतिर्भर्मतु वेतनम्' इत्यमरः । यहाँ वासवदत्ता के बहने का तात्पर्य यह है कि मैंने अज्ञातवास स्वीकार करके अपने पति के वियोग का दुःख, दासीवन् जीवन का दुःख और सौत के स्वीकार करने की वेदना को मटा है । यह सब आज मफल हो गया । क्योंकि मेरे पति मूर्खने प्रगाढ़ प्रेम करते हैं । मुझे इतने अधिक कुछ नहीं चाहिए । (३) अज्ञातवासः—अज्ञान-रक्षणी वामः अज्ञानवामः कर्मधारय समास । (४) बहुगुणः—बहुगुणों सम्पन्न न बहुगुणः । यहाँ वासवदत्ता कहती है कि अहो ! मेरा अज्ञातवास करने लाभकारी मिट गया ।

यदि मैं अज्ञातवास में न होती तो मुझे पति के ये अमृत-वचन कभी सुनाई न देते । अतएव मैं कृतार्थ हूँ ।

चेटी—भट्टिदारिए ! अदक्खिञ्जो खु भट्टा । [भर्तृदारिके । अदा-
क्षिण्यः खलु भर्ता ।]

दासी—राजकुमारी जी ! स्वामी उदार नहीं है ।

Madi—princess, the lord is really wanting in chivalry.

पद्मावती—हृला ! मा मा एव्वं । सदाक्खिञ्जो एव्व अय्यउत्तो,
जो इदाणि वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि । [हृला !
मा भयम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वास-
वदत्ताया गुणान् स्मरति ।]

पद्मावती—सखी ! ऐसा मत कहो । भार्यपुत्र उशर ही हैं, जो अभी तक
भार्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करते हैं ।

Padmavati—Oh, no, do say so. The lord really courtesy,
as he even now remembers the virtues of Vasavadatta.

वासवदत्ता—भट्टे अभिजनस्स सदितं मन्दिदं । [भट्टे ! अभिजनस्य
सदृशं मन्त्रितम् ।]

वासवदत्ता—सौभाग्यवती ! (तुमने अपने) उच्च कुल के अनुरूप ही कहा ।

Vasava.—Good madam, you have spoken in accordance
with your noble birth.

राजा—उत्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ?
तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

राजा—मैंने तो कह दिया । अब आप कहिये कि कौन आपको अधिक
प्रिय है—उस समय की वासवदत्ता या इस समय की पद्मावती ?

King—I have declared. You should tell me now, whom do
you like, then her ladyship Vasavadatta or her present ladyship
padmavati.

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो । [भार्यपुत्रोऽपि वसन्तकः
संवुत्तः ।]

पद्मावती—भार्यपुत्र भी वसन्तक हो गये ।

Padmavati—The prince has become Vasantak now.

विदूषकः—किं मे विप्लवविदेन । उभयो वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ ।
[किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्र भवत्यो मे बहुमते ।]

विदूषक—मेरे बकने से क्या ? मुझे तो दोनों श्रीमतियाँ अत्यन्त प्रिय हैं ।

Vidushaka—Tusk, what have I to do with idle talk. Both ladies must command my high esteem.

राजा—वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

राजा—मूर्ख ! मुझसे इस प्रकार जबर्दस्ती सुनकर अब तुम क्यों नहीं कहते ?

King—Idiot having heard me speaking that through force you do not speak now ?

विदूषकः—किं मं पि बलप्रकारेण ? [किं मामपि बलात्कारेण ?]

विदूषक—क्या मुझसे भी जबर्दस्ती (बहसाना चाहते हैं) ?

Vidushaka—Will you make me speak forcibly ?

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण ।

राजा—घोर क्या, जबर्दस्ती ।

King—Yes, certainly, by force.

विदूषकः—तेण हि ण सयकं सोदुं । [तेन हि न शक्यं श्रोतुम् ।]

विदूषक—तब तो भाव नहीं सुन सकते ।

Vidushaka—Then you shall not hear.

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः । स्वैरं स्वैरमभिधीयताम् ।

राजा—मान जाइये, महाब्राह्मण जी ! मान जाइये । अपनी इच्छा से कहिये ।

King—May be appeased, O great and holy man. And speak in perfect freedom.

टिप्पणी—(१) भद्राशिष्यः—नास्ति दाशिष्यं यस्मिन् स पदाशिष्यः ।

दाशिष्य—नायक वा सभी नायिकाओं के प्रति समान अनुराग । 'धनेशमहिता-
मनरागो दक्षिणः बधिरः' साहित्यदर्पण । (२) सदाशिष्यः—दाशिष्येन सहितः
इति सदाशिष्यः । यहाँ पद्मावती अपनी विद्यामहदयता एवं गारुडीजनोक्ति
ईश्या से रहित मानना वा परिषद देते हुए हकीमी है कि पण्डित धनवी मुन पत्नी

की स्मृति बनाये रखने के कारण अत्यन्त उदार है । तुम उनको अदाक्षिण्य मत कहो । (३) अभिजनस्य—कुल का । 'कुलान्यभिजनान्वयो' इत्यमरः । इसमें 'तुल्यार्थरतुलोपमाया तृतीयाज्यतरस्याम्' सूत्र से पाक्षिक बन्धी हुई । (४) सदृशम्—अनुरूप । (५) मन्त्रितम्—कहा गया । (६) विप्रलपितेन—निरर्थक कथन । 'विप्रलापो विरुद्धोक्तावनर्थकवचस्वपि इति हेमः ।' 'प्रलापोऽनर्थकं वचः' इत्यमरश्च । (७) बंधेय !—मूर्ख ! 'मूर्खबंधेयवालिषाः' इत्यमरः । (८) महाब्राह्मणः—निन्दित ब्राह्मण या महापात्र जो प्रेतकर्म कराता है और उसका दान लेता है वैसे तो किसी शब्द के साथ महत् शब्द जुड़ने से उसकी उत्कृष्टता का बोध कराता है, किन्तु जिन शब्दों के साथ लपने से यह निन्दा का अर्थ देता है, वे ये हैं—'तांसे तैले तथा मांसे बंधे ज्योतिषिके द्विजे । यात्रायां पपि निद्राया महच्छब्दो न युज्यते ॥' यहाँ राजा ने विदूषक को परिहास में महाब्राह्मण कहा किन्तु इस शब्द के अथम ब्राह्मण रूप अर्थविशेष से अनभिज्ञ विदूषक इसका अर्थ उदार ब्राह्मण समझ कर प्रसन्न हो गया और इनीलिए प्रागे उसके प्रश्न का उत्तर देने लगा । (९) स्वरम्—इच्छानुसार । (१०) अभिधीयताम्—कहना चाहिए । अभि+धा का अर्थ कहना होता है । 'उपमर्गेण घातव्यो वलादन्यत्र नीयते । प्रहाराहारमंहारविहारपरिहारवत् ।' अर्थात् उसपर लगाने में घातु के अर्थ में बड़ा परिवर्तन हो जाता है ।

विदूषकः—इदानीं सुणादु भवं । तत्तहोदो घासवदत्ता मे बहुमदा । तत्तहोदो पदुमावदो तरुणी दस्सणीया अकोपना अणहंकारा महुरवाघा सदिवज्ज्जा । अग्रं च अवरो महन्ती गुणो, सिण्ठेण भोग्गणेण मं पच्चुगच्छइ घासवदत्ता—कहि णु खु गदो अय्य-यसन्तमो ति । [इदानीं शृणोतु भवान् । तत्रभवतो घासवदत्ता मे बहुमता । तत्रभवतो पदुमावतो तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहंकारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या । अयं चावरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति घासवदत्ता—कुत्र नु खलु गत आय्ययसन्तक इति ।]

संस्कृत टीका—इदानीम्—अधुना, भवान्, शृणोतु—आकर्णयतु स्वोप-प्रदोत्तरमिति शेषः । तत्रभवती—माननीया, वासवदत्ता, मे—अथ, बहुमता—अतीवमानास्पदम् । तत्रभवती—माया, पदुमावती—मगधराजकुमारी, तरुणी—युवती, दर्शनीया—मुन्दरी, अकोपना, कोप-हीना, अनहङ्कारा—अभिमानरहिता,

मधुरवाक्—मधुरभाषिणी, सदाक्षिण्या—उदारा । (तत्र मवत्यां वासवदत्तायाम्) अयम्, अपरः—द्वितीयः, महान्, गुणः (आसीत् यत् सा) स्निग्धेन—सरसेन, भोजनेन—भोज्यपदार्थेन, मा—वसन्तक, प्रत्युद्गच्छति—अन्वेपयति, कुत्र नु—कव नु, खलु, गतः—यातः, भार्यवसन्तकः इति ।

अनुवाद—अब आप सुनिये । मैं माननीया वासवदत्ता का अधिक आदर करता हूँ ? यद्यपि माननीया पद्मावती युवती, सुन्दर, क्रोधहीन, अभिमानरहित, मधुरभाषिणी तथा उदार हैं किन्तु वासवदत्ता जो मैं एक दूसरा बड़ा भारी गुण था कि सुस्वादु भोजन लेकर मुझे ढूँढ़ा करती थी कि भार्य वसन्तक कहाँ गये ।

Vidushaka—Listen then. Her ladyship, Vasavadatta, is highly esteemed by me. Her highness Padmavati is young, beautiful, free from anger, not egoistic, affable and full of courtesy. An other great quality of hers is that she (Vasavadatta) welcomes me with delicious food asking "where has indeed the revered Vasantaka gone?"

टिप्पणी—(१) अक्रोपना—क्रोधहीन । न कोरना अक्रोपना नञ् तत्पुरुष । कृप्+युच्+अन+टाप् (आ) स्त्रियाम् । (२) अनहंकारा—अभिमानरहित । अविद्यमानः अहंकारः यस्याः सा (ब० ग्री०) । (३) मधुरवाक्—प्रिय बोलने वाली । मधुरा वाक् यस्याः सा । स्निग्धेन—सरस । स्निह्+क्त् (त) । (४) अयं चापरो महान् गुण ... —यही व्यंग्यार्थ यह है कि जैसे प्रतिदिन वासवदत्ता जो मुझे खोज-खोज कर स्वादिष्ट भोजन कराती थीं उसी तरह मैं पद्मावती जी भी मुझे सुन्दर-पुन्दर पदार्थ खिलावे तो उन्हें भी मैं बहुत मानूँगा । (५) प्रत्युद्गच्छति—अन्वेपयति पुरः सर सम्मुखमागत्य सम्मावयति । यही मूल काल के अर्थ में लट् लकार हुआ है ।

वासवदत्ता—भोडु भोडु, वसन्तक ! सुमरेहि दाणि एदं । [भवतु भवतु, वसन्तक ! स्मरेदानीमेताम् ।]

वासवदत्ता—अच्छा अच्छा वसन्तक ! अब इसे याद करो ।

Vasava.—Well, let it be Vasantaka, remember her ladyship here.

राजा—भवतु, भवतु, वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयित्वे देव्यं वासव-दत्तायै ।

वासवदत्ता—(मन में) बस बस, मुझे विश्वास हो गया। प्रहा ! आनन्द है, जो ऐसा वचन परोक्ष में सुना जाता है (अर्थात् पीठ पीछे ऐसा वचन सुनना प्रिय लगता है)।

Vasava.—(To herself) Let it be so. Well I am cheered. Oh, how sweet really. (Oh that) such a speech has to be heard incognito.

टिप्पणी—(१) अप्रत्यक्षम्—परोक्ष में, अनुपस्थिति में। यहाँ तात्पर्य यह है कि सामने तो ऐसे चाटु वचन सभी कहते हैं, परन्तु पीठ पीछे प्रशंसा विरते ही करते हैं। आयंपूत्र ने मुझे मरी हुई समझ कर ही ऐसी बातें कही हैं। इसलिए उनकी बातों से मुझे बड़ा आनन्द मिल रहा है।

विदूषकः—धारयतु, धारयतु भवं । अणदिक्रमणीयो हि विही । ईदिसं दाणिं एवं । [धारयतु धारयतु भवान् । अनतिक्रमणीयो हि विधिः । ईदशमिदानीमेतत् ।]

विदूषकः—आप धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें। भवितव्यता टाली नहीं जा सकती। यह तो भव ऐसा ही है।

Vidushaka—Take courage, your honour, take courage. Fate is inevitable. It is thus now.

टिप्पणी—(१) धारयतु धारयतु—यह द्विरुक्ति दृढ़ता सूचित करने के लिए है। 'धारयतु' मे स्वाधिक निच् हुमा है। (२) अनतिक्रमणीयो हि विधिः—तात्पर्य यह है कि हीनहार होकर रहता है। भव आपके भाग्य में ही पत्नी-वियोग लिखा था तो उसे कोन टाल सकता था। इसलिए आपको शोक नहीं करना चाहिए प्रत्युत धैर्य धारण करना चाहिए। न अनतिक्रमणीयः इति अनतिक्रमणीयः नम् समाप्त।

राजा—ययस्य ! न जानाति भयानयस्याम् । कुतः—

राजा—मित्र ! आप मेरी दशा को नहीं जानते हैं। क्योंकि—

King—Friend, you do not realise my present condition.

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्या स्मृत्या याति दुःखं नयत्यम् । यात्रा खेया यद् विमुच्येह^१ याप्यं प्राप्तानुष्या याति युद्धिः प्रसादम् ॥७॥

१. विमुच्येत—संशान्तर। यह अधिक गुड है क्योंकि संसार में प्रिय के वियोग में धीमू बहाये जाने का नियम है।

अन्तय—बद्धमूलः धनुरागः त्यक्तुं दुःखम्, स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति ।
तु यात्रा एषा यत् इह वाष्पं विमुच्य प्राप्तानृष्या बुद्धिः प्रसादं याति ॥७॥

संस्कृत टीका—बद्धमूलः—बद्धं मूलं यस्य स बद्ध इत्यर्थः, धनुरागः—प्रेम,
त्यक्तुं—विस्मर्तुं, दुःखम्—प्रतिकठिनम्, स्मृत्वा स्मृत्वा—पुनः पुनः तत्प्रेम
संस्मृत्य, दुःख—कष्टं, नवत्वं—नवीनता, याति—गच्छति । तु—तथापि, यात्रा—
लोकव्यवहारः, एषा—इयम्, यत्, इह—अत्र, वाष्पम् अधुजलम्, विमुच्य—
विमुच्य, प्राप्तानृष्या—प्राप्तम् लब्धम् धानृष्यम् ऋणस्य धमावः तत्प्रेम्णो
निष्कृतिर्येषा सा तथाभूता, बुद्धिः—मनः, प्रसादं—प्रसन्नताम् दान्तिमिति यावत्,
याति—प्राप्नोति । (अयं भावः—वासवदत्ताविरहाकुलः उदयनः वसन्तक
कथयति—मित्र ! अहं कथमपि वासवदत्तां स्मृतिपयादपनेतुं न शक्नोमि ।
यतो हि प्रगाढं प्रेम दुस्त्यजं भवति । तच्च प्रेमपात्रस्य स्मरणेन त्वं दुःखं ददाति ।
तथापीप लोकरीतिर्यत् मूलं प्रेमपात्रमृद्दिष्य जना रोदन्ति । रोदनेन दुःखमारो
लयमवति तथा प्रियजनप्रेमरूपस्य ऋणस्य निपत्तिनेन मनः प्रसन्नताम-
पि गच्छति ॥७॥

अनुवाद—जमी हुई जड़ वाते प्रेम को मूल जाना बड़ा कठिन है । बार-
बार उसका स्मरण करने से दुःख नया हो जाता है । तो भी व्यवहार यही है
कि यहाँ (इस लोक में) भानू बहाकर ऋण से छुटकारा पाया हुआ मन दान्ति
प्राप्त कर लेता है ॥७॥

It is difficult to abandon deep rooted love. Its repeated
remembrance causes new pain. Life is such that after shedding
tears and paying the debt, does the mind get calmness.

टिप्पणी—(१) दुःखम्—यहाँ 'धनुरागः' शब्दों के धनुराग 'दुःखम्' को जगह
'दुःखकरः' प्रयोग होता चाहिए था, ऐसा कोई-कोई भाव ले सकते हैं, किन्तु यह
टीका नहीं है । क्योंकि दुःख शब्द नित्य अनुसरतिग है । अतएव 'यह 'वेदाः
प्रमाणम्' को तरह अपने लिये घोर वचन को नहीं छोड़ सकता । अथवा यहाँ-
यहाँ लिये घोर वचन का प्रयोग सम्बद्ध सत्ता से स्वतन्त्र होकर भी किया जाता
है—'लिये वचनस्यापि सामान्योपक्रमात्' अतएव 'वचनम् दान्तिज्ञितुं पवनः'
यह वचनदास का प्रयोग घोर 'दास्यं स्वमांसादिमिरति धतुं प्रणिहन्तुम्' यह
महामात्स्यार का प्रयोग संभव होता है । (२) स्मृत्वा स्मृत्वा—यहाँ कच्चा प्रत्यय
चिन्तनीय है । क्योंकि 'समानकत्वं कयोः पूर्वकाने' शून्य से समानकत्वं प्राप्त

राजा—अच्छा, अच्छा वसन्तक ! मैं यह सब बातें देवी वासवदत्ता से कह दूंगा ।

King—Well, Vasantaka, I shall tell all this to queen Vasavadatta.

विदूषकः—अविहा, वासवदत्ता । कहां वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहा, वासवदत्ता । कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ! कहां वासवदत्ता ? वासवदत्ता को मरे बहुत दिन हो गये ।

Vidushaka—Alas, Vasavadatta, where is Vasavadatta, Vasavadatta has long since died.

राजा—(सविषादम्) एवम् उपरता वासवदत्ता ।

राजा—(शोक के साथ) ऐसा, वासवदत्ता मर गई ।

King—(With sorrow) Yes, Vasavadatta is dead.

टिप्पणी—(१) भवतु भवतु.....—यहां पुनः पुनः होने के अर्थ में द्वित्व हुआ । इस वाक्य का भावार्थ यह है कि मेरी अनुपस्थिति में तुम पद्मावती का ही गुण-वर्णन किया करो, क्योंकि वही इस समय तुम्हें स्वादिष्ट भोजन खिलाने में समर्थ है । (२) देव्यं वासवदत्ताय—यहां 'अकथितं च' सूत्र से कर्मप्रवचनीय-संज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए थी, किन्तु 'तदा-चक्षुषानुरेन्द्राय' की तरह सम्प्रदानत्व की विवक्षा में चतुर्थी हुई । (३) सविषादम्—दुःख के साथ । विषादेन सह वर्तमानम् । (४) उपरता—मर गई । उप+रम्+क्त (त)+टाप् (आ) । स्त्रियाम् ।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।

ततो वाणी तयैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥६॥

अन्वय—अनेन परिहासेन त्वया मे मनः व्याक्षिप्तम् । ततः पूर्वाभ्यासेन इयं वाणी तयैव निःसृता ॥६॥

संस्कृत टीका—अनेन—पूर्वाभ्यासेन, परिहासेन—नर्ममायितेन, त्वया—वसन्तकेन, मे—मम, मनः—चित्त, व्याक्षिप्तं—चञ्चलीकृतम् । ततः—तस्मात् हेतोः, पूर्वाभ्यासेन—प्रायकालिकसंस्कारबलात्, इयम्—एषा, वाणी—वाक्

‘मर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यं वासवदत्तायै’ इत्येवंरूपा, तथैव—वासवदत्ताजीवित-
कालसदृशी एव, निःसृता—निर्गता ॥६॥

अनुवाद—इस परिहास से तुमने मेरे मन को विक्षिप्त बना दिया ।
इसलिए पहले के अभ्यास से वैसी ही यह बात निकल पड़ी ॥६॥

With that joke of yours my mind was distracted by you.
And then those words came out of former habit.

टिप्पणी—(१) परिहामेन—‘आपको वासवदत्ता और पद्मावती मे से कौन
अधिक प्रिय है’ इस प्रकार के नर्म वचन से । (२) व्याक्षिप्तम्—मुग्ध कर दिया ।
क्योंकि तुम्हारे इस प्रश्नोत्तर से मेरा मन वासवदत्तामय हो गया था और अनुभव
करने लगा था कि मैं प्राणप्रिया वासवदत्ता के साथ रह रहा हूँ । वि+आङ्+
क्षिप्+क्त(त)—‘रवया’ इसका अनुक्तकर्ता है तथा ‘मनः’ उक्तकर्म है । (३)
पूर्वाभ्यासेन—पहले के अभ्यास के कारण । चूँकि वासवदत्ता के जीवनकाल में
बहुधा तुम्हारा अभिनय देखकर मैं झट कह दिया करता था कि मैं वासवदत्ता जी
मे कह दूँगा । (४) निःसृता—निस्+सृ+क्त (त) कर्तरि+टाप् (आ) ।
स्त्रियाम् इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है । तल्लक्षण—श्लोके षष्ठं गुरुज्येयं सर्वत्र लघु
पंचमम् । द्विचतुःपादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययोः ॥ यह समवृत्त छन्द है ॥६॥

पद्यावती—रमणीओ खु कहाजोओ निसंसेण विसंवादिओ । [रमणीयः
खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः ।]

पद्मावती—सुन्दर कथा-प्रसंग को (इस) दुष्ट ने बिगाड़ दिया ।

Padmaravati—Truly a charming episode is spoilt by that
wicked man.

टिप्पणी—(१) नृशंसेन—क्रूर या निर्दयी ने । ‘नृशंसो घातुकः क्रूरः’
इत्यमरः । (२) विसंवादितः—विच्छिन्न या विध्वस्त कर दिया । वि+सम्+
वद्+विच्+क्त(त) कर्मणि । यदि यह वासवदत्ता की मृत्यु की खबर न मिलता
तो यह कथा अभी इसी मनोहर रूप में चलती रहती भयवा सुगंधक समाप्त हो
जाती । परन्तु इस निगोड़े ने सारा मजा किरकिरा कर दिया ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु, विस्सत्पहि । अहो ! पिअं
णाम, ईदिमं यमणं अप्पच्चवत्त सुणीयदि । [भयतु-भयतु, विस्-
स्तास्मि । अहो ! त्रिधं नाम, ईदुसं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते ।]

वासववत्ता—(मन में) बस बस, मुझे विश्वास हो गया। धृष्ट ! धानन्द है, जो ऐसा वचन परोक्ष में सुना जाता है (भर्यात् पीछे पीछे ऐसा वचन सुनना प्रिय लगता है)।

Vasava.—(To herself) Let it be so. Well I am cheered. Oh, how sweet really. (Oh that) such a speech has to be heard incognito.

टिप्पणी—(१) अप्रत्यक्षम्—परोक्ष में, अनुपस्थिति में। यहाँ तात्पर्य यह है कि सामने तो ऐसे चाटु वचन सभी कहते हैं, परन्तु पीछे पीछे प्रशंसा विरले ही करते हैं। भ्रातृपुत्र ने मुझे मरी हुई समझ कर ही ऐसी बातें कही हैं। इसलिए उनकी बातों से मुझे बड़ा धानन्द मिल रहा है।

विदूषकः—धारेदु, धारेदु भवं । अनदिवक्रमणीयो हि विही । ईदिसं दाणिं एवं । [धारयतु धारयतु भवान् । अनतिक्रमणीयो हि विधिः । ईदृशमिदानीमेतत् ।]

विदूषकः—आप धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें। भवितव्यता टाली नहीं जा सकती। यह तो अब ऐसा ही है।

Vidushaka—Take courage, your honour, take courage. Fate is inevitable. It is thus now.

टिप्पणी—(१) धारयतु धारयतु—यह द्विषक्ति दृढता सूचित करने के लिए है। 'धारयतु' में स्वादिक निच् हुआ है। (२) अनतिक्रमणीयो हि विधिः—तात्पर्य यह है कि होनहार होकर रहता है। अब आपके भाग्य में ही पत्नी-वियोग लिखा था तो उसे कोन टाल सकता था। इसलिए आपको शोक नहीं करना चाहिए प्रत्युत धैर्य धारण करना चाहिए। न अनतिक्रमणीयः इति अनतिक्रमणीयः नञ् समास।

राजा—वयस्य ! न जानाति भवानवस्थाम् । कुतः—

राजा—मित्र ! आप मेरी दशा को नहीं जानते हैं। क्योंकि—

King—Friend, you do not realise my present condition, दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् । यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह^१ बाण्यं प्राप्तानूण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥७॥

१. विमुच्येत—पाठान्तर। यह अधिक शुद्ध है क्योंकि संसार में प्रिय के वियोग से धाँसू बहाये जाने का नियम है।

अन्तय—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम्, स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति । तु यात्रा एषा यत् इह बाष्पं विमुच्य प्राप्तानृष्या बुद्धिः प्रसादं याति ॥७॥

संस्कृत टीका—बद्धमूलः—बद्धं मूलं यस्य स दृढ इत्यर्थः, अनुरागः—प्रेम, त्यक्तुं—विस्मृतुं, दुःखम्—प्रतिकठिनम्, स्मृत्वा स्मृत्वा—पुनः पुनः तत्प्रेम संस्मृत्य, दुःख—कष्टं, नवत्वं—नवीनता, याति—गच्छति । तु—तथापि, यात्रा—लोकव्यवहारः, एषा—इयम्, यत्, इह—अत्र, बाष्पम् भ्रश्रुजलम्, विमुच्य—विस्मृत्य, प्राप्तानृष्या—प्राप्तम् लब्धम् आनृष्यम् ऋणस्य भ्रमावः तत्प्रेम्णो निष्कृतिर्येषा सा तथामृता, बुद्धिः—मनः, प्रसादं—प्रसन्नताम् शान्तिमिति यावत्, याति—प्राप्नोति । (अयं भावः—वासवदत्ताविरहाकुल. उदयनः वसन्तक कथयति—मित्र ! अहं कथमपि वासवदत्तां स्मृतिपयादपनेतुं न शक्नोमि । यतो हि प्रगाढ प्रेम दुस्त्यजं भवति । तच्च प्रेमपात्रस्य स्मरणेन नवं दुःखं ददाति । तथापीयं लोकोत्तियत् नृत्तं प्रेमपात्रमुद्दिश्य जना रोदन्ति । रोदनेन दुःखमारो लघूभवति तथा प्रियजनप्रेमरूपस्य ऋणस्य निर्वर्तनेन मनः प्रसन्नताम-धिगच्छति) ॥७॥

अनुवाद—जमी हुई जड़ वाले प्रेम को मूल जाना बड़ा कठिन है । बार-बार उसका स्मरण करने से दुःख नया हो जाता है । तो भी व्यवहार यही है कि यहाँ (इस लोक में) भाँसू बहाकर ऋण से छुटकारा पाया हुआ मन शान्ति प्राप्त कर लेता है ॥७॥

its repeated
shedding
ess.

टिप्पणी—(१) दुःखम्—यहाँ 'अनुरागः' वर्ता के अनुसार 'दुःखम्' की जगह 'दुःखकरः' प्रयोग होना चाहिए था, ऐसा कोई-कोई धारण करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है । क्योंकि दुःख शब्द निष्प ननुसङ्गिण है । अतएव यह 'वेदा प्रमाणम्' की तरह अनेक सिग धीर वचन की नहीं छोड़ सकता । अथवा वही-वही सिग धीर वचन वा प्रयोग सम्बद्ध सजा से स्वतन्त्र होकर भी निपा जाना है—'सिगवचनस्यापि सामान्योपक्रमात्' अतएव 'गण्यम् धातिङ्गितुं पवनः' यह वातिदास का प्रयोग धीर 'गण्य स्वमाणादिभिरपि क्षुत् प्रतिहन्तुम्' यह महामाध्यकार का प्रयोग समत होता है । (२) स्मृत्वा स्मृत्वा—यहाँ बत्वा प्रत्यय चिन्तनीय है । क्योंकि 'गमानकृतं' योः पूर्ववाले' मूल से समानकृतं का धारण

रहने पर कत्वा होता है। यहाँ स्मृ और या घातु मिश्र-कर्तृक है। 'स्मृत्वा' के भागे 'व्याकुलीमबतः' या 'स्थितस्य' इस प्रकार के पद का प्राक्षेप कर लेने से काम चल सकता है। अतएव 'रथे च वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते' इत्यादि श्लोकों में प्रयोग-संगति बैठती है। इसी प्रकार भागे 'विमुच्य' में भी अभ्याहार से काम चलाना चाहिए। (३) यात्रा त्वेषा—यहाँ तात्पर्य यह है कि इस लोक में आसू बहाने से मन उच्छ्रय होकर शान्ति का अनुभव करता है। क्योंकि मनुष्य धनने बिछुटे प्रिय जन के श्रृण से श्रृणो हो जाता है। जब वह उसकी स्मृति में आसू बहा लेता है तब उसका श्रृण चुक जाता है और मन में शान्ति मिलती है। इसलिए शोक-सन्तप्त को अवश्य रो लेना चाहिए। नवमूति ने लिखा है 'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।' (४) प्राप्तानृष्या—श्रृण से मक्ति। न श्रृणम् अनृणम् (नन् तत्पु०) तस्य भावः आनृष्यम्। प्राप्तम् आनृष्यं यथा सा (ब० व्री०)। इस श्लोक में शालिनी छंद है ॥७॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिष्णं खु तत्तहोदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि। (निष्क्रान्तः) [अश्रुपातविलसं खलु तत्र भवतो मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।]

विदूषकः—महाराज का मुँह आसू से भीग गया है। मैं तब तक मुँह धोने के लिए जल ले आता हूँ। (चला गया।)

Vidushaka—(Aside) His countenance is wet with falling tears I will fetch water to efface the stain. (Exit).

पद्मावती—आय्ये! गण्पाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं जावणि-
वकमह्य। [आय्ये! याण्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम्।
यावन्निष्क्रामामः।]

पद्मावती—आय्ये! आर्यपुत्र का मुँह आसूओं से व्याप्त होने के कारण मानो वस्त्र से ढँक गया है। इस बीच हम लोग निकल चलें।

Padmarati—Lady, the King is weeping and his face is hidden in his robe, Let us go hence.

वासवदत्ता—एव्वं होतु। अह्वा चिट्ठ तुवं। उव्वकण्ठिदं भत्तारं उज्जिअ,
अजुत्तं निगमजं। अहं एव्व गमिस्सं। [एवं भवतु। अथवा तिष्ठ

त्वम् । उत्कण्ठनं भर्तारमुज्झित्वायुक्तं निर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि ।]

वासवदत्ता—ऐसा ही हो । अथवा तुम रहो । उत्कंठा से युक्त पति को छोड़कर चला जाना उचित नहीं है । मैं ही जाऊँगी ।

Vasava.—Let it be so or rather wait; it is improper to go leaving the lord in sorrow. I alone shall go.

चेटी—मुट्ठु अय्या भणादि । उवसप्पदु दाव भट्ठिदारिआ । [मुट्ठु-वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।]

वासी—देवी जी ठीक कह रही हैं । राजकुमारी स्वामी के पास जायें ।

Maid—The lady says the right thing. Go near him princess.

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ? [किन्तु खलु प्रविशामि ?]

पद्मावती—क्या मैं (उनके निकट) जाऊँ ?

Padmavati—Should I go near him ?

वासवदत्ता—हला ! पविस । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता ।) [हला ! प्रविश ।]

वासवदत्ता—सखी ! जाओ । (यह कहकर चली गई ।)

Vasava.—Friend go (saying this she goes away.)

विदूषकः—(प्रविश्य) (नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा) एसा तत्त होदी पदुमावदी ? [एसा तत्रभवती पद्मावती ?]

विदूषक—(प्रवेश करके) (नमलिनी के पत्रे में जल लेकर) ये भाननीया पद्मावती जी हैं ?

(entering), Vidushaka—(With water in a lotus led) Here is her ladyship Padmavati.

पद्मावती—अय्य ! वसन्तक ! किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक ! किमेतत् ?]

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

Padmavati—Revered Vasantak, what is this ?

विदूषकः—एवं इदं । इदं एदं । [एतदिदम् । इदमेतत् ।]

विदूषक—यह—यह—यह...

Vidushaka—This, this, this.

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्थो भणतु ।]

पद्मावती—कहिये कहिये, आप कहिये ।

Padmavati—Tell me, tell me, you say.

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण काशकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेणु सस्सुपादं खु तत्तहोदी मुहं । ता गहणवु होदी इदं मुखोदकं । [भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुणाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं तत्रभवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम् ।]

संस्कृत टीका—भवति—देवि !, वातनीतेन—वायुचाहितेन, काशकुसुमरेणुणा—काशपुष्पपरागेण, अक्षिनिपतितेन—नयनाभ्यन्तरं गतेन, साश्रुपातम्—अश्रुपातसमन्वितं, खु—निश्चयेन, तत्रभवतः—महाराजस्य, मुखम्—आननं (विद्यते) । तत्—तस्मात्, भवती—श्रीमती, इदम्—एतत्, मुखोदकं—मुखशुद्धिजलं, गृह्णातु—धारयतु ।

अनुवाद—विदूषक—देवि ! काश के फूल की धूल हवा में उड़कर महाराज की आँखों में पड़ जाने से आँसू बह आये हैं । इसलिए उनके मुँह घोने का यह जल आप लीजिये ।

Vidushaka—Your ladyship, His honour's face became full of tears by the wind-blown, pollen of the Kasha flowers falling in his eyes, therefore madam, take this water for washing his face.

टिप्पणी—(१) अश्रुपातविलम्बम्—आसुओं के बिरने से मीमा हुआ । अश्रुणां पातः, तेन विलम्बम् । √क्लिद्+क्त(त), 'रदाम्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' इति सूत्रेण सकारदकारयोर्नत्वम् । (२) मुखोदकम्—मुँह घोने का पानी । मुखप्रक्षालनोदकम् मुखोदकम् मध्यमपदलोपी समास । बाष्पाकुलपटान्तरितम्—वाष्पेण—अश्रुणा आकुलं—व्याप्तम्, धतः पटेन—वस्त्रेण इव अन्तरितम्—आच्छादितम्, बाष्पाकुलं च तत् पटान्तरितं बाष्पाकुलपटान्तरितम् विशेषणोभयपद कर्मधारय समास कुञ्जसञ्जवत् । (३) उत्कण्ठितम्—उत्कण्ठा—इतच् 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इत्यनेन । (४) उज्जित्वा—त्यक्त्वा । (५) एतत् इदम् इदम् एतत्—यहाँ पद्मावती के अप्रत्याशित दर्शन से विदूषक घबड़ा गया है । इसलिए पद्मावती के प्रश्न का उत्तर वह अस्पष्ट रूप में 'यह-यह...' कहकर देता

है । अथवा वह इतना प्रत्युत्पन्नमति है कि पद्मावती को मूलावा देने के लिए हास्य का पुट देकर उत्तर देता है—(६) । एतत्—यह । इदम्—यह अर्थात् जल है । इदम्—यह । एतत्—यह अर्थात् जल ही है । अथवा एतत्—नलिनी के पत्ते का दोना और इदम्—जल ।

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदविष्णुणस्स जणस्स परिजणो वि सदविष्णुणो एव्व होदि (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो । इदं मुहोदअं ।
[अहो ! सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजतोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति ।
जयत्यार्यपुत्रः । इदं मुखोदकम् ।]

पद्मावती—(मन में) अहा ! चतुर व्यक्ति का सेवक भी चतुर ही होता है । (समीप जाकर) आर्यपुत्र की जय हो । यह मुँह धोने का जल है ।

Padmarati—(aside) A clever man has clever followers, (going near) Ah hail my husband. Here is water to wash your face.

टिप्पणी—(१) अहो ! सदाक्षिण्यस्य —यहाँ पद्मावती अपने मन में कहती है कि जैसा चतुर स्वामी है वैसा ही नौकर भी । क्योंकि स्वामी अपने मन का भाव किसी पर प्रकट नहीं होने देते । उसी तरह उनका सेवक कितना चतुर है कि उसने सत्य बात को छिपा कर अपने स्वामी की बात रखी है । यदि सेवक मूर्ख होता तो झट से कह देता कि वासवदत्ता की याद में रो रहे हैं । तब कितनी विषम स्थिति हो जाती? उसने अपने स्वामी को ऐसी स्थिति से बचा लिया है, इसलिए निःसन्देह वह भी स्वामी की तरह चतुर है ।

राजा—अये ! पद्मावती । (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

राजा—अरे ! पद्मावती ! (मुँह फेरकर) वसन्तक ! यह क्या ?

King—Padmavati ? (aside to Vidushaka) How is this ?

विदूषकः—(कर्ण) एवं विद्म । [एवमिव]

विदूषक—(कान में) इस प्रकार ।

Vidushaka.—(whispers in the King's ear then aside) that's how I managed it.

राजा—साधु वसन्तक ! साधु । (आचम्य) पद्मावती ! आस्यताम् ।

राजा—वाह वसन्तक ! वाह । (मुँह धोकर) पद्मावती ! बैठ जाओ ।

King—Well done Vasantak, well done (washing the face). Padmavati, sit down.

पद्मावती—जं श्रय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति ।) [यदार्थपुत्र
आज्ञापयति ।]

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा । (बैठती है ।)

Padmavati—As my lord wills.

राजा—पद्मावती !

राजा—पद्मावती !

King.—Padmavati.

टिप्पणी—(१) अपवार्य—पद्मावती की तरफ में मुँह घुमाकर विदूषक की ओर करके । नाट्यशास्त्र में अपवार्य या अपवारित शब्द पारिभाषिक है । इसका अर्थ होता है—दूसरे को सुनने न देने के लिए दूसरी तरफ घूम जाना—‘रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्याऽपवारितम्’ । (२) एषमिव—ऐसा । इव शब्द अलंकारार्थ है । यहाँ विदूषक ने राजा के कान में यही कहा कि मैंने पद्मावती जी से आपकी आँखों में काश-पुष्प की-धूल पड़ जाने से आँसू आ जाने की बात बताया है, इसलिए आप भी अपने रोने का कारण यही बताइयेगा ।

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।

काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥८॥

अन्वय—भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखम् साश्रुपातम् (अस्ति) ॥८॥

संस्कृत टीका—भामिनि !—सुन्दरि ! शरच्छशाङ्कगौरेण—शरत्कालीन-चन्द्रवत् घबलेन, वाताविद्धेन—वातेन वायुना आविद्धेन चालितेन, काशपुष्प-लवेन—काशकुसुमकणेन, इदम्—एतत्, मम—उदयनस्य, मुखम्—आननम्, साश्रुपातम्—अश्रुपातेन अश्रुजलपतनेन सहितम् (अस्ति) ।

अनुवाद—सुन्दरी ! शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल काश-पुष्प का कण हवा में उड़कर आँखों में पड़ जाने से मेरे मुँह पर आँसू ढुलक गये थे ॥८॥

My face is bedewed with tears, oh lovely woman, by the wind blown pollen of the kasha flowers, white like the autumnal moon.

टिप्पणी—(१) भामिनि !—सुन्दरी स्त्री तथा क्रोध करने वाली स्त्री को भी भामिनी कहते हैं । ‘कोपना सर्वं भामिनी’ इत्यमरः । (२) शरच्छशाङ्क-

गौरेण—शरदः भद्राङ्कः पण्ठी तत्पुरुष, शरच्छाङ्क इव गौरः उपमित समास-
तेन । (३) वाताविद्धेन—वायु द्वारा चालित होकर । (४) आविद्ध—कम्पित,
चालित । 'आविद्धं कुटिलं भुग्नं विलितम्' इत्यमरः । (५) काशपुष्पतयेन—
काश-पुष्प के कण से । काशस्य पुष्पम् तस्य सवः तेन (५० त०) करणे या हेतु-
मे तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है । यह अनुष्टुप् छंद है ॥८॥

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।

कामं धीरस्वभाव्यं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥९॥

अन्वय—नवोद्वाहा इयं बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथा व्रजेत् । इयं कामं धीरस्व-
भावा तु स्त्रीस्वभावः कातरः ॥९॥

संस्कृत टीका—नवोद्वाहा—नवः नूतनः उद्वाहः विवाहः यस्याः सा तथानूता,
इयं—दृश्यमाना, बाला—पौडसी (पद्मावती), सत्यं—तथ्यं, श्रुत्वा—श्रावण्यं,
व्यथा—वेदना, व्रजेत्—गच्छेत् । इयं—पद्मावती, कामं—पर्याप्तं, धीर-
स्वभावा—धीरः गम्भीरः स्वभावः प्रकृतिः यस्याः सा तादृशी (अस्ति),
तु—किन्तु, स्त्रीस्वभावः—स्त्रीणाम् नारीणां स्वभावः प्रकृतिः, कातरः—अधीरः
(भवति) ॥९॥

अनुवाद—(मन मे) नई व्याही हुई यह बाला सच्ची बात (रोने का
वास्तविक कारण) सुनकर पौडा अनुभव करेगी । यद्यपि यह बड़ी गम्भीर
प्रकृति की है, किन्तु नारियों का स्वभाव तो अधीर होता है ॥९॥

(Aside) she is but a child, and newly married, and the truth
would grieve her. It's brave heart and yet it is a woman's, there-
fore by nature it is timid.

टिप्पणी—(१) नवोद्वाहा—नवविवाहिता, नवोद्वा । (२) बाला—
मोल्ह वगैरे की प्रवस्था वाली स्त्री । 'मागोद्वाहादमवेद्वाता तरुणी तत
उज्ज्वले' । (३) कामम्—पर्याप्त । 'कामं प्रवाम पर्याप्तं निकामेष्ट पर्येष्टम्'
इत्यमरः । (४) कातरः—अधीर, चंचल । 'अधीरः कातरः' इत्यमरः । यहाँ
अनुष्टुप् छंद है ॥९॥

विदूषकः—उद्दंडं तत्तहोवो मप्रघराप्रस्त अवाहणकाले भवन्तं प्रगदो
करिषु मुहिज्जनदंसणं । सप्रकारो हि नाम सप्रकारेण पडिचिद्वो

‘योदि उत्पादेदि । ता उद्धेदु दाव भव । [उचितं तत्रभवतो मगध-
राजस्यापरहणकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो
हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । तदुत्तिष्ठतु तावद्
भवान् ।]

संस्कृत टीका—तत्रभवतः—माननीयस्य, मगधराजस्य—मगधेश्वरस्य,
अपराह्णकाले—दिनस्य चतुर्थभागे, भवन्तम्, उदयनम्, अग्रतः कृत्वा—पुरो
विधाय, सुहृज्जनदर्शनम्—बन्धुजनसाक्षात्कारः, उचितम्—योग्यम् (अस्ति) ।
हि—निश्चयेन, सत्कारः—सम्मानः, सत्कारेण—सम्मानेन, प्रतीष्टः—स्वीकृतः,
प्रीतिम्—दोषम्, उत्पादयति—उद्भावयति । तत्—तस्मात् कारणात्, भवान्
—महाराजः, उत्तिष्ठतु—उत्थानं करोतु ।

वित्थक—माननीय मगधराज (दर्शक) ने आपको आगे करके अपराह्ण मे
‘मित्र-मण्डली’ से मिलने का समय तय किया है । क्योंकि यह निश्चित एवं
‘प्रसिद्ध’ है कि सत्कार का बदला सत्कार से दिये जाने पर प्रीति उत्पन्न करता
है । इसलिए आप उठें ।

Vidushaka—It would be proper, if his honour, the King of
Magadha sees his friends this afternoon beginning from your
honour, attention (सत्कार) begets love if received with courtesy.
Therefore rise, your honour.

टिप्पणी—(१) अपराह्णकाले—अह्ण.अपरम् इति अपराह्णः ‘पूर्वापरा-
चरोत्तरमेकदेशिनंकाधिकरणे, इति सूत्रेण एकदेशिसमाप्तः, ‘अह्नोऽह्ण एतेभ्यः’ इति
सूत्रेण अह्णदेशः ‘अह्नोऽदन्तात्’ इति सूत्रेण नस्य णत्वम् । अपराह्णस्य कालः
अपराह्णकालः, तस्मिन् । (२) सत्कारो हि नाम—यहाँ वित्थक राजा को
‘पद्मावती’ के पास से ले जाना चाहता है, इसलिए वह कहता है कि आज दोपहर
के बाद मगधराज आपको आगे करके अपने मित्रों से मेल करेंगे । आप मगधेश्वर
के इस आदर को सादर ग्रहण करें । क्योंकि आदर के साथ स्वीकार किया हुआ
आदर प्रेम उत्पन्न करता है । इसलिए आप उठिये, चलिये ।

राजा—बादम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

राजा—हाँ, यह तो पहला काम है । (उठकर)

King—This is an excellent idea. (Rising).

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।

कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः १०॥

(निष्क्रान्तः सर्वे ।) इति चतुर्थोऽङ्कः

(सब का प्रस्थान ।) चौथा अंक समाप्त ।

अन्वय—विशालानां गुणानां वा सत्काराणां च कर्तारः लोके नित्यशः सुलभाः, तु विज्ञातारः दुर्लभाः ॥१०॥

संस्कृत टीका—विशालानाम्—अतिमहताम्, गुणानां—परोपकारादिसत्कार्याणां, वा—तथा, (विशालानां) सत्काराणां—परपूजाभिनन्दनादीनां च, कर्तारः—सम्पादयितारः, लोके—जगति, नित्यशः—सततं प्रतिदिनमिति यावत्, सुलभाः—सुप्राप्याः (सन्ति) तु—परन्तु, विज्ञातारः—विशेषेण ज्ञातारः गुणग्राहिण इति यावत्, दुर्लभाः—दुष्प्राप्याः (भवन्ति) । (अयं भावः—इह संसारे उपकर्तारः तथा सत्कर्तारः बहवः उपलभ्यन्ते । परं परकृतोपकाराणाम् परकृत-सत्काराणां च भादतारः विरलाः दुर्लभ्यन्ते । अतः सम्प्रति मगधराजसत्कार-भादतुं मया तत्सन्निधौ अवश्यं गन्तव्यम् ॥१०॥

It is easy to find people possessed of noble virtues and showing courtesy but it is difficult to find those who admire (virtues and courtesy). (Exeunt omnes) Here ends Act IV.

अनुवाद—(परोपकार आदि) अत्यन्त महान् गुणों एवं सत्कारों के करने वाले लोग तो संसार में नित्य मिल जाते हैं, परन्तु (उन गुणों तथा सत्कारों के जानने वाले (अर्थात् भादर पूर्वक स्वीकार करने वाले लोग) कम मिलते हैं ॥१०॥

(सबका प्रस्थान ।) चौथा अंक समाप्त ।

टिप्पणी—(१) अयमः कल्पः—मुख्य या प्रधान कार्य । 'मुख्यः स्यात् अयमः कल्पः' इत्यमरः । (२) गुणानाम् सत्काराणाम्—यह! 'कर्तारः' के योग में 'कर्तृकर्मणोः' कृति' मूल से कर्ता में पड़ी हुई । इस श्लोक में वा शब्द और च शब्द सम्बन्धव्यापक है । 'विशालानाम्' का अन्वय 'गुणानाम्' और 'सत्काराणाम्' दोनों से है । इस श्लोक में प्रस्तुत साक्षर ज्ञान के साथ अप्रस्तुत गुणज्ञानादि के प्रकाशन में दीनकातार है । शल्लक्षणश्च साहित्यदर्पणे—अप्रस्तुत-प्रस्तुतयोर्दीपकं तु निमग्नते । अथ चारुक्रमेण स्यादनेकानु त्रिषाणु चैव । अनूप्यं चैव ॥१०॥

अथ पद्ममोऽङ्कः

Act V.

(राजा पद्मावती की शिरोव्यथा की सूचना पाकर समुद्रगृह में जाते हैं और वहाँ रोगशय्या को रिक्त पाकर उस पर लेट जाते हैं । विदूषक के कम्बल लाने के लिए बाहर जाने पर वासवदत्ता भी सूचना मिलने से वहाँ आ जाती है और पद्मावती के घोड़े राजा के बगल में लेट जाती है । उसके हस्तस्पर्श से राजा की निद्रा भंग होती है । तब तक वह निकल जाती है । वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ता है पर टक्कर खाकर गिर जाता है । इतने में उसे समाचार मिलता है कि सेनापति रुग्णवान् मगधराज की सहायता से शत्रु आरुणि पर चढ़ाई करने जा रहा है । इस पर महाराज उदयन भी युद्ध में भाग लेने के लिए बाहर चल पड़ते हैं ।)

(ततः प्रविशति पद्मिनिका ।)

पद्मिनिका—मधुकरिण ! मधुकरिण ! आगच्छ दाव सिग्धं ।
[मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(तदनन्तर पद्मिनिका का प्रवेश ।) पद्मिनिका—मधुकरिका ! मधुकरिका ! जल्दी तो आओ ।

(Then enter Padminika) Padminika—Come, Madhukarika, come here at once.

(प्रविश्य)

मधुकरिका—हला ! इमस्मि । किं करोमद् ? [हला ! इयमस्मि, किं क्रियताम् ?]

(प्रवेश करके) मधुकरिका—सखी ! यह मैं हूँ, क्या करें ?

(Entering) Madhukarika—Well, here I am, Padminika, what shall I do ?

पद्मिनिका—हला ! किं न जानासि त्वं भट्टिद्वारिणा पद्मावती
सीसवेदनाय दुःखीविदेति [हला ! किं न जानासि त्वं भट्टिद्वारि-
रिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

मधुकरिका—सखी ! क्या तुम नहीं जानती कि राजकुमारी पद्मावती सिरदर्द से पीड़ित हैं ।

Padminika—Friend do you not know that princess Padmavati is suffering from headache ?

मधुकरिका—हृदि । [हा धिक् ।]

मधुकरिका—हाय ! हाय !

Madhukarika—Oh what a pity.

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्धं, अग्र्यं आवन्तिअं सदावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि । [हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्याभावन्तिकां शब्दायस्व केवलं भट्टिदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । स्वयमेवागमिष्यति ।]

पद्मिनिका—सखी ! जल्दी जाओ, आर्या आवन्तिका को बुला लामो । केवल राजकुमारी को मिर-पीड़ा ही (उनसे) बताना । वे स्वयं यही आएंगी ।

Padminika—Run then and call the lady of Avanti, Just inform her that the princess has a headache, and she will come here of her own accord.

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला ! किं सा करिष्यति ?]

मधुकरिका—गत्ती ! वे क्या करेंगी ?

Madhukarika—Well, what will she do ?

पद्मिनिका—सा एव दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवेदणं णिवेदि । [सा छल्विदानो मधुराभिः कयाभिः भट्टिदारिकाया शीर्षवेदनां विनोदयति ।]

पद्मिनिका—वे इस समय सुन्दर कथाओं से राजकुमारी का सिरदर्द दूर करेंगी ।

Padminika—She will allay the headache of the princess by interesting stories.

मधुकरिका—जुज्जइ । कहि सअणोयं रद्धवं भट्टिदारिआए ? [युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भट्टिदारिकायाः ?]

मधुकरिका—ठीक है । राजकुमारी को क्या वहाँ लगी है ?

Madhukarika—That will be splendid. But where has the Princess been laid ?

पद्मिनिका—समददगिहके कित्त सेज्जा त्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अग्र्यवसन्तथं अण्णेतामि । [समद्रगृहके कित्त शय्या स्तोर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भट्टिनिवेदनाय-मार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।]

पद्मिनिका—समुद्रगृह मे शय्या बिछी है । अब तुम जाओ । मैं भी स्वामी से निवेदन करने के लिए भ्रायं वसन्तक को ढूँढ़ती हूँ ।

Padminika—I expect the bed is spread in the summer house. You go now. I shall also seek the noble Vasantaka for informing the lord.

मधुकरिका—एवम् होदु । (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु ।]

मधुकरिका—ऐसा ही हो (चल देती है ।)

Madhukarika—Let it be so (exit.)

पद्मिनिका—काह् दारिणं श्रय्यवसन्तकं पेक्खामि ? [कुत्रेवानोमायं- वसन्तकं प्रेक्षे ?]

पद्मिनिका—इस समय मैं भ्रायं वसन्तक को कहाँ देखूँ ?

Padminika—And where shall I find noble Vasantaka now ?

टिप्पणी—(१) प्रावन्तिकाम्—मालव की रहने वाली को । (२) शब्दा-
यत्व—आवाज दो । शब्दं करोति इति शब्दायते, शब्द+क्यङ् 'शब्दवैरकलहाभ्र-
कण्वमेधेभ्यः कर्णे' इति सूत्रेण, ततः लट्—त । इसी नामधातु के लोट् लकार
मध्यम पुरुष एकवचन में 'शब्दायस्व' रूप बनता है । (३) विनोदपति—दूरी
करिष्यति वा लघूकरिष्यति । अत्र वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट् (४) समुद्र-
गृहके—जल-यन्त्रों द्वारा तापनियन्त्रित गृह । 'समुद्रगृहमित्युक्तं जलयन्त्रनिकेतनम्'
इति हारावली । आजकल इसी समुद्रगृह को अग्रेजी भाषा में 'एयरकन्डिशन'
कहते हैं । (५) शम्पनीयम्—शय्या । शोते अस्मिन्, शी+अनीयम् ।
(६) रञ्जितम्—बिछी हुई है । (७) स्तीर्णा—बिछायी हुई । √स्तु+क्त (त),
'ऋत इद्धातोः' इति सूत्रेण इत्वम्, रपरः, दीर्घः, 'रदाम्याम्'—इत्यादि सूत्रेण तस्य
नरत्वम् । (८) शय्या—शोते अस्याम् इति शय्या, √शी+क्यप् 'संज्ञाया समज-
नियद' इत्यादिना ।

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अञ्ज खु देवीविभोअबिहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स
पटुमावदीपाणिगहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे
मदनगिगिदाहो अहिअदरं वडडड । (पद्मिनिका विलोष्य) अयि
पटुमिणिआ ! पटुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अथ खलु देवी-

विषोगविधुरस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहण-
समोरितस्पात्यन्तमुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं
यधते । अयि ! पद्मिनिका ! पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ?]

संस्कृत टीका—अय्य —अस्मिन् दिवसे, खलु इति वाक्यालङ्कारे, देवीविषोगः
विधुरस्य—देव्या यास्यदत्ताया विषोगेन विरहेण विधुर व्याकुलं चेतः चित्तं यस्य
तस्य, तत्रभवतः—माननीयस्य, वत्सराजस्य—उदयनस्य, पद्मावतीपाणिग्रहण-
समोरितस्य—पद्मावत्याः मन्धराजकुमारीः पाणिग्रहणेन विवाहेन हेतुना
समोरितस्य सन्धुक्षितस्य विषयामिमूलं प्रवर्तितस्य इति यावत्, अत्यन्तमुखावहे—
अतिप्रमोदजनके, मङ्गलोत्सवे—मङ्गलमये समये मदनाग्निदाहः—कामानल-
सन्तापः, अधिकतरं—बहुविधया राविशेषं, यधते—वृद्धिं प्राप्नोति । अयि इति
आश्चर्यं, पद्मिनिके !, किमिह वर्तते ? किमयं मन्त्रागतस्ति ?

अनुवाद—(तदनन्तर विदूषक का प्रवेश ।) [महारानी वासवदत्ता के
विषोग से व्याकुल माननीय वत्सराज की कामाग्नि की ज्वाला पद्मावती के
विवाहस्पर्षी वायु से प्रदीप्त होकर आज इस महान् सुख देने वाले शुभ उत्सव में
और अधिक बड़ रही है (पद्मिनिका को देखकर) अरे ! पद्मिनिका !
पद्मिनिका ! यहाँ कैसे हो ?

(Then enter the Vidushaka), Vidushaka—Today, indeed
fanned by the marriage with Padmavati the torment of the fire
of love of his honour Vatsaraj his heart suffering from the
separation of the queen, has greatly increased on this very
pleasant and auspicious festive occasion (seeing Padminika) oh
Padminika what is the thing here ?

पद्मिनिका—अय्य ! वसन्तक ! किं न जानासि भट्टिदारिका
पद्मावती सीसवेदनाए दुःखाविदेति । [आयं ! वसन्तक ! किं
न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

पद्मिनिका—आयं वसन्तक ! क्या आप नहीं जानते कि राजकुमारी
पद्मावती सिर-दर्द से दुःखित हैं ।

Padminika—Revered Vasantak, do you not know that the
princess is suffering from headache.

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ? न जानामि ! [भवति ! सत्यं ?
न जानामि ।]

विदूषक—प्रजी ! सच ? मैं नहीं जानता ।

Vidushaka—Is it so ? I do not know.

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं । जाव अहं वि सोसा-
णुलेवणं तुवारेमि । [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि
'शोर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

पद्मिनिका—तो घ्राप स्वामी से यह निवेदन कर दीजिये । तब तक मैं
भी सिर का लेप जल्दी तैयार करती हूँ ।

Padminika—You report this to the lord, meanwhile I shall
prepare the ointment for the head.

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदोए ? [कुत्र शयनीयं
रचितं पद्मावत्याः ?]

विदूषक—पद्मावती जी की शय्या कहां लगाई गई है ?

Vidushaka—Where has the bed of Padmavati been arranged ?

पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल सेज्जात्थिण्णा । [समुद्रगृहके
किल शय्यास्तीर्णा ।]

पद्मिनिका—समुद्रगृह में शय्या बिछी है ।

Padminika—The bed is in the Samudragrih.

विदूषकः—गच्छतु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं ।
[गच्छतु भयती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि ।]
(निष्क्रान्तो ।) (प्रवेशकः)

विदूषक—घ्राप जाइये । मैं भी महाराज से निवेदन किये देता हूँ ।
(दोनों का प्रस्थान ।) (प्रवेशक समाप्त) ।

Vidushaka—You go, I too shall tell it to King. (Both retire)
(Here ends the Pravesha).

टिप्पणी—(१) पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य—पद्मावती के हाथ बिराह
होने से बिपयोपमोग में प्रवृत्त । वस्तुतः यहाँ—'समीरितः' पाठ होना चाहिये,
जो 'मदनान्मिश्रः' का विशेषण होगा । इसी पाठ के अनुसार हिन्दी अनुवाद
किया गया है । (२) घपि !—यह आश्चर्यपूर्णक घटपट है । (३) शोर्षानुलेपनं-
त्वरयामि—गिर पर लेप लगाने की प्रयोग तैयार करने के लिए शीघ्रता कर

रही हूँ । (४) प्रवेशकः—दो अंकों के बीच का एक प्रकार का अंक जिसमें निम्न पात्र न दिखायी हुई तथा भावी घटनाओं की सूचना देते हैं । यहाँ पद्मावती की अस्वयता तथा उसके समीप राजा का गमन रूप भूत एवं भविष्यत् कालिक घटनाओं की सूचना मिलती है ।

(ततः प्रविशति राजा ।) राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्ग्यपि तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥१॥

अन्वय—कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहं) श्लाघ्याम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं तां तनूजां लावाणके हुतवहेन हृताङ्ग्यपि हिमहता पद्मिनीम् इव चिन्तयामि ॥१॥

संस्कृत टीका—कालक्रमेण—समयगत्या वासवदत्तानिघनात् कतिपयमा-
सानन्तरम् इत्यर्थः, पुनरागतदारभारः—पुनः भूयः आगतः आयातः दाराणां
पत्न्याः भारः यस्मिन् स तथाभूतः, (अहं) श्लाघ्या—प्रशंसनीयाम्, अवन्तिनृपतेः—
उज्जयिनीपतेः, सदृशीम्—अनुरूपाम्, तां—प्रसिद्धां, तनूजां—पुत्री, लावाणके—
एतन्नाम्नि ग्रामे, हुतवहेन—अग्निना, हृताङ्ग्यपि—हृता दग्धा अङ्ग्यपिः
तनुवता यस्याः तादृशीम्, हिमहतां—हिमेन तुषारेण हतां विनष्टां, (मुकुमारांगी
नारी दुःखेनोपहृता हिमहतपद्मिनीपतीति तत्र तत्र काव्ये—“हिमसेकविपत्तिरत्र
मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं यता” रघुवश । “जातां मन्ये शिशिरमयितां पद्मिनी वान्य-
रूपाम्” मेघदूत ।) पद्मिनी—कमलिनीम्, इव—तद्वत् चिन्तयामि—ध्यायामि ।
(अयं भावः—वासवदत्ताविनाशानन्तरं कियत्यपि काले व्यतीते अहमनिच्छन्नपि
पद्मावतीपरिग्रहणमारेणाक्रान्तो जातः । किन्तु प्रशस्तपुणशालिनो महाराजप्रद्योत-
स्थानुरूपा पुत्री मदीया प्रियतमा वामवदत्ता, या किल तुषारपातेन पद्मिनीव
लावाणकग्रामे अग्निना दग्धदेहा अमूर्त्, सततं भस्मरणपदवीं ग्राहते ॥१॥

अनुवाद—(तदनन्तर राजा का प्रवेश ।) (समय बीतने पर फिर पत्नी के भार को स्वीकार कर लेने वाला मैं उज्जैन के राजा के अनुरूप एवं प्रशंसनीय उस पुत्री को, जिसका डंडे के समान छरहरा शरीर लावाणक ग्राम में आग से जल गया, पाले से मारी हुई कमलिनी के समान याद कर रहा हूँ ॥१॥

(Then enter the King) King—Having again been burdened with a wife in course of time, I remember the esteemed, worthy

daughter of the King of Avantis, that had her slender body burnt (of carried away) by fire in Lavanak like a lotus smitten by frost.

टिप्पणी—(१) कालक्रमेण—समय के माहात्म्य से । कालस्य क्रमः, तेन । कारण मे तृतीया हुई । (२) पुनरागतदारमारः—दाराणां भारः दारमारः पष्ठी तत्पुरुष, पुनः आगतः पुनरागतः सुप्सुपा समास, पुनरागतः दारमारः यस्य स पुनरागतदारमारः बहुव्रीहि समास । दार शब्द पुल्लिङ्ग, बहुवचन में सदैव प्रयुक्त होता है यथा दाराः, दारान्, दारैः, दारेभ्यः आदि । (३) अवन्तिनृपतेः—यहाँ 'सदृशीम्' के योग में 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' सूत्र से पष्ठी हुई । अवन्तीनां नृपतिः तस्य अवन्तिनृपतेः । (४) श्लाघ्याम्—प्रशंसनीय । श्लाघ्+ष्यत्+स्त्रियाम् टाप् (भा) । (५) हुतवहेन—अग्नि द्वारा । 'अनृक्ते कर्त्तरि तृतीया' से तृतीया हुई है । वह्+अच् (पचाद्यच्) हुतस्य वहः पष्ठी तत्पुरुष । (६) हुताङ्गयष्टिः—अङ्गं यष्टिरिव इति अङ्गयष्टिः उपमित कर्मधारय समास, हुता अङ्गयष्टिः यस्याः सा हुताङ्गयष्टिः बहुव्रीहि । यद्यपि यहाँ पूर्वपद 'हुत' के 'हुतवह' शब्द से सापेक्ष होने के कारण समास नहीं होना चाहिए किन्तु 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' के अनुसार समास हुआ । (७) ताम्—यहाँ प्रसिद्धार्थक तत् शब्द है । इसलिए यत् शब्द की अपेक्षा किये बिना इसका प्रयोग हुआ है—'प्रकान्तप्रसिद्धानुमूतार्थविषयस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नापेक्षते' काव्यप्रकाश । (८) तनूजाम्—पुत्री को । तन्वाः जायते इति तनूजा तनू+जन्+ङ 'पञ्चम्या जनेङः' इति सूत्रेण, ततः स्त्रियां टाप् (भा), ताम् । इस श्लोक में कितना सजीव वर्णन प्रस्तुत किया गया है । जैसे चारों ओर मुगन्धि फैलाता हुआ एक विकसित कमल हिमपात से नष्ट हो जाता है वैसे ही यौवनोल्लास से शोभित, स्वस्थ एवं प्रसन्न वासवदत्ता क्रूर काल द्वारा हमारे मध्य से हटा ली गई है । इस कदनाजनक घटना से मैं शोक-सन्तप्त हूँ ॥१॥ इस पद्य में उदयन का वासवदत्ता के प्रति प्रगाढ़ रतिभाव व्यक्त हुआ है । इसमें उपमा और विशेषोक्ति भ्रंशकार है । तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे—“विशेषोक्ति-रलण्डेषु कारणेषु कलावचः ।” अर्थात् सम्पूर्ण कारणों के होने पर कल का न होना विशेषोक्ति भ्रंशकार है । इसमें वसन्ततिलक छंद है ॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—तुयरदु तुयरदु दाव भवं । [स्वरतां त्यरतां तावद् भयान् ।]

(प्रवेश करके) विदूषक—शोधता कोजिये, महाराज ! शोधता ।

(Entering) Vidushaka—Make haste, make haste, O King !

राजा—किमर्थम् ?

राजा—क्यों ?

King—Why ?

विदूषकः—तत्तहोदी पद्मावती सोसवेदनाए दुख्खाविदा । [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

विदूषक—माननीया पद्मावती जी सिर दर्द से पीड़ित हैं ।

Vidushaka—Her ladyship Padmavati is suffering from headache.

राजा—कैवमाह ?

राजा—किसने ऐसा कहा ?

King—Who has said so.

विदूषकः—पदुमिणिआए कहिदं । (पद्मिनिकया कथितम् ।)

विदूषक—पद्मिनिका ने कहा ।

Vidushaka—It was told by Padminika.

राजा—भोः ! कष्टम्,

राजा—आह ! कष्ट (देने वाली बात है) ।

King—Oh ! very sad.

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां लब्ध्वा प्रिया मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।
पूर्वाभिघातसरजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥
अय कस्मिन् प्रवेशे वर्तते पद्मावती ?

अन्वय—रूपश्रिया समुदिताम् च गुणतः युक्ता प्रिया लब्ध्वा पूर्वाभिघात-
सरजः अपि मम शोकः प्रय मन्द इव । तु अनुभूतदुःखः पद्मावतीम् अपि तथा
एव समर्थयामि ॥

संस्कृत टीका—रूपश्रिया—रूपस्य सौन्दर्यस्य श्रिया शोभया, समुदितां—
युक्ता, गुणतः—गुणैः, युक्तां—समन्विता, प्रियां—प्रेमास्पदं, लब्ध्वा—प्राप्य,
पूर्वाभिघातसरजः अपि—पूर्वः प्रायमिकः यः अभिघातः वासवदत्ताविनाशरूप-
आघातः तेन सरजः 'अपि पीडितमप्य अपि, मम—उदयनस्य, शोकः—दुःखम्,

अद्य—अधुना, मन्द इव—किञ्चित् न्यून इव (आसीत्) । तु—परन्तु, अनु-
भूतदुःखः—अनुभूतम् उपभुक्तं दुःखं कष्टं येन स तथाविधः (अहं), पद्मावतीम्
अपि—दर्शकमग्निनीम् अपि, तथा एव—वातवदत्तावदेव, समर्थयामि—मन्ये ।
(अयं भावः—रूपगुणसम्पत्तां पद्मावती तवपत्नीत्वेन लब्ध्वा मम वासवदत्ता-
निघनात्मकः शोकः किञ्चित् न्यून इव भूतः । परमिदानीं दुर्भाग्येभ्योऽहं चिन्तयामि
यत् कदाचिन् पद्मावती अपि मां दुःखसागरे निमज्जयित्वा दिवं यास्यति) ॥२॥

अनुवाद—रूप-सम्पत्ति तथा गुणों से युक्त प्यारी स्त्री को प्राप्त करके
पहली चोट से दुःखी हुये भी मेरा शोक अब कुछ कम-सा हो गया था । किन्तु
भुक्तभोगी होने के कारण मैं पद्मावती की भी उसी तरह (वासवदत्ता के समान
मर जाने वाली) समझ रहा हूँ ॥२॥

अच्छा, पद्मावती किस स्थान में है ?

Having obtained my beloved possessed of the beauty of form
and endowed with virtues, my grief had been somewhat mitigated
today; still suffering from the previous shock and having ex-
perienced the pain, I believe Padmavati to be also in the same
plight. And where is Padmavati now.

टिप्पणी (१) रूपधिया—सौन्दर्य की शोभा से । रूपस्य श्रीः, तथा ।
करण में तृतीया हुई । (२) समुदिताम्—समन्वित, युक्त । सम्—उद्/इ+
वत्(त)—टाप् (आ) । (३) गुणतः—गुणों से । गुण शब्द से तृतीयार्थ में
सार्वविभक्तिक तस् प्रत्यय । (४) पूर्वाभिधातसहजः—प्राथमिक आघात से
पीडित । √रञ्+क्विप्=रञ्=रोग, पीडा, रुजा सह वर्तमानः सख् 'तेन सहेति
तुल्ययोगे' इत्यनेन बहुव्रीहिसमासः. 'बोपसर्जनस्य' इत्यनेन सहस्य मादेशः,
पूर्वदचासी अभिधातः पूर्वाभिधातः कर्मधारयसमासः, तेन सख् इति पूर्वाभिधात-
सख् तृतीयातत्पुरुषसमासः । मम का विशेषण है । (५) मम—यहाँ 'कर्तृ कर्मणोः
कृति' सूत्र से कर्ता में पठ्ठी हुई । (६) शोकः—मन्द इव (भूतः) मेरा शोक
कुछ कम-सा हुआ । (७) तथैव—ठीक उसी तरह । अर्थात् 'स्नेहःपापशंकी'
इस न्याय से राजा का सोचना कि पद्मावती भी वासवदत्ता की तरह न
विनष्ट हो जाय । (८) समर्थयामि—सोचता हूँ, कल्पना करता हूँ । सम्/अर्थ
+णिच्+लट्—मिप् उ० पु० ए० व० । इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यासिग
अलकार है और वसन्ततिलका छंद है ॥२॥

विदूषकः—समुद्गिहके किल सेज्जा त्रिपण्णा । [समुद्गूहके किल
शय्या स्तोर्णा ।]

विदूषक—समुद्रगृह में तेज बिछायी गई है ।

Vidushaka—The bed is spread on the summer house.

राजा—तेन हि तस्य भार्गमादेशय ।

राजा—तो उसका रास्ता बताओ ।

King—Then show me its way.

विदूषकः—एदु एदु भवं । [एत्वेतु भवान् ।] (उभौ परिक्रामतः ।)

विदूषक—आइये, आइये महाराज ! (दोनों चलते हैं ।)

Vidushaka—Come on, come on, your honour. (Both go about).

विदूषकः—इदं समुद्रगृहकं । पविसदु भवं । [इदं समुद्रगृहकम् ।
प्रविशतु भवान् ।]

विदूषक—यह समुद्रगृह है । आप प्रवेश करें ।

Vidushaka—This is the palace. Be pleased to enter Sir.

राजा—पूर्वं प्रविश ।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो ।

King—Nay do you enter first.

विदूषकः—भो ! तह । (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं ।

[भोः ! तथा । अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

विदूषक—जी ! अच्छा । (प्रवेश करके) मोहो ! आप जरा ठहर जाइये, ठहर जाइये ।

Vidushaka—Well as you wish it (Enters) oh, horrible stay there, stay there sir.

राजा—किमर्थम् ?

राजा—क्यों ?

King—Why.

विदूषकः—एसो ए स दोषप्रभायसूइदरूपो यमुपातले परिवर्तमानो अत्रं कामोप्ररो ॥ [एष ए स दोषप्रभायसूचितरूपो यमुपातले परिवर्तमानोऽयं काकोदरः ॥]

विदूषक—यह दीये के उजाले में स्पष्ट दिखाई पड़ने वाला जमीन पर लोटता हुआ साँप है।

Vidushaka—This form which is clearly seen in the light of the lamp is a cobra lying on the ground.

राजा—[प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्] अहो ! सर्पव्यक्तिर्वंधेयस्य !

राजा—(पैठकर और देखकर मुस्कराते हुए) अहो ! मूर्ख इसे साँप समझ रहा है।

King—(Enters and looks laughing) (Aher.) The foolish fellow and his fancied serpent.

टिप्पणी—(१) तेन हि—यदि ऐसा है तो। यहाँ हि शब्द धाक्यालंकारार्थ है। (२) आदेशय—सूचक। आङ्पूर्वक दिशु धातु सिद्ध होता है। (३) एत्वेतु—यह द्विरुक्ति शीघ्रता-प्रकाशनार्थ है। (४) दीपप्रभावसूचितरूपः—दीपस्य प्रभावेण—सामर्थ्येन सूचितं—प्रकटीकृत रूपं—स्वरूपं यस्य सः अथवा दीपस्य प्रभया—प्रकाशेन अवसूचितं रूपम्—आकारो यस्य सः। (५) काकोदरः—साँप। 'कुण्डली गूढपान्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी' इत्यमरः। ईपत् अकति इत्यर्थे अक कुटिलायां गतो इति धातोः पचादित्वात् अच्प्रत्यये 'ईपदर्थे च' इत्यनेन कोः कादेशो काकम् इति रूपम्, तादृशम् अर्थात् ईपत् कुटिलगतितम् उदरं यस्य स काकोदरः। (६) अहो ! सर्पव्यक्तिर्वंधेयस्य—हाय ! मूर्ख को साँप जान पड़ता है ! यहाँ तात्पर्य यह है कि जिस वस्तु को विदूषक ने साँप समझा था, वह तोरणमाला थी। अतएव राजा कहता है कि इस मूर्ख को तोरणमाला का भी जान नहीं है, जो उसे सर्प मान रहा है। (७) बंधेय—मूर्ख, जो दूसरों के बताने पर ही कोई कार्य करता है। विधेयं विधान तस्य अगम् अधिकारी इति विधेय+अण्।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां

भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम् ।

मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना

किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥३॥

अन्वय—मूर्ख ! त्वम् तु ऋज्वायताम् क्षितौ भ्रष्टाम् मुखतोरणलोलमालाम् हि सर्पम् अवगच्छसि या निशि मन्दानिलेन परिवर्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि किञ्चित् करोति ॥३॥

संस्कृत टीका—मूर्ख ! —मूढ !, त्वं तु—मवान् कित, ऋज्वायताम्—
 ऋजुः सरला चासी आयता च दीर्घा च ताम्, क्षितौ—पृथिव्यां, भ्रष्टा—
 पतिता, मुखतोरणलोलमाला—मूर्खं मुख्य यत् तोरणं गृहस्य बहिर्द्वारं तत्र या लोला
 धञ्चला माला पुष्पसक्ता, हि—निश्चयेन, सर्पम्—ग्रहिन्, अवगच्छसि—
 जानासि, या—तोरणमाला, निशि—रात्रौ, मन्दानिलेन—मन्दवायुना, परिवर्त-
 माना—परितः स्पन्दमाना, मुजगस्य—सर्पस्य, विचेष्टितानि—चलनानि,
 किञ्चित्—ईपत्, करोति—विदधाति । (अयं भावः—वसन्तक ! नायं सर्पः,
 इयं किल समुद्रगृहस्य बहिर्द्वारे लम्बमाना सरला दीर्घा च पुष्पमाला वर्तते, या हि
 मूमो पतिता तथा मन्दपवनेन कम्पिता सती सर्पस्य इव चेष्टितानि करोति ।
 अतो माला सर्पत्वेन अवगच्छन्तस्तव मोक्षं प्रशंसतोपमसि ।) ॥३॥

अनुवाद—मूर्ख ! तुम तो सीधी, लम्बी और धरती पर गिरी हुई बाहर
 के द्वार के महाराज की चंचल माला को, जो रात्रि में मन्द-मन्द वायु से हिलती
 हुई कुछ-कुछ साँप की चेष्टायें कर रही है, साँप समझ रहे हो ॥३॥

Oh fool, you believe the long and straight hanging garland
 of the front entrance (now) fallen on the ground to be a ser-
 pent; which, waved little by the gentle wind at night, makes the
 movements of serpent.

टिप्पणी—(१) मूर्ख ! —मूर्खति इति मूर्खः, √मृह् + क्त, मूर् धादेशः
 'मृहेः सो मूर्च' इत्योणादिकमूत्रेण, तत्सम्बुद्धौ । (२) ऋज्वायताम्—ऋजुश्चासी
 आयता च विशेषणोभयपदकर्मधारय समास, ताम् । आह + यम् + क्त (त) कर्त्तरि +
 स्त्रिया टाप् (आ)—आयता । (३) मुखतोरणलोलमालाम्—मुखं यत् तोरणं
 कर्मधारय समास अववा मुखे द्वारे तोरणम् सप्तमी तत्पुरुष, लोला चासी माला
 लोलमाला कर्मधारय, मुखतोरणे लोलमाला सप्तमी तत्पुरुष, ताम् । (४) तोरण—
 किमी घर या नगर का बाहरी दरवाजा 'तोरणोऽस्य बहिर्द्वारम्' इत्यमरः ।
 (५) सर्पम्—यह विधेय होने पर भी उद्देश्य 'माला' के लिंग से मिश्रता
 रगता है । सो इसका समाधान 'उद्देश्ये च विधेये च विभक्तिः सदृशी भवेत् ।
 कदाचिज्जायते तत्र संप्रत्यं लिंगसंशयोः' इस कारिका के बल से करना
 चाहिए । इस श्लोक में भ्रान्तापह्नुनि भक्तवार है सत्प्रज्ञम्—'भ्रान्तापह्नु-
 निरगस्य वाक्या भ्रान्तिवारणे' । यहाँ पर माला में विद्रूपक को सर्प की भ्रान्ति
 हुई । उसका निराकरण राजा द्वारा किये जाने में भ्रान्तापह्नुनि भक्तवार हुआ ।
 इसमें वसन्ततिथि का छन्द है ॥३॥

विदूषकः—[निरूप्य] सुट्ठु भवं भणादि । ण हु अअं काओअरो ।
 (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिगदा
 भवे । [सुट्ठु भवान् भणति । न खत्वयं काकोदरः । तत्रभवती
 पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।]

विदूषक—(गौर से देखकर) आप ठीक कह रहे हैं । यह साँप नहीं है ।
 (भीतर जाकर घौर देखकर) गान्धीया पद्मावती यहाँ आकार चली गई होगी ।

Vidushaka—(Looking closely) Rightly says your honour.
 Really it is not a snake (Entering and looking) the ladyship
 padmavati must have come here and gone out.

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम् ।

राजा—मित्र आई न होंगी ।

King—Friend, she must not have come.

विदूषकः—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

विदूषक—कैसे आप जानते हैं ?

Vidushaka—How do you know ?

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

राजा—इसने जानना क्या है ? देखो—

King—What is there to know ? see.

शय्या नावनता तयास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
 न विलष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातोपधः ।
 रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
 प्राणो प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥४॥

भावय—हि शय्या तथा आस्तृतसमा धवनता न, व्याकुलप्रच्छदा न, अमलं
 शिरोपधानं शीर्षाभिघातोपधः न विलष्टम्, रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित्
 शोभा न कृता, पुनः प्राणी रुजा शयनं प्राप्य शीघ्रं स्वयं न मुञ्चति ॥४॥

संस्कृत टीका—हि—यतः, शय्या—शयनीयम्, तथा—पूर्ववत्, आस्तृत-
 समा—आस्तृता कुयादास्तरणेन युक्ता सा चासी समा आविषमा, धवनता न
 शरीरमारेण किञ्चिदपि धवनति न प्राप्ता, व्याकुलप्रच्छदा न—व्याकुलः इतस्ततः

संकुचितः प्रच्छदः निचोलपटः आवरणपट इति यावत् यस्याः सा तयामूता न, भ्रमलं—निमलं, शिरोपधानम्—उपबर्हणम्, शोषान्निघातोपघः—शिरवेदना-
निग्रहसमर्थः शोषविशेषः, न क्लृष्टम्—न दूषितम्, रोगे—व्याधौ सति, दृष्टिविलोभनम्—नयनाकर्षणं, जनयितुम्—उत्पादयितुम्, काचित्—कापि,
शोभा—मिती चित्रलेखनादिसम्भवं सौन्दर्यं, न कृता—न विहिता । पुनः—
अन्यच्च, प्राणी—शरीरधारी, रुजा—रोगेण, शयनं—शय्यां, प्राप्य—सम्प्राप्य,
शीघ्रम्—आशु, स्वयं—स्वतः, न मुञ्चति—न त्यजति । (अयं भावः—राजा-
समुद्रगृहे पद्मावस्थनागमनसाधकानि प्रमाणानि दर्शयन् कथयति—यदि सा आगता-
मवेत् तर्हि शय्या किञ्चिदपि अव्यवस्थिता भवितुं युक्ता तथा प्रच्छदपटे बलीमञ्जने
भाव्यम्, किन्तु तदेतन्न दृश्यते किमपि । किञ्च निमले शिरःस्थानीयोपधानेऽपि
तिरसि वेदनापनोदनस्योपघस्य लेपेन मृनायपि मालिन्यं न लक्ष्यते । अपरञ्च
व्याधिकाले दृष्टिविरोधार्थं मिती चित्रादिभिः कापि शोभा न रचिताऽस्ति ।
अन्यच्च रोगातुरो जबः शयनं प्राप्य शीघ्रं स्वयमेव तत् त्यक्त्वा अन्यत्र न
गच्छति ॥४॥

अनुवाद—जित लिए कि बिछोना उसी प्रकार बिछा हुआ है, दवा हुआ
नहीं है । चादर सिकुड़ी हुई नहीं है । भच्छा तकिया शिर-पीड़ा की शोषधियों
से मैला नहीं हुआ है । रोग में मौलों को बहलाने के लिए कोई सजावट नहीं
की गई है । और प्राणी रोग के कारण बिस्तर पर पहुँच कर अपने आप शीघ्र
उभे नहीं छोड़ता है ॥४॥

The couch has not been pressed, its sheets are smooth, coverlet has not been disarranged; the pillow shows no mark of pressure and no ornaments attractive to the sight have been devised to please the patient's mind. Be sure of this, a person who has found a bed in sickness will not leave it lightly.

टिप्पणी—(१) आस्तमसा—फैली हुई और बराबर । आस्तुता घानो
समा कर्मधारय समास आह+यु+ञ् (त) कर्मणि+स्त्रियाम्+टाप् (भा)—
आस्तुता । (२) अयनता—शुकी हुई या दबी हुई । अय+तम्+ञ् (त)—
टाप् (भा) । (३) व्याकुलप्ररुद्धा—जिगरी चादर सिकुड़ गई हो । व्याकुलः
प्ररुद्धः यस्याः सा बहुश्रीहितामा । प्रच्छद—विद्यावन की चादर । 'निचोलः
प्रच्छदः' इत्यमरः । प्र+छृ+णि+य 'पु'णि गज्यायं यः प्रायेण' इति सूत्रेण,
'छादेयं व्युपगमस्य' इत्यनेन ह्रस्वः । (४) शिरःस्थानम्—तकिया । शिर

‘उपधीयते स्याप्यते यत्र तत् शिरोपधानम् । यहाँ शिर शब्द अकारान्त है । क्योंकि -कोश में कहा है—‘शिरोवाची शिरोऽदन्तो रजोवाची रजस्तया’ । और इसके प्रयोग भी मिलते हैं—‘पिण्डं दद्यात् गयाशिरे’, ‘विचर्तुं शिरान् द्रोणिः’ ।
 (५) शीर्षाभिघातोपधः—शीर्षस्य अभिघातः पण्ठी तत्पुरुष, तस्य ओपधानि (तादर्थ्ये पण्ठीतत्पुरुषसमासः) तैः क्लिष्टम् के योग में अनुक्ते कर्तरि तृतीया । शिरोवेदना की ओपधियों से । क्लिश्+क्त (त) —क्लिष्टम् । अभि+हन्+घञ् (अ) —अभिघातः । (६) रोगे—इसमें ‘यस्य च भावेन भावलक्षणम्’ सूत्र से भाव में पण्ठी हुई । (७) दृष्टिविलोभनम्—आँखों को बहलाने वाली । दृष्टयोः विलोभनम् (पण्ठी तत्पुरुष) । (८) जनयितुम्—जन्+णिच्+तुमुन् । उत्पन्न करने के लिए । (९) रजा—अन्न हेतु तृतीया । इस पद्य में पूर्वोक्त हेतुओं से पद्मावती के अनागमन रूप साध्य की सिद्धि होने के कारण अनुमान भ्रंशकार है और शादूलविक्रीडित छन्द है ॥४॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सिं सय्याए मूहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदिं पडिवालेदु भवं । [तेन ह्यस्यां शय्यायां मूहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान् ।]

विदूषक—तो आप कुछ देर इस शय्या पर बैठकर श्रीमती की प्रतीक्षा करें ।

Vidushaka—Then why not sit down here upon the bed and wait the lady's coming.

राजा—याडम् । (उपविश्य) वयस्य ! निद्रा मां बाधते । कथ्यतां काचित् कथा ।

राजा—अच्छा । (बैठकर) मित्र ! मुझे नीद सता रही है । कोई कथा बहो ।

King—Very well (sits down) I feel an overwhelming drowsiness. Tell me some story.

विदूषकः—अहं कहइस्सं । हों त्ति करेदु अत्तभवं । [अहं कथयिष्यामि । हो इति करोत्यत्रभवान् ।]

विदूषक—मैं कहूँगा । आप हुंकारी देते जाइये ।

Vidushaka—If I tell you one will you say “Hem” to show that you hear me ?

राजा—याडम् ।

राजा—भच्छा ।

King—Yes.

विदूषकः—अतिय णमरो उज्जयिनी नाम । तर्हि अहिअरमणीआणि उदअट्ठवाणाणि वत्तन्ति किल । [अस्ति नगयुज्जयिनी नाम । तत्राधिकरमणीयान्मुदकस्तनानि वर्तन्ते किल ।]

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है । वहाँ अत्यन्त रमणीय जलाशय हैं ।—

Vidushaka—There is a city named Ujjain, where there are various glorious bathing places.

राजा—कयमुज्जयिनी नाम ?

राजा—कया उज्जयिनी ?

King—Oh what Ujjaini ?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं । [यद्यनभिप्रेतं कथा, अन्यं कथयिष्यामि ।]

विदूषकः—यदि यह कथा नहीं रुचती हो तो दूसरी बहूँ ।

Vidushaka—If this story is not agreeable I shall tell another.

राजा—ययस्य ! न खलु नाभिप्रेतं कथा । किन्तु,

राजा—यित्र ! यह बात नहीं है कि मुझे यह कथा अच्छी नहीं लगती ।

विदूषक—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥५॥

अन्वय—प्रस्थानकाले स्वजनं स्नेहात् स्मरन्त्याः प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं बाष्पं
ममैव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि ॥५॥

संस्कृत टीका—प्रस्थानकाले—प्रयाणसमये, स्वजनं—बन्धुवर्गं, स्मरन्त्याः
—ध्यायन्त्याः, स्नेहात्—प्रेम्णः, प्रवृत्तम्—उद्भूतं, नयनान्तलग्नम्—अपाङ्गयोः
संसक्तम्, बाष्पम्—अश्रु, ममैव—मदीय एव, उरसि—वक्षःस्थले, पातयन्त्याः
—मुञ्चन्त्याः, अवन्त्याधिपते—भवन्तिराजस्य, सुतायाः—पुत्र्याः, स्मरामि
—चिन्तयामि । (अयं भावः—राजा कथयति—मित्र ! मम निषेधस्य कारण-
मिदं वर्तते यत् उज्जयिनीशब्दश्रवणमात्रेण अहं वासवदत्तायाः प्रस्थानकालिकं
दृश्यम् अस्माप्यम् । तदानीं सा मदर्थे परित्यज्यमानं पित्रादिकं विचिन्तयन्ती
जनजागरणमपात् तूष्णीमेव अजदत् । तस्याः नयनयोः प्रवहमानया अश्रुधारया
मम वक्षःस्थलं विलग्नं सञ्जातम् भवो ! कीदृशं तत् मामिकं दृश्यम् !) ॥५॥

अनुवाद—चलने के समय अपने परिवार वालों का स्मरण करती हुई
और स्नेह के कारण निकले हुए एवम् आँखों की कोर में लगे आँसुओं को मेरी
ही छाती पर गिराती हुई भवन्तिराजकुमारी की याद कर रहा हूँ ॥५॥

But I remember the daughter of the King of Avantis, think-
ing of her relations at the time of starting and shedding, on my
chest through affection, the gushing tears clinging to the
corners of her eyes.

टिप्पणी—(१) स्मरन्त्याः—यह 'सुतायाः' का विशेषण है । स्मृ+दातृ+
स्त्रियां ङीप् । (ई) स्मरन्ती । तस्याः (२) स्नेहात्—यहाँ हेतु मे पंचमी हुई ।
(३) प्रवृत्तम्—स्रबते हुए । प्र+वृत्+क्त (त) । (४) नयनान्तलग्नम्—आँखों
के कोनों में रके हुए । नेत्रों के कोनों को अपाङ्ग कहते हैं और अपाङ्ग से देखने
को कटाक्ष । 'अपाङ्गो नेत्रयोरन्ते कटालोऽपाङ्गदर्शने' इत्यमरः । (५) बाष्पम्—
आँसू । यह 'पातयन्त्याः' का कर्म है । (६) अवन्त्याधिपतेः—मासव देश के
स्वामी की । यह प्रयोग अपाजिनीय है । क्योंकि समास करने पर 'अवन्त्याधिपतेः'
होगा और सामान्य न करने पर 'अवन्त्या अधिपतेः' । ऐसी स्थिति में 'आ सामन्ताद्
भावेन अधिपतिः, आधिपतिः, अवन्त्याः आधिपतिः अवन्त्याधिपतिः, तस्य' इति
तरह मान कर काम चला सकते हैं । अथवा 'गवा स्वामी', 'भूया स्वामी' आदि

की तरह तृतीयान्त 'प्रवत्या' पद मान 'अधिपति' के साथ 'दीर्घसन्धि' करने से शब्द रूप कहा जा सकता है । (७) सुतायाः—यहाँ 'स्मरामि' के योग में 'अधीगर्ग्यदेशां कर्मणि' सूत्र से पठ्ठी हुई । इस श्लोक के प्रथम चरणमें उपेन्द्र-वज्रा (धोर शेष तीन चरणों में इन्द्रवज्रा के होने) के कारण उपजाति छंद है 'स्यादिन्द्रवज्रा यदिती जगो गः ।' 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गो ।' 'अनन्तरो-दीरितसधममाजो पादो यदीयावुपजातयस्ताः' ॥५॥

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया ।

हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

अन्वय—उपदेशेषु माम् ईक्षमाणया यया स्रस्तकोणेन हस्तेन बहुधाः अपि आकाशवादितं कृतम् ॥६॥

संस्कृत टीका—उपदेशेषु—शिक्षानु, माम्—उदयनम्, ईक्षमाणया—पश्यन्त्या, यया—वासवदत्तया, स्रस्तकोणेन—स्रस्तः च्युतः कोणः वीणावादन-साधनीभूतो वस्तुविशेषो यस्मात् स तथाविधः तेन, हस्तेन—करेण, बहुधाः अपि—अनेकवारमपि, आकाशवादितम्—आकाशे शून्ये वादितं वादनं, कृतम्—अनुष्ठितम् (धनं भावः—यदा किल वासवदत्ता भूतो वीणावादनकलां शिक्षते स्म तदा सा प्रेमातिरेकेण सततं मन्मुखीकर्षितदृष्टिः आसीत् । तेन च तदानीं स्वकीयहस्ताच्च्युत कोणं न ज्ञातवनीं सा । ततश्च सा मुख्यं वीणां वादयितुम् अङ्गुलित्यापारणं कृतवती । तत् तस्या मृग्याचरणमिदानीं स्मराम्यहम् ।) ॥६॥

अनुवाद—(वीणा) सिखाते समय मेरी ओर एकटक देखती हुई त्रिताने छूटे हुए वीणा बजाने के मन्त्र वाले हाथ से अनेक बार शून्य स्थान में बजाने की त्रिया की सी (उसी प्रिया का स्मरण कर रहा हूँ) ॥६॥

And again, Many a time on occasion of instruction, while (she was) looking at me, her hand, from which the plectrum has dropped, would aimlessly move in the sky.

टिप्पणी—(१) उपदेशेषु—शिक्षा देने समय । यहाँ अधिचरण में सप्तमी हुई । (२) ईक्षमाणया—देखती हुई । √ईक्ष्+तट्—गानप्, मुगागम् । (३) स्रस्तकोणेन—त्रिताने मित्रराज गिर चुरी हो । स्रस्तः कोणो यस्मात् मः, तेन । (४) कोण—मित्रराज, तार का बना छत्ता त्रिमरी नोक में आघात करके सितार, तानपूरा आदि बजाते हैं । 'कोणो वीणादिवादन' इत्यमरः । इसकी

‘सारिका’ भी कहते हैं। ‘द्वयोस्तु कोणो वीणादिर्वादनं सारिका च सा’ इति शब्दार्णवः। यहाँ ध्रुव में ‘श्रवत्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि’ इस पूर्व श्लोक के वाक्य से सम्बन्ध समझना चाहिए। (५) आकाशवादितम्—आकाशे वादितम् (स० तत्पु०) वादनम् तालदत्तम्, उक्ते कर्मणि प्रथमा। वासवदत्ता महाराज उदयन पर इतनी मूढ़ थी कि मिजराव के सरक कर गिर पड़ने पर हाथ शून्य में धूम रहे थे पर वीणा से किसी प्रकार का तान न निकलने पर भी उसे कुछ मान न होता था। यह अनुष्टुप् छंद है ॥६॥

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं। अत्थि नअरं ब्रह्मदत्तं णाम। तहिं किल राघ्वा कंपिल्लो णाम। [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम।]

विदूषकः—अच्छा, दूसरी (कथा) कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नामक एक नगर है। वहाँ का राजा काम्पिल्य है।

Vidushaka—Oh, very well, I will tell another tale. There is a city named Brahmadatta, where there reigned a King named Kampilya.

राजा—किमिति किमिति ?

राजा—क्या क्या ?

King—What, what do you say ?

विदूषकः—[पुनस्तदेव पठति।]

विदूषक—(फिर वही कहता है।)

Vidushaka—Again repeats the same.

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

राजा—मूर्ख ? ‘राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य’—ऐसा कहो।

King—Oh fool, you should say King Brahmadatta, and the city of Kampilya,

विदूषकः—किं रामा ब्रह्मदत्तो, नअरं कंपिल्लं ? [किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् ?]

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

Vidushaka—What, King Brahmadatta and the city of Kampilya ?

राजा—एवमेतत् ।

राजा—हाँ, ऐसा ही ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पाडिवालेदु भवं, जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राअ्रा ग्रहदत्तो, णअरं कंप्पिल्लं । (इति बहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणि सुणादु भवं । अयि! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदत्ता इअं वेला । अत्तणो पावारअं गणिल्लअ आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) तेन हि महुत्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ग्रहदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानो शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् ? अतिशीतलेपं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

विदूषकः—तो आप जरा ठहर जाइये, जब तक मैं इसे कंठस्थ कर लूँ । राजा ग्रहदत्त, नगर काम्पिल्य । (इस प्रकार उसी को कई बार कहकर) अब आप सुनिये । भरे ! आप सो गए ? इस समय बहुत ठंड पड़ रही है । मैं अपनी चादर लेकर आता हूँ । (चल देता है ।)

Vidushaka—Then your honour should wait for some time; in the meantime I shall get it on my lips—King Brahmadatta city of Kampilya (thus he repeats the same many a time.) Now let your honour hear Oh, his honour is asleep, the hour is very cold. I shall bring my mantle and come, (Exit)

(ततः प्रविशति वामवदत्ता आयत्तिकावेपेण, चेटी च ।) चेटी—एदु एदु अय्या ! दिडं णु भट्टिदारिआ सोसवेदणाए दुक्खायिदा । [एवेत्थार्या । दडं खलु भत्तदारिका शीयंवेदनया दुःखिता ।]

(तदनन्तर घननिवासिनी के वेश में वामवदत्ता घोर दासी का प्रवेश ।)

दासी—आइये, आर्या ! आइये । राजकुमारी जी गिर दर्द से बहुत व्याकुल है ।

Then enter Vasavadatta in Avantika's garb and a maid) Maid—Come on, madam, come on. The princess is pained, indeed severely, by headache.

वासवदत्ता—हृदि ! कहि सप्रणीअं रद्धं पदुमावदीए ? [हायि ! कुप्रशयनीय रचितं पद्मावत्याः ?]

वासवदत्ता—आह ! कष्ट ! ! पद्मावती की शय्या कहाँ लगी है ?

Vasava.—Oh how painful, where is the bed of Padmavati spread ?

चेटी—समुद्रगृहके किल सेज्जा स्थिष्णा । [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा ।]

बासी—समुद्रगृह में सेज बिछी है ।

Maid—It is told the bed spread in the summer house.

वासवदत्ता—तेण हि अगदो याहि । [तेन ह्यग्रतो याहि] उभे परिक्रामतः।]

वासवदत्ता—तो तुम आगे-आगे चलो । (दोनों चलती हैं ।)

Vasava.—Then walk in front. (Both walk)

चेटी—इदं समुद्रगृहकं । पविसद् अय्या । जाव अहं विं सीता-
णुलेवणं तुवारेमि । (निष्क्रान्ता ।) [इदं समुद्रगृहकम् । प्रवि-
शत्वार्या यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

बासी—यह समुद्रगृह है । आर्या अन्दर चलें । तब तक मैं भी निर के
सेप के लिए जल्दी करती हूँ ।

Maid—This is the summer house your ladyship may enter
just I shall expedite the unction for the headache.

टिप्पणी—(१) नगरं ब्रह्मवर्त्तं नाम—यहाँ विदूषक ने राजा को हँसाने के
लिए नगर के नाम की जगह राजा का नाम और राजा के नाम के बदले नगर का
नाम ले लिया । (२) किल—यह प्रतिद्वन्द्वक अव्यय है । (३) काम्पित्य—
यह दक्षिण पाञ्चास की राजधानी का नगर था । अब भी कम्पिला के नाम से
प्रसिद्ध है और फर्रुखाबाद जिले का एक कस्बा है । द्वीपदी वा जन्म यही हुआ
था । (४) मुहूर्तकम्—लग्न भर । यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से द्वितीया
हुई । (५) श्रोष्ठगतम्—मुत्तस्य; कंठस्य । (६) प्रावारकम्—घोड़ने का
वस्त्र, चादर, भोड़ना । प्र+वृ (प्राच्छादन)+घञ् 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये
बहुलम्' इति सूत्रेण उपसर्गस्य दीर्घः=प्रावार+क (स्वार्थे)=प्रावारकः, तम् ।
(७) एतु एतु—यहाँ शीघ्रता सूचित करने के लिए दो बार उच्चारण किया गया
है । (=) बुद्धम्—अत्यधिक । क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया । (८) शीर्षवेदनपा-

सिरददं से, हेतु मे तृतीया हुई है। (१०) दुःखिता—दुःखम् सञ्जातम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे दुःख+इतच् तारकादित्वात् ततष्टाप् (घ्रा) । अथवा कण्ड्वा-दिगणीय दुःख् तत्क्रियायाम् घातु से क्त प्रत्यय करने पर इसकी सिद्धि होगी । (११) शीघ्रानुलेपनम्—निर ददं को सान्त करने वाला लेप । (१) त्वरयामि—त्वरया मम्पादयितुं गच्छामि इत्यर्थः ।

वासववत्ता—अहो ! अकरुणा खु इससरा मे । विरहपय्यस्सुअस्स अय्यउत्तस्स विस्समत्थाणभूदा इअं वि णाम पदुमावदो अस्सत्या जादा । जाय पविसामि । (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजनस्स पमादो । अस्सत्य पदुमावदि केवलं दीयसहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदो ओमुत्ता । जाय उवविसामि । अहव अञ्जासण-परिगहेण अणो विअ तिणेहो पडिभादि । ता इमास्सि सय्याए उवविसामि । (उपविश्य) कि णुहु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पट्ठादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठआ अविच्छिण्ण-सुहणिस्तासा । णिव्युत्तरोआए होदव्वं । अहव एअदेससवि-भाअदाए सअणीअस्स सूपदि मं आलिङ्गेहि ति । जाय सइस्सं । (शयनं नाटयति ।)

[अहो ? अकरुणाः सत्योद्वेग मे । विरहपयस्सुकस्यार्थपुत्रस्य विश्रमस्यानभूतेषमपि नाम पद्यायत्यस्वस्या जाता । यायत् प्रविशामि । अहो ! परिजनस्य प्रमादः । अस्वस्या पद्यायतीं केवलं दीपसहायां कृत्वा परित्यजति । इयं पद्यायत्यवमुप्ता । यायवु-पविशामि । अयवान्यासनपरिग्रहेणाल्प इय स्नेहः प्रतिभाति । तदस्यां शय्यायामुपविशामि । किन्तु सत्येतया सहोपविशन्त्या अथ प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्ट्याविच्छिन्नमुपनिःश्वता । नियन्त्रितरोग्या भवितव्यम् । अयवैदग्ध्यं शयिभागतया शयनीयस्य गूचयति मामासिङ्गेति । यायच्छयिष्ये ।]

मरुत टीका—अहो !—नेदगूचरमिदमव्ययम्, मे—मम, ईद्वराः—माय-देवताः, मरु—निश्चयेन, अकरुणाः—निर्दयाः (सन्ति) । विरह-पयस्सुअस्स—विरहेण विदोगेन पयस्सुअस्स व्यावृत्तिनियोगः, अय्यपुत्रस्य—स्थामिनः, विश्रमस्यानभूताः—मनोविनोदासादम्, इअं—दृश्यमाना, पदुमावदी अति, नाम—वातवातद्वारापमव्ययमिदम्, अकरुणा—रुणा, जाता—अनूत् ।

यावत्—अस्तु, प्रविशामि—अन्तर्गच्छामि । अहो !, परिजनस्य—परिचारक-
वर्गस्य, प्रमादः—अनवधानता । अस्वस्थां—रुग्णां, पद्मावतीं, केवलं, दीप-
सहायां—दीप एव सहायः सहचरो यस्याः ताम् एकाकिनीमित्यर्थः, कृत्वा—
विधाय, परित्यजति—अत्याक्षीत् । इयं, पद्मावती, अवमुप्ता—मुप्तवती ।
यावत्—अधुना, उपविशामि—उपवेशनं करोमि । अथवा—आहोस्वित् अन्यामन-
परिग्रहेण—स्यानान्तरोपवेशनेन, स्नेहः—प्रेम, अल्प इव—न्यून इव प्रतिभाति—
प्रतीयते, तत्—तस्मात्, अस्यां—पुरोऽवस्थितायां, शय्याया, —शयनीये, उप-
विशामि । किन्तु खलु—किमिति, एतया—पद्मावत्या, सह—साकम्, उप-
विशन्त्याः—उपवेशनं कुर्वन्त्याः, मे—मम, हृदयम्—चित्तम्, अद्य—इदानीं
प्रह्लादितमिव—हृषीकेशमिव (जायते) । दिष्ट्या—मायेन, (इयम्) ।
अविच्छिन्नमुपनिःश्वासा—अविच्छिन्नः विच्छेदरहितः सुखः सुखपूर्वकः निःश्वासः
उच्छ्वासः यस्याः सा तादृशी (वर्तते) । (अतएव मनसा) निवृत्तरोगाया—
निवृत्तः अपगतः रोगः व्याधिः यस्याः सा तादृशी तया, भवितव्यम्—माव्यम् ।
अथवा, शयनीयस्य—शय्यायाः एकदेशविभागतया—एकदेशे एकत्र प्रदेशे
संविभागः पार्श्वदेन अवस्थितिः यस्य तत् तद्भावः तत्ता तया, सूचयति—इङ्गितं
करोति, इति—यत्, माम्—पद्मावतीम्, पालिङ्ग—परिष्वजस्व । यावत्—
अतः शयिष्ये—स्वप्स्यामि—

अनुयाव—वासवदत्ता—हाय ! मधुमुच विधाता मेरे प्रति निर्दय है । वियोग
से व्याकुल धार्यपुत्र के मनोविनोद का साधन यह पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई ।
अच्छा, भीतर चलो । (भीतर जाकर और देखकर) हाय ! दामिनी की अमाव-
धानता ! अस्वस्थ पद्मावती को केवल दीपक के सहारे पर छोड़ गई है । यह
पद्मावती सोयी है । अर बँठती हूँ । अथवा अलग आसन पर बैठने से स्नेह मे
बनी मालूम पड़ती है । इसलिए इसी सेज पर बैठ जाती हूँ । (बैठकर) अहा !
आज इसके साथ बैठनी हुई मेरा हृदय पुलकित-सा क्यों हो रहा है ? मोभाग मे
इतकी रात बिना रुकावट के सुख से चर रही है । (अतएव) इसे भीरोग होना
चाहिए । अथवा शय्या के एक भाग में सोने से (मानो) यह बह रही है कि
मेरा पालिगन करो । तो सोती हूँ । (सोने का अभिनय करती है ।)

Vasava.—Oh Indeed, God is cruel to me. This Padmavati
too, who had become the place of rest of his lordship, yearning
for me in my separation, has also become indisposed I shall now
enter (enters and seen), Oh, the blunder of servants ! They have

left the indisposed Padmavati with only the lamp to help (her). Here Padmavati is asleep. I shall just sit. Perhaps taking another (different) seat might show less affection indeed. Therefore I shall sit on this bed (sitting) why indeed does my heart, while I am sitting (here) today with her, seem delighted, as it were ? Happily her breath is uninterrupted and easy (continuous and good), She must be out of her illness. Can it be that, by sharing a portion of the bed she suggests that I should embrace her ? Then I shall lie down (or sleep) (she gesticulates sleep).

टिप्पणी—(१) अकरुणाः—निष्ठुर, क्रूर । यहाँ वासवदत्ता के कहने का तात्पर्य यह है कि मेरे विधाता बड़े क्रूर हैं, नहीं तो भला विपत्ति पर विपत्ति क्यों पड़ती । अब मेरे पति को सान्त्वना देने वाली यह पद्मावती भी बीमार पड़ गई । निःसन्देह देव मेने प्रति निर्दय हैं । अविद्यमाना करुणा येषां ते अकरुणाः 'नजोऽस्त्य-र्यानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इति वार्त्तिकेन नञ्बहुव्रीहिसमासः । विद्यमान इत्यस्य लोपश्च । (२) विश्रमस्थानभूता—मन बहलाने का साधन । विश्रमस्य स्थानम् पण्ठी तत्पुरुष, विश्रमस्थाने तुल्या इति विश्रमस्थानभूता अस्वपदविग्रहः नित्यमभासः । भूत=सम, तुल्या । (भूत इमादौ ... प्राप्ते वित्ते समे सत्ये' इति मेदिनी । (३) दीपसहायाम्—दीप ही जिसका एकमात्र साथी था । दीप एव सहायः यस्याः सा (व० वी०) ताम् । (४) अन्यासनपरिग्रहेण—अन्यत् आसनम् कर्मधारय, तस्य परिग्रहः य० त०, तेन हेतो तृतीया । यहाँ वासवदत्ता सोचती है कि भलप बैठने में स्नेह थोड़ा प्रतीत होता है, गहरा नहीं । यहाँ अभी गहरा प्रेम नहीं है वही सकोच और दिखावट होती है । परन्तु मुझमें और पद्मावती में अत्यधिक हार्द है, इसलिये मुझे अलग नहीं बैठना चाहिए । (५) प्रह्लादितमिव मे हृदयम्—प्रह्लाद आनन्द. सञ्जातोऽस्य तत् प्रह्लादितम्, प्रह्लाद+इतच् 'तदस्य मञ्जातम्' इत्यनेन । यहाँ कवि ने बड़ा ही मनोरम भाव प्रदर्शित किया है । क्योंकि वासवदत्ता जिसे पद्मावती समझ कर स्पर्श-सुख का अनुभव कर रही थी वह वास्तव में उसका प्रियतम ही था । इस रहस्य को न जानने के कारण वह आश्चर्य करती है कि न जाने क्यों आज मेरा मन प्रफुल्लित हो रहा है । मैं प्रतिदिन इसके साथ बैठती हूँ, पर आज का-सा सुख कभी अनुभव नहीं किया । क्या बात है ? कालिदास की कृतियों में यह भाव द्रष्टव्य है यथाः—'मनो हि जन्मान्तरसंगतिजम् ।' रघुवश० ७, १२ । 'तच्चेनसा स्मरति नूनमदोषपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसीहृदानि ।' अ०

शाकु० ५.२ (६) दिष्ट्या—सोभाग्य से, अध्यय । हेतु मे तृतीया हुई है ।
 (७) अविच्छिन्नमुखनिःश्वासा—न विच्छिन्नम् अविच्छिन्नम् (नश्वत्पु०)
 अविच्छिन्नं मुखं यस्मिन् सः (ब० श्री०), अविच्छिन्नमुखः निश्वासाः यस्याः सा
 (ब० श्री०) । बिना रुकावट मृच्चपूर्वक साँस लेने वाली । (८) निवृत्तरोग्या—
 रोगरहित । निवृत्तः रोगः यस्याः सा (ब० श्री०) तथा, अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया ।
 (९) एकदेशांविभाषतया—एक भाग मे होने से । एकश्चासी देशः एकदेशः
 एकदेशस्य संविभागः (प० तत्पु०) तस्य भावः तथा हेतौ तृतीया ।

विशेष—वासवदत्ता का यह स्वप्न भाषण उसके उग्ज्वल चरित्र का द्योतक
 है । पद्मावती के प्रति उसका साफन्यभाव नहीं है । उसे वह अपने दोक-संतप्त
 पति की सान्त्वना का साधन समझती है तथा उसकी भस्वस्पता से अत्यन्त व्यग्र
 हो जाती है । अपने पति के सुख के लिए यह प्रेम और त्याग आदर्श की पराकाष्ठा है ।
 राजा—[स्वप्नायते ।] हा वासवदत्ते !

राजा—(सपने मे) हाय वासवदत्ता !

King—(Talking in his sleep) Ah me Vasavadatta.

वासवदत्ता—[सहसोत्थाय] हं ! अय्यउत्तो, ण ह्व पदुमावदी । किं णु
 खु दिट्ठहि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम
 वंसणेण णिक्कलो संवत्तो । [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ।
 किन्तु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रति-
 ज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः ।]

वासवदत्ता—(झट उठकर) ऐं ! आर्यपुत्र, पद्मावती नहीं । क्या मैं देख
 सी गई हूँ ? निःसन्देह आर्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा का महान् उत्तरदायित्व
 मेरे देखे जाने से व्यर्थ हो गया ।

Vasava.—(Starting up) what ? the King ? It is the King and
 not Padmavati Have I been seen ? Then all my tail and care to
 keep the great resolve have been useless.

राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि !

राजा—हाय मालवराजकुमारी ।

King—Ah, princess of Ujjain.

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्ती । ण एत्थ कोच्चि
 जणो । जाव मुहुत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठि हिअअं च तोसेमि ।

[दिष्टया स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः । याव-
न्मूर्हतर्कं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।]

वासवदत्ता—भाग्य से आर्यपुत्र सपना देख रहे हैं । यहाँ कोई नहीं है ।
अतएव क्षण भर ठहर कर आँख और छाती को जुड़ा लूँ ।

Vasava.—Fortunately the King must be dreaming, There
is no body here; just for a while, I shall wait and gratify my
eyes and heart.

राजा—हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

राजा—हाय प्यारी ! हाय प्रिय छात्रे ! मुझे उत्तर दो ।

King—Oh dear ! Oh dear disciple give me an answer.

वासवदत्ता—आलवामि भट्टा ! आलवामि । [आलपामि भर्तः !
आलपामि ।]

वासवदत्ता—उत्तर देती हूँ, स्वामी ! उत्तर देती हूँ ।

Vasava.—I am speaking, I am speaking.

राजा—किं क्रुपितासि ?

राजा—क्या रुष्ट हो गई हो ?

King—What, are you angry ?

वासवदत्ता—णहि णहि दुस्सिद्धह्यि । [नहि नहि, दुःखितास्मि ।]

वासवदत्ता—नहीं, नहीं, मैं दुःखिता हूँ ।

Vasava.—No, no I am miserable.

राजा—यद्यक्रुपिता किमर्थं नालङ्कृतासि ?

राजा—यदि रुष्ट नहीं हो तो शृङ्गार क्यों नहीं किया ?

King—If you are not angry, why have you not put on
ornaments.

वासवदत्ता—इदो वरं किं । [इतः परं किम् ?]

वासवदत्ता—इससे बढ़कर क्या (अर्थात् मैं दुःखी हूँ, इससे बड़ा और क्या
कारण हो सकता है) ।

Vasava.—What would be better than this.

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

राजा—क्या विरचिका का स्मरण करती हो ?

King—Do you remember Virachika,

वासवदत्ता—[सरोषम्] आ अवेहि, इहापि विरचिआ ? [आ अवेहि, इहापि विरचिका ?]

वासवदत्ता—(क्रोधपूर्वक) आह ! हटो, यहाँ भी विरचिका ?

Vasava.—(Angrily) oh begone Virachika even here ?

राजा—तेन हि विरचिकार्यं भवतीं प्रसादयामि । [हस्तौ प्रसारयति ।]

राजा—तो विरचिका के लिए तुम्हें मनाता हूँ । (दोनों हाथ फैलाता है ।)

King—Then I beg pardon of your ladyship for Virachika.

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि । को वि मं पेक्खे । ता गमिस्सं । अहव सय्यावलम्बिअं अय्यउत्तस्स हत्थं सअणोए आरोविअ गमिस्सं । [चिरं स्थितास्मि । कोऽपि मां पश्येत् । तद् गमिष्यामि । अथवा शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि ।] (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता ।)

वासवदत्ता—बहुत देर ठहर गई । कोई मुझे देख लेगा । इसलिए चल दूँ । या शय्या पर से लटके हुए आर्यपुत्र के हाथ को शय्या पर रखकर चलूँ । (वंसा करके चली गई ।)

Vasava.—I have been here too long. Some one might see me. I will depart. But first let me replace His arm, which now is hanging from the bed. (Does so and exit.)

टिप्पणी—(१) स्वप्नायते—स्वप्न देखते हुए बोल रहा है । स्वप्न इव आचरति इति स्वप्नायते, स्वप्न+क्यङ्, दीर्घं+लट्—ते । यहाँ स्वप्न शब्द स्वप्नवत्परक है । अर्धमुप्तावस्था में जागरित अवस्था की वासना के अनुसार मन का विषयों का उपभोग करना स्वप्न कहलाता है । इसका लक्षण यह है—“इन्द्रियाणामुपरमे मनोज्ञुपरतं यदि । सेवते विषयानेव तद्विद्यात् स्वप्न-दर्शनम् ।” फिर इसके सात भेद हैं—“दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रापितः कल्पित-स्तथा । भावितो दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधः स्मृतः ।” (२) प्रतिज्ञाभारः—योगन्धरायण की प्रतिज्ञा थी कि वासवदत्ता को छिपाकर मगधराजकुमारी

पद्मावती के साथ उदयन का विवाह कराने के बाद मगधराज की सहायता से उदयन के खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेंगे । इसलिए वासवदत्ता घबड़ा रही है कि मेरे देते जाने पर मेरे जल जाने का सारा रहस्य खुल जाएगा । तब राजा दर्शनक मेरे स्वामी को सहायता नहीं देगा । फिर तो योगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञा-भार निष्कल ही है । (३) वृष्टिं हृष्यं च तोषयामि—इस पंक्ति से वामवदत्ता की महाराज उदयन को देखने की उत्कट अभिलाषा प्रकट होती है । बहुत दिनों से विमुक्त होने के कारण वह अपने पति के दर्शनार्थ अत्यन्त उत्सुक है तथा उसे जो भरकर देखना चाहती है । (४) विरचिकाम्—कथासरित्सागर के अनुसार विरचिका उदयन की प्रेमिका थी । एक बार मूल में उदयन ने वामवदत्ता को विरचिका के नाम से सम्बोधित कर दिया था, जिग पर वह नाराज हो गई थी । फिर उदयन ने उसके पर पकड़ कर मनाया था । (५) प्रा अपेहि—यही 'प्रा' ध्वन्य कोय घोर स्मरण का बोधक है । इसलिए 'वाक्यस्मरणयोरद्विन्' के अनुसार इसे 'निवान एवाजनाद्' सूत्र से प्रगृह्यमज्ञा और 'प्लुतप्रगृह्या घधि नित्यम्' सूत्र से प्रकृति-भाव होने कारण सवर्णदीर्घ नहीं हुआ । (६) हस्तौ प्रसारयति—स्वप्न में कृपित होकर भागती हुई वामवदत्ता की पर पकड़ कर मनाने के लिए राजा अपने दोनों हाथ फैलाना है । यहाँ स्वप्न में राजा को वामवदत्ता का दर्शन होता है । इसीलिए बघि ने इस नाटक का नाम 'स्वप्न-वासवदत्ताम्' रखा है । (७) शय्याप्रलम्बितम्—बलग ने नीचे सटकते हुए । शय्यायाः प्रलम्बितम् शय्याप्रलम्बितम् ।

राजा—[सहस्रोत्थाय] वासवदत्ते ! तिष्ठ, तिष्ठ । हा धिक् !

राजा—[एकाएक उठकर] वासवदत्ता ! ठहरो, ठहरो ! हाय ! हाय ! !

King—(Starting up) Vasavadatta stay. oh, stay, Alas.

निष्क्रामन् सम्प्रमेणाहं द्वारपथेन ताडितः ।

ततो द्यक्षन् न जानामि भूतार्योऽयं मनोरथः ॥७॥

अथ—सम्प्रमेण निष्क्रामन् अहम् द्वारपथेन ताडितः । ततः अद्यम् भूतार्यः मनोरथः । (इति) द्यक्षन् न जानामि ॥७॥

अनुवाद—जल्दी में निकलता हुआ मैं दरवाजे के किनारे से टकरा गया ।
 'इस लिए स्पष्ट रूप से नहीं जानता कि यह वास्तविक घटना थी या (मेरे)
 'मन का भाव (ही) ॥७॥

King—Rising in head long haste I ran against the door that
 bars my passage forth. and now I have no certainty whether or
 not this desire is a reality.

टिप्पणी—(१) सम्भ्रमेण—हड़बड़ी में वेग से । इसमें 'प्रकृत्यादिभ्य
 उपसंभ्यानम्' इस वार्तिक से तृतीया हुई । (२) भूतार्थः—मृतः—सत्यः अर्थः
 यस्य स भूतार्थः । 'मृत क्षमादो'.....'प्राप्ते वित्ते समे सत्ये' इति मेदिनी । यहाँ
 राजा के कहने का भाव यह है कि मैं नहीं जानता कि यह सत्य घटना है या
 मेरे मन का भाव, टक्कर लगने से मैं वासवदत्ता को न पकड़ सका । पकड़ लेता
 तो तथ्य का पता चल जाता । अब तो यह मेरे मन की भावना भी हो सकती है
 जो मूर्त रूप में स्वप्न के उपरान्त सामने दिखाई पड़ी । दोनों में से कौन-सी
 बात है, मैं नहीं जानता । (३) निष्कामन्—निकलता हुआ निस्+कम्+
 शत् । (४) व्यवतम्—इसमें क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया हुई । इस श्लोक में
 अनुष्टुप् छन्द है ॥७॥

(प्रविश्य) विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रति-
 बुद्धोऽन्नभवान् ।]

(भीतर जाकर) विदूषक—अरे ! महाराज तो जग गये ।

(entering) Vidushaka—Oh, his honour is awake.

राजा—ययस्य ! प्रियमावेदये, घरते खलु वासवदत्ता ।

राजा—मित्र ! मैं सुखबरी सुनाता हूँ । वासवदत्ता निसंदेह जीवित है ।

King—Friend, I tell you some happy news. Vasavadatta is
 really alive.

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ! कर्हि वासवदत्ता ? चिरा ख
 उवरदा वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ! कुत्र वासवदत्ता ?
 चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ! कहाँ है वासवदत्ता । वह तो बहुत पहले
 ही मर गई ।

Vidushaka—Alas Vasavadatta where is Vasavadatta ? Vasavadatta is really dead long since.

राजा—वयस्य ! मा मेवम्,

राजा—मित्र ! ऐसा न कहो,

King—Friend do not say so.

दाय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।

दग्धेति श्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥८॥

श्रवण—सखे ! दाय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा (सा) गता । पूर्वम् दग्धा इति श्रुवता रुमण्वता (अहम्) वञ्चितः अस्मि ॥८॥

संस्कृत टीका—सखे ! —मित्र ! , दाय्यायाम्—शयनीये, अवसुप्त—शयित, माम्—उदयनं, बोधयित्वा—जागरयित्वा, (वासवदत्ता) गता—ततो याता । पूर्वम्—पुरा, दग्धा—वामवदत्ता 'नग्नीभूता, इति—इत्थ, श्रुवता—कथयता, रुमण्वता—गुप्तग्रामकेन मन्त्रिणा, (अहम्) वञ्चितः—प्रतारितः, अस्मि—जातः । (अयं भावः—राजा कथयति—हे मित्र ! वासवदत्ता नूनमेव जीवति । इदानीमेव सा पर्यङ्गे गाढ प्रसुप्त मां प्रबोध्य समुद्रगृहागमिता । अनुमिनोम्यहं यत् रुमण्वान् वामवदत्ता दग्धेत्यलीश्वार्ताप्रख्यापनेन मा प्रतारितवान् ।) ॥८॥

अनुयाय—मित्र ! पल्लव पर सोये हुए मुझे जगाकर (वासवदत्ता) चली गई है । पहले (वासवदत्ता) जल गई—ऐसा कहने वाले रुमण्वान् ने मुझे धोखा दिया है ॥८॥

Oh friend waking me up when I was asleep on the couch, she went away. Rumanwan did deceive me before, when he said that she was burnt.

टिप्पणी—(१) बोधयित्वा—जगाकर । √बुध्+णिच्+क्या । (२)

पूर्वम्—अगले 'श्रुवता' श्रुति का विशेषण होने से द्वितीया हुई । (३) अस्मि—यहाँ मूलशब्द के अर्थ में लट् लकार हुआ । यह अनुष्टुप् छन्द है । महामहोपाध्याय गणपति चाम्प्री दश स्तोक के बाद और विदूषक की उक्ति में पहले एक और स्तोक था गाढ भगते है—'पद्मावत्या मया बोध्य विशेषकविमुपनिम् । जीवत्या-वन्निवेशेय पूर्व विज्ञातमेव मे ॥' अर्थात् पद्मावती के मृत पर तितर्कों की विविधता देनकर मैंने पहले ही गमन तिरा पा कि वामवदत्ता जीवित है, क्योंकि

तिलक-रचना दूसरे हाथ से संभव नहीं।) परन्तु यह पाठ आदर्श पुस्तकों में नहीं मिलता है और प्रकरण के अनुरोध से इसकी वैसी आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती है। इसलिए हमने भी छोड़ दिया ॥८॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण । आ उदग्रह्लाण-
सङ्कुत्तणेण तत्तोहोवि चिन्तअन्तेण सा सिविणे विट्ठा भवे
[अविहा ! असम्भावनीयमेतन्न । आ उदकस्नानसङ्कीर्तनेन
तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।]

विदूषक—हाय ! यह असंभव नहीं है। हाँ, उदकस्नान की चर्चा होने के कारण आपने महारानी का स्मरण करते हुए स्वप्न में उन्हें देखा होगा।

Vidushaka—Alas, this is not impossible, you fell asleep as I was mentioning Ujjain and its delightful bathing places, and no doubt the King of your late queen you dreamed of her.

टिप्पणी—(१) अविहा—यह शोकमूचक अव्यय है। (२) असम्भावनीयं—मेतद् न—यह असंभव नहीं है अर्थात् आपने जो कहा—‘मित्र ! मैंने वासवदत्ता को देखा, वह मुझे जगाकर चली गई’—वह असंभव नहीं है। (३) आ—यह स्मरणार्थक अव्यय है। (४) उदकस्नानसङ्कीर्तनेन—जल-स्नान के वर्णन से अर्थात् पहले जो मैंने कहा था कि उज्जयिनी में बहुत-से रमणीय स्नानागार हैं, उसके श्रवण से।

राजा—एवम् मया स्वप्नो दृष्टः ?

राजा—ऐसा, तो मैंने स्वप्न देखा है ?

King—Well then it was a dream.

यदि तावदयं स्वप्नो घन्यमप्रतिबोधनम् ।

अयायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥९॥

अन्वयः—यदि तावत् अयम् स्वप्नः, अप्रतिबोधनं घन्यम् अयं अयं विभ्रमो वा स्यात्, मे विभ्रमो हि चिरम् अस्तु ॥९॥

संस्कृत टीका—यदि—चेत्, तावत्—वाक्यालंकारार्थमिदम्, अयम्—एषः वासवदत्तादर्शनरूपो विषय इत्यर्थः, स्वप्नः—मनःसङ्कल्पजन्यं स्वप्नं विज्ञान, (तर्हि) अप्रतिबोधनम्—अजागरणं, घन्यं—प्रशस्तम् इष्टतमम् इति यावत्। अयं—पक्षान्तरे, अयं—वासवदत्तादर्शनरूपो विषयः, विभ्रमः—मनोभ्रान्तिः,

वा—पादपूरणार्थकमिदम्, स्यात्—मवेत्, (तर्हि) मे—मम, विभ्रमः—बुद्धि-
भ्रमः, हि—एव, चिरं—दीर्घकालम्, भ्रस्तु—तिष्ठतु । (अथ भावः—वासवदत्ता
मया विलोकिता इत्ययं यदि स्वप्नो वर्तते तर्हि स एव स्वप्नः सर्वदा मे
अनुवर्तताम् । अथवा यद्ययं मतिभ्रमो वर्तते तर्हि सा भ्रान्तिरेव मे भूयासं कालं
यावदनुवर्तताम् ।) ॥६॥

अनुवाद—अगर यह स्वप्न है तो न जागना ही अच्छा होता घोर यदि यह
मतिभ्रम हो तो मेरा (यह) मतिभ्रम चिरकाल तक बना रहे ॥६॥

टिप्पणी—(१) स्वप्नः—स्वप्न+नन् (स्वप्नो नन्) भदादिः परस्मैपदी ।
(२) अप्रतिबोधनम्—न जागना । न प्रतिबोधनम् इत्यप्रतिबोधनम् (नन्
तत्पु०) । प्रति+बुध्+णिच्+ल्यप् (भावे) । (३) धन्यम्—यहाँ धन्य का अर्थ
है 'भाग्यवान्' । निद्रा में ही रहना उसके लिए (राजा के लिए) सौभाग्य की बात
है क्योंकि स्वप्न में उसे अपनी प्रियतमा का दर्शन होता है । (४) विभ्रमः—चित्त
का विक्षेप । वि+भ्रम्+घञ् (अ) । 'नोदात्तोपदेशस्य भ्रान्तस्यानाचमेः' इति
सूत्रेण वृद्धिनिषेधः । यहाँ राजा स्वप्न या विभ्रम की अवस्था को भी चिरकाल
तक बनाये रहना चाहता है । क्योंकि सुखार्थी मनुष्य जिस अवस्था में सुख पाता
है, उसी अवस्था में रहना चाहता है । वत्सराज को स्वप्न में ही वासवदत्ता के
दर्शनों का सुख मिला । यदि इसे उसके मन का भ्रम माना जाय तो भी उसे
अपनी प्रियतमा के देखने का सुख मिलता है । सुख को हाथ से क्यों जाने दे ?
अभिज्ञानशाकुन्तल के छठवें अंक का दसवाँ दशक द्रष्टव्य है । वहाँ दुष्यन्त के
विभ्रम का ऐसा ही वर्णन है 'स्वप्नो नु मामा नु मतिभ्रमो नु विलष्टं नु
तावत्फलमेव पुष्पम् ।' यह प्रत्युष्ट छन्द है ॥६॥

विदूषकः—भो वयस्त ! एदस्मि णमरे अवन्तिमुन्दरी णाम जविष्णो
पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे । [भो ! वयस्य ! एतस्मिन्
नगरेऽवन्तिमुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतियसति । सा त्वया दृष्टा
भवेत् ।]

विदूषकः—हे मित्र ! इस नगर में अवन्तिमुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती
है । उसे आपने देखा होगा ।

Vidushaka—Oh friend, a Yakshini named Avanti Sundari
lives here. You might have seen her.

टिप्पणी—(१) नाम—यह अव्यय है। (२) यक्षिणी—अप्सरविशेष जिसका सम्बन्ध मत्स्यलोकवासियो से कहा जाता है। यक्षः पूजा अस्ति अस्याः इति विग्रहे यक्ष+इनि—डोप् (ई) ।

राजा—न न,

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोपिताञ्जनम् ।

चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥१०॥

अन्वय—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः (वागव-
दतायाः) नेत्रविप्रोपिताञ्जनम् दीर्घालकम् मुखम् दृष्टम् ॥१०॥

संस्कृत टीका—स्वप्नस्य—स्वप्नावस्थायाः, अन्ते—समाप्ती, विबुद्धेन—
जागरितेन (मया) चारित्रम्—सच्चरित्रताम् सतीत्वमिति यावत्, अपि—जीवितेन
सह इति भावः, रक्षन्त्याः—पालन्त्याः, (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोपिताञ्ज-
नम्—नेत्राभ्यां विप्रोपितं प्रवासं गतं दूरीभूतमिति यावत् अञ्जनं कज्जलं यस्मिन्
तत् तथामूतं, दीर्घालकं—दीर्घाः लम्बमानाः अलकाः चूर्णकुन्तलाः यस्मिन् तत्
तादृशं, मुखम्—आननं, दृष्टम्—अवलोकितम् (अयं भावः—यदा अहं स्वप्नात्
प्रबुद्धः तदा ताम् अपश्यम् । तस्या नेत्रे अञ्जनशून्ये आस्ताम् । मुखे च दीर्घाः
केशाः लम्बमाना आसन् । अतोऽहं मन्ये यत् सा न केवलं जीवति परञ्च स्वचरित्रमपि
रक्षति । तथा च नेत्रत्वक्छिता यक्षिणी इति मे स्थिरो निश्चयः ।) ॥१०॥

अनुवाद—राजा—नही, नही, स्वप्न के अन्त में जागने पर मैंने चरित्र की
रक्षा करती हुई वासवदत्ता का बिना काजल की आँखों वाला और लटके हुए
बालों वाला मुख देखा ॥१०॥

King—No, no. When I woke up after the dream, I saw
her face with eyes devoid of collyrium and the long hair of
hers still guarding her character.

टिप्पणी—(१) विबुद्धेन—जागे हुए । वि+बुध्+क्त(त) (कर्तरि) । यहाँ
विशेष्य 'मया' अप्रकट है, फिर भी विशेषणसे काम चल जाता है—'विशेषणमात्र-
प्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तो' । (२) चारित्रम्—चरित्रमेव चारित्रम्, चरित्र+अण्
(स्वायें) । (३) दीर्घालकम्—जिस पर घुंघराले बाल लटके हुए हों अर्थात् बिना
सँवारे हुए हों । क्योंकि पति-वियोग-काल में शृङ्गार आदि करना वर्जित है—
'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषित-
मर्तृका ॥' अलक—जुल्फ, घुंघराले बाल । 'अलकाश्चूर्णकुन्तलाः' इत्यमरः ।

(४) नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्—बिना काजल की छाँखों वाला । नेत्राम्बा विप्रोषितम् (तु० तत्पु०) नेत्रविप्रोषितम् अञ्जनम् यस्मिन् तत् । (बहुव्रीहि) । यह अनुष्टुप् छन्द है ॥१०॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य,

योऽयं सन्नस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।

स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

अन्वय—सन्नस्तया तया देव्या यः अयम् बाहुः निपीडितः स्वप्ने अपि उत्पन्नसंस्पर्शः रोमहर्षम् न मुञ्चति ॥११॥

संस्कृत टीका—सन्नस्तया—भीतया, तया देव्या—वासवदत्तया, योऽयं—पुरो दृश्यमानः, बाहुः—भुजः, निपीडितः—शनैः गृहीतः, (स भुजः) स्वप्नेऽपि—स्वप्नावस्थायामपि, उत्पन्नसंस्पर्शः—उत्पन्नः सञ्जातः संस्पर्शः सम्पर्को यत्र तादृशः, रोमहर्षं—रोमाञ्च, न मुञ्चति—न त्यजति । (अयं भावः—यदा शयानस्य मम बाहुं वासवदत्ता अस्पृशत् तदा तस्मिन् रोमाञ्चः सञ्जातः । इदानीमपि स भुजः रोमाञ्चित एव । प्रत्यक्षं पश्य इमम् । अतो मन्ये यत् सा वासवदत्तैव न तु यक्षिणी ।) ॥११॥

अनुवाद—प्रिय मित्र ! देखो देखो, डरती हुई उस देवी ने जो इस बाँह को पकड़ा सो निद्रावस्था में भी स्पर्श-सुख के कारण इसमें रोमाच हो आया, जो अभी तक बना हुआ है ॥११॥

And again see friend. This hand that was held fast by the queen in fear, does not give up the joy of horripilation even though produced in a dream.

टिप्पणी—(१) सन्नस्तया—भयभीत, सशंकित । सम्+त्रस्+क्त (त) (कर्तरि) टाप्, (घा) तया । वासवदत्ता भयभीत इसलिए थी कि कहो राजा जाग न जायें । (२) निपीडितः—धीरे या हलके हाथों पकड़ा हुआ । नि+पीड्+णिच् (स्वायें)+क्त (त) । (३) संस्पर्शः—सम्+स्पृश्+घञ् (घ) । (४) रोमहर्षम्—रोम्णा हर्षः, तम् । रोमों का पुलकित हो जाना । जैसे यहाँ वासवदत्ता के कर-स्पर्श से उदयन को रोमाच हुआ है उसी तरह उत्तररामचरित में सीता के हस्तस्पर्श से राम के पुलकित होने का वर्णन मिलता है । रोमाच को शृंगार रस के आठ सात्त्विक भावों में से अन्यतम माना गया है ॥५॥ मुञ्चति—छोड़ता है । मुच्+लट् । प्र० पु० ए० व० । यह अनुष्टुप् छन्द है ॥११॥

विदूषकः—मा दाणि भवं अणत्थं चिन्तिअ । एदु एदु भवं ।
चउस्सालं पविसामो । मेदानो भवाननयं चिन्तयित्वा । एत्वेतु
भवान् । चतुःशालं प्रविशामः ।]

विदूषक—प्रब आप व्ययं की बात मत सोचिये । आइये, आप आइये ।
बीमाल में चलें ।

Vidushaka—Now enough of thinking of useless things.
Come, come on we enter the quadrangle.

(प्रविश्य) काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं महाराजो दर्शको
भवन्तमाह—एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदा-
येनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम् । तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि
मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि । तदुत्तिष्ठतु भवान् । अपि च—

संस्कृत टीका—आर्यपुत्रः—श्रीमान्, जयतु—विजयताम् । अस्माक महाराजः—मगधेश्वरः, दर्शकः, भवन्त—श्रीमन्तम्, आह—कथयति, (यत्) एष खलु—अयं हि, भवतः—तव, अमात्यः—मन्त्री, रुमण्वान्, महता—विशालेन, बलसमुदायेन—सैन्यसमूहेन, (सह) उपयातः—समुपस्थितः, आरुणिम्—वत्सराजस्य शत्रुम्, अभिघातयितुम्—नाशयितुम् । तथा तमेवार्यं साधयितुं, मामकानि—मदीयानि, हस्त्यश्वरथपदातीनि—हस्तिनः गजाः अश्वाः घोटाकाः रथाः पदातयश्च पादचारिणश्च येषु सन्ति तादृशानि, विजयाङ्गानि—विजय-साधनीभूतानि सैन्यानि, सन्नद्धानि—सज्जितानि (सन्ति) । तत्—तस्मात्, भवान्—श्रीमान्, उत्तिष्ठतु—विजययात्रार्यम् उद्यतो भवतु । अपि च—अन्यच्च,

अनुवाद—(प्रवेश करके) काञ्चुकी—महाराज विजयी हों । हमारे महाराज दर्शक ने आपसे कहा है कि यह आपका मन्त्री रुमण्वान् मारी सेना के समूह के साथ (आप से) आरुणि का वध कराने के लिए आ पहुँचा है । और मेरी विजय की सेनायें—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—तैयार हैं । इसलिए आप उठिये । और भी—

Chamberlain—Victory to his Majesty. Our great King Darshak says to your Majesty. Here is your Minister Rumanvan with a great gathering of forces to attack Aruni. My own divisions for victory—elephants, horses, chariots, and foot-soldiers are ready. Therefore arise your honour. and again.

टिप्पणी—(१) मा चिन्तयित्वा—यहां माङ्ग के योग में क्त्वा प्रत्यय चित्य है । इस नाटक में ऐसे प्रयोग कई जगह आये हैं । यदि इन प्रयोगों को पाणिनि-सम्मत बनाना ही हो तो 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचा क्त्वा' सूत्र में 'अलम्' और 'खलु' को उपलक्षणार्थक मानकर क्त्वा प्रत्यय कीजिये । (२) आर्यपुत्रः—आर्यस्य पुत्रः पण्ठी तत्पुरुष वा आर्यश्चासौ पुत्रश्च कर्मधारय । (३) एष खलु भवतः—इमं वाक्य में दोनों खलु शब्द वाक्यालंकारार्थ हैं । (४) अभिघातयितुम्—मरवाने के लिए । अभि√हन्+णिच्+तुमुन् 'हनस्तोऽविष्णलोः' इति सूत्रेण तकारान्तादेशः, 'हो हन्तेः'—इति सूत्रेण हस्य घः । (५) हस्त्यश्वरथपदातीनि—हस्तिनश्च अश्वश्च रथश्च तेषां समाहारः हस्त्यश्वरथम् समाहार द्वन्द्व समास, हस्त्यश्वरथयुक्ताः पदातयः येषु तानि बहुव्रीहि समास । 'विजयाङ्गानि' का विशेषण है । पदाति—पदस्य । पादाम्याम् अतति गच्छति इति पदातिः, पाद√अत्+इण् 'अज्यतिम्या पादे च' इत्यनेन; ततः 'पादस्य पदाज्यातिगोपहनेषु' इति सूत्रेण पादस्य पदादेशः । (६) मामकानि—मम इमानि इति विग्रहे अस्मद्+अण् 'तवकममकावेकवचने' इति सूत्रेण अस्मदो ममकादेशः । (७) विजयाङ्गानि—विजयकारकाणि अङ्गानि—सैन्यानि इति विजयाङ्गानि मध्यमपदलीपी समास । (८) सन्नद्धानि—सज्जित, तैयार । सम्√तह्+क्त (त) ।

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः

पाण्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम् ।

यद्यत् साध्यमरिप्रमायजननं तत्तन्मयानुष्ठितं

तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपयगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

ग्रन्थ—ते रिपवः भिन्नाः, भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः अपि भवत्प्रयाणसमये या पाण्णी तस्याः विधानं कृतम् । अरिप्रमायजननं यत् यत् साध्यम् तत् तत् मया अनुष्ठितम् । अपि च बलैः त्रिपयगा नदी तीर्णा, च वत्साः तव हस्ते ॥१२॥

संस्कृत-टीका—ते—तव, रिपवः—शत्रवः, भिन्नाः—भेद प्रापिता, भवद्गुणरताः—भवतः श्रीमन्. गुणेषु दयादाक्षिण्यादिषु रताः अनुत्कृताः, पौराः—नागरिकाः प्रजा इत्यर्थः, समाश्वासिताः—आश्वासनं प्रापिताः, अपि—तथा, भवत्प्रयाणसमये—भवदीयविजययात्रावसरे, या पाण्णी—यत् सैन्यपृष्ठ, तस्या—पाण्ण्याः, विधानं—रचना, कृतम्—सम्पादितम् । अरिप्रमायजननं—शरीणां शत्रूणां प्रमायः विष्वक् तस्य जननम् उत्पादकं, यत्, यत् कार्यं, साध्यं—करणीयं,

तत् तत् कार्यं, मया—दर्शकेन, अनुष्ठित—साधितम् । अपि च—अन्यच्च, बलैः—सैन्यैः, त्रिपथगा नदी—गङ्गा नाम सरित्, तीर्णा—तद्धिता । च—अतः, वत्साः—वत्सराज्यं, तव—भवतः, हस्ते—करे (स्थिताः सन्ति ।) (अयं भावः—मया भवतः शत्रवः कूटनीत्या परस्परं विभक्ताः कृताः । भवद्गुणानुरक्ताः प्रजाः 'शीघ्रं वः नृपः शत्रून् पराजित्य प्रागमिष्यति' इति कथनेन समाश्वासिताः । अपि च भवतो यात्रावसरे पृष्ठानुवर्तिन्याः सेनाया अपि सम्यक् प्रवन्धः कृतः । किं बहुना—शत्रुविध्वंसनोचितं सकलमपि संविधानकमारचितम् । सेनापि गङ्गानदी तीर्त्वा अग्रे गता । इत्यञ्च वत्सराज्यं भवतो हस्तगतं वर्तते इत्यवगम्यताम्) ॥१२॥

अनुवाद—आपके शत्रुओं में फूट डाल दी गयी है । आपके गुणों पर रीसे हुए नगरवासियों को आश्वासन दिला दिया गया है और आपकी विजय-यात्रा के समय पीछे चलने वाली सेना का भी प्रबन्ध कर दिया है । (इस प्रकार) शत्रु का नाश करने वाला जो-जो काम होता चाहिए, वह सब मैंने कर लिया है । यहाँ तक कि सेनायें गङ्गा नदी पार कर चुकी है । अब वत्सदेश आपके हाथ में ही है (ऐसा समझिये) ॥१२॥

Your enemies are split, the citizen attached to your virtues are cheered up. The protection of the rear that would march at the time of your departure, is arranged, what ever has to be accomplished for bringing about the destruction of the enemy has been all done by me. The river Ganga (Tripathaga) is also crossed by the forces. and the land of the vatsas is in your hands.

टिप्पणी—(१) भिन्नाः—एक दूसरे से भ्रतय कर दिये गए । यहाँ भ्रत-
भावित अर्थ है । शत्रुओं में फूट डालना यह एक नीति है । (२) भवद्गुणरताः—
आपके गुणों पर अनुरक्त । भवतः गुणाः (प० तत्पु०) तेषु रताः (स० तत्पु०) ।
'पौराः' का विशेषण है । (३) समाश्वासिताः—जिन्हें आश्वासन या सान्त्वना
दी गई हो । सम्—आ + ध्वस् + णिच् + क्त (त) । (४) पौराः—पुरवासी
लोग । पुरे भवाः इति पौराः, पुर + भण् 'तत्र भवः' इति सूत्रेण । जब शत्रुओं में
फूट हो तथा अपनी प्रजा के लोग राजभक्त हो तब शत्रुओं पर आक्रमण करना
चाहिए । कामन्दक-नीतिशास्त्र इस मत का समर्थन करता है, यथा—
"स्फीतं पदानुरक्तं च भवेत्प्रवृत्तमण्डलम् । परस्य विपरीतं च तदा विग्रहमाचरेत् ॥"
(५) पाष्णीं—सेना का पृष्ठभाग । 'पाणिः स्यादुन्मदस्त्रियाम्' इस कोश के

प्रमाण से यह शब्द इकारान्त स्त्रीलिंग है। किन्तु 'कृतिकारादक्षितः' से डोप् करने पर 'रात्रिः, रात्रीः' की तरह 'पाणिः, पाणी' दोनों रूप चलते हैं। कामन्दकीति के अनुसार—'पुरदच पदचाञ्च यदा समयः तदामियायान्महते कलाय । पुरः प्रसपंनविशुद्धपृष्ठः प्राप्नोति तोषं खलु पाणिमेदम् ॥' (६) भवत्प्रयाण-समये—आपके प्रयाण के समय । भवतः प्रयाणम् तस्य समयः तस्मिन् । (५० तत्पु०) अधिकरण में सप्तमी हुई है । प्रयाण—सैन्य-प्रमियाण । (७) यत् यत्—तत्—जो जो—सो सो बीप्सायां द्विवक्तिः । 'नित्यबीप्सयोः' द्वित्वम् । (८) अतिप्रमायजननम्—शत्रुओं को बिचबस करने वाले । अरे: प्रमायः तस्य जननम् (५० तत्पु०) । प्र+मय्+धत् । जननम्—जन्+णिच्+त्पुट् । (९) त्रिपयगा-गगा । 'मागीरयी त्रिपयगा त्रिस्रोता बीष्ममूरवि' इत्यमरः । त्रयाणां स्वर्ग-मत्सरातालात्मना पयां मार्गाणां समाहारः त्रिपयम् द्विगुणमात्र, तेन गच्छति या मा त्रिपयगा, त्रिपय/गम्+ङ—टाप् । (१०) यत्नाः—वत्स देश । 'जनपदवाचिनः शब्दाः भूमि प्रयुज्यन्ते' इय नियम के अनुसार यहाँ बहुवचनान्त प्रयोग गृह्य है । कामाना निवासो जनपदः वत्साः, वत्स+भण् 'तस्य निवासः' इत्यनेन ततः 'जनपदे लुप्' इति सूत्रेण भणो लुप्, 'लुपि धुक्त्वद्व्यकिञ्चने' इति सूत्रेण प्रभृतिवत् सिगवचनमात्र । यह शार्दूल-विश्रीहित छंद है ॥१२॥

राजा—(उत्थाय) बाढम् । अयमिवानीम्,

राजा—(उठकर) बहुत ठीक । घमी में—

The King—(Rising) very well, now this.

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणि दारुणकर्मदक्षम् ।

विकीर्णबाणोप्रतरङ्गभङ्गे महान्वाभे युधि नाशयामि ॥१३॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।) इति पञ्चमोऽङ्कः ।

अन्वय—उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोप्रतरङ्गभङ्गे महान्वाभे युधि दारुणकर्मदक्षम् तम् भारुणिम् नाशयामि ॥१३॥

संज्ञा टीका—उपेत्य—घमिगम्य आक्रम्य इति यावत्, नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे—नागेन्द्राः हस्तिश्रेष्ठाः तुरङ्गाः अश्वाश्च तैः तीर्णे तरनशीदादिबधोक्ते, विकीर्णबाणोप्रतरङ्गभङ्गे—विकीर्णा, प्रशिष्टाः ये बाणाः पराः त एव उपाः मसानवाः तरङ्गानाम् उर्मीणां भङ्गा इव गह्वं इव घमिन् तथामूने । महान्-वाभे—महान्वाभ्य महानागरभ्य आना इव आमा भ्य तथामूने, युधि—मैत्रामे, दारुणकर्मदक्षम्—दारुणकर्मगु मर्दकराज्ये, दक्ष निपुणम्, त—प्रतिदम्,

भ्राह्मणम्—एतन्नामकशत्रुम्, नाशयामि—हन्मि । (अथ नावः—अहमिदानीमेव गजवाजिसञ्चारसङ्कुले विकीर्णबाणरूपमयानकरतरङ्गलहरीव्याप्ते महासागरोपमे संग्रामे दुष्टभ्राह्मणम् आक्रम्य समूलं विध्वंसयामि ।) ॥१३॥

अनुवाद—आक्रमण करके विशाल हाथियों एवं घोड़ों से पार किए हुए घोर लाए हुए बाणों रूपी भयंकर लहरों वाले महासागर के समान युद्ध में घोर कर्म करने में पटु उस भ्राह्मण को मार डालता हूँ ॥१३॥

(सब का प्रस्थान) पाँचवा प्रक समाप्त ।

Meeting that Aruni, clever in horrible deeds, I shall destroy him in the great ocean of the battle-field, where elephants and horses stem the great tide where singing waves of cruel arrows break. (Exeunt omnes End of Act V)

टिप्पणी—(१) उपेत्य—समीप जाकर या चढ़ाई करके । उप+इ+क्त्वा—त्यप् । (२) नागेन्द्रतुरङ्गतोर्णो—जहाँ बड़े-बड़े हाथी घोर घोड़े तैर रहे हों अर्थात् घूम रहे हों । नागा इन्द्राः इव इति नागेन्द्राः उपमित समास, नागेन्द्राश्च तुरङ्गाश्च इति नागेन्द्रतुरङ्गाः इतरेतरद्वन्द्व, नागेन्द्रतुरङ्गः तीर्णः तृतीया तत्पुरुष, तस्मिन् । (३) दारुणकर्मदक्षम्—घोर कर्म करने में पटु । 'भ्राह्मणम्' का विशेषण है । दारुणानि च तानि कर्माणि (कर्मधा०) तेषु दक्षः तम् । (स० तत्पु) । (४) विकीर्णबाणोपतरङ्गमङ्गो—जहाँ बाणप्रक्षेपरूपी भयंकर लहरें उठ रही हों । विकीर्णाः=प्रक्षिप्ताः बाणाः विकीर्णबाणाः कर्मधारय समास, उग्रा. तरङ्गाः उपतरङ्गाः कर्मधारय, उपतरङ्गाणा मङ्गाः उपतरङ्गमङ्गाः प०त०, विकीर्णबाणाः उपतरङ्गमङ्गाः इव यत्र सः बहुव्रीहि समास, तस्मिन् । अथवा बाणाः उपतरङ्गमङ्गा इव इति बाणोपतरङ्गमङ्गाः उपमित समास, विकीर्णाः=व्याप्ताः बाणोपतरङ्गमङ्गाः यत्र सः बहुव्रीहिसमास । (५) महार्णवाम्—महासमुद्र के समान भासमान । महार्णवः महार्णवः कर्मधारय, 'भ्रान्तमहतः समानाधिकरणजातीययोः' सूत्रेण महतः तकारस्य भ्रात्वम्, महार्णवस्य भ्रामा इव भ्रामा यस्य स महार्णवाम्, बहुव्रीहि, तस्मिन् । (६) युधि०—युद्ध में √युष्+क्विप् 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' इति वार्तिकेन । यहाँ 'स्त्रियाम्' इस अधिकार में क्विप् प्रत्यय होने से तथा 'समित्याजिसमिद् युधः' इस कोश प्रमाण से युष् शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने पर भी भास ने इसका प्रयोग पुलिङ्ग में किया है । इससे सिद्ध होता है कि या तो भास के समय इसका प्रयोग पुलिङ्ग में भी होता रहा होगा या

‘नरकुशाः कवयः’ का अनुसरण उन्होंने किया है (७) नाशयामि—√नश्+णिच्
+लट्—मिप् उ० पु० ए० व० । यहाँ ‘वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा’ सूत्र से
मविष्यत् के धर्य में लट्लकार हुआ है । इस श्लोक में युद्ध की उपमा महासमुद्र
से दी गई है । जैसे महासमुद्र में जल-हस्ती और जल-घोटक इधर-उधर धूमते
रहते हैं उसी तरह इस समरांगण में भी हाथी-घोड़े घूम रहे हैं । उधर महासागर
उत्ताल तरंगों से उद्वेलित होता रहता है तो समर-क्षेत्र भी बाणवर्षण की लहरों
से तरंगित हो रहा है । इसमें उपमा अलंकार है और उपेन्द्रवज्रा छंद है ॥१३॥

अथ पष्ठोऽङ्कः

(Act VI)

(उज्जयिनी के राजा और रानी द्वारा प्रेषित दूत निजी धात्री के साथ महाराज उदयन की विजय पर बधाई देने आया और विवाह के समय वासवदत्ता के साथ लिये गये चित्र को उन्हें भेंट किया। पद्मावती ने देखा कि चित्रस्थ वासवदत्ता ग्राहणी आवन्तिका से मिलती-जुलती है। उसी समय योगन्धरायण धरोहर रूप अपनी बहिन को वापिस लेने आता है। धात्री वासवदत्ता को पहचान जाती है और रहस्योद्घाटन हो जाता है। इस प्रकार पति-पत्नी का सानन्द मिलन होता है। योगन्धरायण ने यह योजना राजहित में बनाई थी। महासेन को यह शुभ सवाद सुनाने के लिए राजा समी के साथ उज्जयिनी के लिए प्रस्थान करते हैं।)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।) काञ्चुकीयः—क इह भोः ?
काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(तदनन्तर कचुकी का प्रवेश ।) कचुकी—अजी ! यहाँ सोने के बाहर वाले फाटक पर कौन है ?

(Enter a Chamberlain) Chamberlain—Who is here please ?
Who is occupying the jewelled archgate ?

(प्रविश्य) प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजया । किं करीमदु ?
[आयं ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?

(प्रवेश करके) प्रतीहारी—आयं ! मैं विजया हूँ । क्या आज्ञा है ?

Door-keeper—(Entering) Sir, I Vijaya. What is to be done ?

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रबुद्धो-
दयायोदयनाय—एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रेभ्यसगोत्रः
काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा
नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

संस्कृत टीका—भवति !—कल्याणि !, निवेद्यतां—सूच्यताम्, वत्सराज्य-
लाभप्रबुद्धोदयाय—वत्सानाम् एतन्नामकानां देशानां राज्यस्य सामेन—पुनः

प्राप्त्या प्रवृद्धः वृद्धि गतः उदयः सन्नतिः यस्य तस्मै, उदयनाय, एषः—अहम्, खलु—निश्चयेन, महासेनस्य—उज्जयिनीपतेः, सकाशात्—समीपात्, रैम्य-सगोत्रः—रैम्यगोत्रोत्पन्नः, काञ्चुकीयः—काञ्चुकी, प्राप्तः—उपस्थितः, तत्र मवत्या—मान्यया, अङ्गारवत्या—महासेनपत्न्या, प्रेषिता—प्रेरिता, धार्या, वसुधरा नाम—वसुधरेति नाम्नी, वासवदत्तायाश्च च—वासवदत्ताया उपमाता च, (दो आवांम्) प्रतीहारम्—द्वारदेशम्, उपस्थितो—समुपागतो (स्वः) इति ।

अनुवाद—काञ्चुकी—मद्रे ! वत्सदेश के राज्य या जाने से विशेष उन्नति को प्राप्त हुए उदयन से निवेदन कीजिये कि महासेन के पास से धार्या हुआ रैम्यगोत्रोत्पन्न (अथवा रैम्य नाम का) काञ्चुकी और माननीया अंगारवती की भेजी हुई श्रीमती वसुधरा नाम की वासवदत्ता को धाय दोनों ही दरवाजे पर धाये हुए हैं ।

yan, whose rise is advanced
saying, "This Chamberlain, a
here from Mahasena, and
of Vasavadatta, sent by her
ladyship, Angarvati. Both are waiting at the gate.

टिप्पणी—(१) काञ्चनतोरणद्वारम्—सोने के बने हुए बाहरी फाटक पर । तोरणमेव द्वारम् तोरणद्वारम् मयूरभ्यसकादित्वात् समास, काञ्चननिमित्तं तोरणद्वारम् काञ्चनतोरणद्वारम् मध्यमरदलोपी ममास । (२) अश्वत्थं कुरुते—मनाय या लोमित कर रहा है । (३) प्रतीहारी—द्वारपाल का काम करने वाली, स्त्री, द्वारपालिका । प्रति+हृ+घञ् (घ), 'उपसर्गस्य यञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति नूत्रेण उपसर्गस्य दीर्घः=प्रतीहारः=द्वारम् 'स्त्री द्वार्द्वार प्रतीहारः' इत्यमरः । प्रतीहारः अग्नि यस्य इति प्रतीहारः=द्वारपाल, प्रतीहार+घञ् घनं धादित्वात्, त्रियाम् प्रतीहार+घोष्=प्रतीहारी । (४) निवेद्यताम् निवेद्यताम्—शीघ्रता सूचित करने के लिए दो बार उच्चारण हुआ है । नि+विद्+णिष्+सोढ् (बभूवि) यङ् । (५) वत्सराज्यसामप्रवृद्धोदयाय—यमानो राज्यम् य० त०, तस्य सामः य० त०, तेन प्रवृद्धः तू० त०, धर्मराज्यसामप्रवृद्धः उदयः यस्य गः य० त०, तस्मै । यहाँ नाट्यकार कपुकी क मुँह से मान उदयन के धर्मराज्य की प्राप्ति की सूचना देकर युद्ध का वर्णन किया गया है । क्योंकि नाटक में युद्ध का वर्णन करता निषिद्ध है । दूताख्यानं यद्य युद्धं ... श्रवणादि न निर्दिशेत् । दशरूपक । (६) रैम्यसगोत्रः—रैम्य गोत्र से उत्पन्न या नाम का व्यक्ति । (७)—रैम्येन समान गदानुसूचित गोत्रं नाम यस्य ग तादृशः । यहाँ 'गोत्रविज्ञानरद-

रात्रिनामिनामगौरूपस्यानवर्णवयोवचनबन्धुषु' सूत्र से समान को स आदेश हुआ । धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि गोत्रनाम के भागे 'स' का प्रयोग अवश्य करना चाहिए — 'सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता । सकारः कुतुपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत् ।' (८) प्रेषिता—मेजी हुई । प्र+इप्+णिच्+क्त(त)—टाप् (प्रा) ।
 प्रतीहारी—अय्य ! अदेसकालो पडिहारस्त । [आयं ! अदेशकालः प्रतीहारस्य ।]

प्रतीहारी—आयं ! द्वारपाल का स्थान और समय नहीं है । अर्थात् इस समय द्वारपाल के लिए राजा से कुछ कहने-सुनने का अवसर नहीं है ।

Door-keeper—Sir, the occasion is not suitable for me to go before the King.

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

काञ्चुकी—क्यों स्थान और समय (अर्थात् अवसर) नहीं है ।

Chamberlain—No suitable. And why ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो । अञ्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिता । तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदोए सदो विअ सुणीअदि त्ति । [शृणोत्वार्थः । अद्य भर्तुः सूर्यामुख-प्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।]

प्रतीहारी—आयं सुने—भाज स्वामी के सूर्यामुख नामक महल में जाकर किसी ने वीणा बजाई । उसे सुनकर स्वामी ने कहा कि घोषवती का-सा स्वर सुनाई दे रहा है ।

टिप्पणी—(१) अदेशकालः प्रतीहारस्य—प्रतीहार=द्वारपाल । 'प्रतीहारो द्वारपालः' इत्यमरः । अदेशकाल—देशसहितः कालो देशकालः मध्यमपदलोपी समास, भप्रशस्तः भयुक्तः वा देशकालः इति अदेशकालः नञ् समास । राजा से निवेदन करने के लिए द्वारपाल के उपस्थित होने योग्य यह समय और स्थान नहीं है । (२) सूर्यामुखप्रासादगतेन—सूर्यामुख नामक प्रासाद में गये हुए अथवा सूर्या=नवोढा पद्मावती के मुख=प्रमुख प्रासाद=महल में गये हुए । श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के प्रथमाध्याय के 'देवक्या सूर्यया सार्धम्' इस श्लोक का

अर्थ करते हुए श्रीधर स्वामी ने मूर्या शब्द की व्याख्या नबोढा की है । (३) घोष-
 घत्थाः—घोषवती नामक वीणा का । घोषः प्रशस्तः घोषः=शब्दः अस्ति अस्याः
 इत्यर्थे घोष+मत्पु, मस्य वः, डीप्=घोषवती, तस्याः । कहते हैं कि उदयन को
 यह घोषवती वीणा वासुकि के भाई वसुनेमि ने दी थी । यह ऐन्द्रजालिक वीणा
 थी । इसके शब्द से हाथी वशीभूत हो जाता था । उदयन ने अपनी प्रियतमा
 वासवदत्ता को यह वीणा दे दी थी । वासवदत्ता की नाटकीय मृत्यु के पश्चात्
 यह वीणा भी रहस्यमय ढंग से गायब हो गई थी । अब पुनः प्रकट हुई । राजा
 उसके स्वर को पहचान जाता है और बड़े प्रेम से प्राणप्रिया वासवदत्ता का
 स्मरण करने लगता है ।

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

काञ्चुकी—फिर क्या हुआ ?

Chamberlain—Well, then ?

प्रतिहारी—तदो तर्हि गच्छिअ पुच्छिदो—कुदो इमाए वीणाए आगमो ।
 तेन भणिअं—अहोहि णम्मदातोरे कुच्चगुम्मलगा दिट्ठ । जइ
 प्पओअणं इमाए, उवणीअदु भट्ठिणो त्ति । तं च उवणीदं अञ्जु
 करिअ मोहं गदो भट्ठा । तदो मोहप्पच्चागवेण वप्पपय्याउलेण
 भुहेण भट्ठिणा भणिअं दिट्ठासि घोसवदि ! सा हू ण दिस्सदि त्ति ।
 अय्य ! ईदिसो अणवसरौ । कहं निवेदेमि ?

[ततस्तत्र गत्वा पृष्टः—कुतोऽस्या वीणाया आगम इति । तेन
 भणितम्—अस्माभिनंमंदातोरे कुच्चगुम्मलाना दृष्टा । यदि प्रयोजन-
 मनया, उपनीयतां भ्रमं इति । तां चोपनीतामञ्जुं कृत्या मोहं गतो
 भर्ता । ततो मोहप्रत्यागतेन वात्पपर्याकुलेन मुखेन भर्ता भणितम्—
 दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽ-
 नवसरः । कथं निवेदयामि ?]

सकता, दृष्टा—अवलोकिता । यदि—चेत्, (श्रीमतेः) अनया—घोषवत्या
 प्रयोजनम्—कार्यम्, (तर्हि भस्मामिः इयम्) भर्त्रे—स्वामिने श्रीमते इति यावत्,
 उपनीयताम्—समर्प्यताम् । उपनीतां—समर्पितां, तां—वीणाम्, ग्रन्थे कृत्वा—
 उत्सर्गे संस्थाप्य, भर्ता—स्वामी, मोहं गतः—मूच्छी प्राप्तः । ततः—पश्चात्,
 मोहप्रत्यागतेन—मोहात्प्रतिनिवृत्तेन, बाष्पपर्याकुलेन—अध्रुमलिनेन, मुखेन—
 वदनेन, भर्त्रा—स्वामिना, मणितम्—उक्त्वा घोषवति !, (त्व) दृष्टामि—
 अवलोकित्वा, (परं) सा—वासवदत्ता, न दृश्यते—न विलोक्यते । आर्यं !—
 श्रीमन् !, ईदृशः—पूर्वोक्तप्रकारः, अनवसरः—प्रयोग्यः समयः निवेदनस्येति
 शेषः । कथं—केन प्रकारेण, निवेदयामि—सूचयामि भवतः सन्देशनापित-
 मिति शेषः ।

अनुवाद—प्रतीहारी—तब वहाँ जाकर (उससे) पूछा कि यह वीणा कहाँ
 से मिली है । उसने कहा—हमने नर्मदा के किनारे कुशाग्रों की झाड़ी में उलझी
 हुई इसे पाया । यदि इसकी आवश्यकता हो तो महाराज को यह भेंट दे दूँ ।
 समर्पित की हुई उस वीणा को गोद में लेकर स्वामी मूर्च्छित हो गये । फिर
 सचेत होने पर आसुओं से व्याप्त मुख से स्वामी ने कहा—‘घोषवती’ ! तुम
 तो मिल गई हो परन्तु वह दिखाई नहीं देती ।’ महोदय ! इस प्रकार उचित
 अवसर नहीं है । कैसे निवेदन करूँ ?

Then having gone there he asked, “How did you get this lute ?” He said., “I found it in a clump of jungle grass on the banks of Narbada. If there is any use for it, be pleased, sire, to accept it.” The king took it and clasped it to his breast and swooned away. Then recovering from the swoon and with the face flooded with tears, the lord said, “you are seen Ghoshavati; she however is not seen” Sit, thus the time is improper. How can I usher you ?

टिप्पणी—(१) कूचंगुल्मलगना—कूचाना गुल्माः कूचंगुल्माः ष० त०, तेषु
 लगना कूचंगुल्मलगना म० त० । कूचं=कुश । ‘कूचोऽस्त्री श्मश्रुपीठयोः, भ्रूमध्ये
 कथने दमै’ इति कोशः । (२) अनया—यहाँ फल को भी हेतु मानकर हेतु में
 तृतीया हुई । (३) मोहप्रत्यागतेन—होश में आने पर । (४) बाष्पपर्याकुलेन—
 आसुओं से भरे हुए बाष्पः पर्याकुलम् तृतीया तत्पुरुष तेन ।

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यताम् । इदमपि तदाश्रयमेव ।

कंचुकी—महोदये ! निवेदन कर दीजिये । यह भी उसी से संबंध रखता है ।

Chamberlain—Lady, please inform this also has reference to it.

प्रतीहारी—अर्य ! इअं निवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ । ता इह एव्व निवेदइस्सं । [आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि ।]

प्रतीहारी—आर्य ! अभी निवेदन करती हूँ । यह महाराज सूर्यामुख महल से उतर रहे हैं । अतः यही पर निवेदन कर दूंगी ।

Door-keeper—I shall just announce you. Here is the lord coming from the palace facing the last. Then I shall just inform him here.

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा । (उभौ निष्क्रान्तौ ।) इति मिथ-विष्कम्भकः ।

कंचुकी—ठीक है, श्रीमती ! (दोनों का प्रस्थान ।) मिथविष्कम्भक समाप्त ।

Chamberlain—Alright, madam, (Both retire)

दिप्पणी—(१) तदाश्रयम्—तद्विषयकम् । उसी के सम्बन्ध का । सा वामवदता आश्रयो यस्य तत् तदाश्रयम् ब० स० । (२) अवतरति—उतर रहा है । अव+तु+लट् । प्र० पु० ए० व० । (३) मिथविष्कम्भकः—मृत और भावी घटनाओं के सम्बन्ध का संक्षेप में निर्देश करने वाली प्रस्तावना मिथ-विष्कम्भक कहनाती है । यहाँ उदयन की पुनः राज्य-प्राप्ति तथा महासेन के संवाद का निवेदन—ये दोनों मृत और भविष्यत् काल के वृत्तान्त मध्यम पात्र कंचुकी और नीच प्रतीहारी द्वारा बताये गये हैं । इसलिए मिथ या संकीर्ण विष्कम्भक हुआ । कहा भी है—‘स तु संकीर्ण नीचमध्यमकल्पितः’

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

राजा—

श्रुतिमुत्तनिनदे ! कयं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्यसे च मुप्ता ।
विहगगणरजोदिकीर्णदण्डा प्रतिभयमघ्युपिताऽस्थरण्यवासम् ॥१॥

भाव—श्रुतिमुत्तनिनदे ! देव्याः स्तनयुगले जघनस्यसे च मुप्ता विहगगण-
रजोदिकीर्णदण्डा प्रतिनयम् स्तरण्यवागम् कयं नु घ्युपिता भनि ॥१॥

संस्कृत टीका—श्रुतिमुखनिनदे !—श्रुत्योः कर्णयोः मुखः आनन्दप्रदः निनदः शब्दः यस्याः सा तयामूते ! (वीणे !), देश्याः—वासवदत्तायाः, स्तनयुगले—कुचद्वन्द्वे, जघनस्थले—कटिपुरोमागे च, सुप्ता—शयनं प्राप्ता मुखस्थितेत्यर्थः, (त्वम् अद्युना) विहगगणरजोविकीर्णदण्डा—विहगानां पक्षिणा गणः समूहः तस्य रजसा मलेन विकीर्णः व्याप्तः दूषित इति यावत् दण्डः प्रवालः यस्याः सा तया-भूता, प्रतिमयं—मयङ्कुरम्, अरण्यवासम्—वनवासम्, कथं नु—कथमिव, अध्युपिताऽनि—आश्रितवत्यसि । (अयं भावः—अयि ! कर्णमधुरस्वरे ! वीणे या त्वं पुनः वासवदत्ताया उत्सङ्गे कुचयुगले च सुखमस्वाप्सीः, ना त्व कथं पक्षिमलदूषित प्रवालं दधाना मयङ्कुरं वनवासम् अध्यवाप्सीः ?) ॥१॥

अनुवाद—(तदनन्तर राजा और विदूषक का प्रवेश ।) हे कानों को सुल देने वाले स्वर वाली वीणा ! तुम तो महारानी के दोनों स्तनों और जाँघों पर सोती थी, फिर पक्षियों के समूह की बीटों से भरे हुए डंडे वाली होकर भयंकर जङ्गल में किस प्रकार रहो हो ? ॥१॥

Then enter king and the jester) Oh (lute) of melodious tunes when indeed (once) you rested on the (pair) of breasts and broad thighs of the queen, how could you suffer the brightful residence in the forests, with your neck scattered with the dirt of multitudes of birds ?

टिप्पणी—(१) निनद—शब्द । 'शब्दे निनादनिनदध्वनिव्वानरवस्वनः' इत्यमरः । नि/नद्+अप् 'नी गदनदपटस्वनः' इत्यनेन । (२) स्तनयुगल—स्तनयोः युगलम् प० त०, तस्मिन् अधिकरणे सप्तमी । (३) जघनस्थले—जघनस्थ स्थलम् प० त०, तस्मिन् । (४) विहग—विहायसा गच्छति-विहायस्+गम्/ङ । (५) दण्ड—वीणा के दण्ड को प्रवाल कहते हैं । 'वीणादण्डः प्रवालः स्यात्' इत्यमरः । (६) प्रतिमयम्—मयकर । 'मयङ्कुरं प्रतिमयम्' इत्यमरः । (७) अरण्यवासम्—उच्यते यत्र इति वासः=निवासस्यातम्, √वत्+घञ् 'हलश्च' इत्यनेन, अरण्यमेव वासः तम् वनस्थलमित्यर्थः । यहाँ 'उपान्वध्याङ्घ्रवतः' सूत्र से कर्मगंजा होने पर द्वितीया हुई । (८) विहगगणरजोविकीर्णदण्डा—पक्षियों के समूह की बीटों से भरे हुए डंडे वाली । विहगाना गणस्य रजः (प० तत्पु०) तेन विकीर्णः—(त० तत्पु०) विहगगणरजोविकीर्णः दण्डः यस्याः सा (ब० वी०) । विकीर्णः—वि+क्+वत् (त) व्याप्त । इस श्लोक में पुष्पिताया छन्द है । तत्त्वमण—“अयजि नयगरेफतो यकारो यजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताया” ॥१॥

अपि च, अस्मिन्धासि धोषवति ! या तपस्विन्या स्मरसि—

और भी, हे धोषवती ! तुम स्नेह-शून्य हो, जो कि तुम बेचारी को याद नहीं करती हो—

And again, Ghoshawati, you are unkind, you do not (unfortunately) remember the poor (queen).

श्रोणीसमुद्रहृन्पाश्वर्निपीडितानि

खेदस्तनान्तरमुखान्युपगूहितानि ।

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि

वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥२॥

अन्वय—श्रोणीसमुद्रहृन्पाश्वर्निपीडितानि खेदस्तनान्तरमुखानि उपगूहितानि च विरहे माम् उद्दिश्य परिदेवितानि च वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि ॥२॥

संस्कृत टीका—श्रोणीसमुद्रहृन्पाश्वर्निपीडितानि—श्रोण्या कटिभागेन समुद्र-हृत्तानि धारणानि पाश्वर्णेन कक्षाध.प्रदेशेन निपीडितानि सघर्षणानि, खेदस्तनान्तर-मुखानि—खेदे वादनश्रमे (सति) स्तनयोः कुचयो. अन्तरे मध्यभागे मुखानि मुखोत्पादकानि, उपगूहितानि—प्राणिङ्गनानि, च—पुनः, विरहे—विभोगे, माम्—उदयनम्, उद्दिश्य—अभिलक्ष्य, परिदेवितानि—विलापान्, च—तथा, वाद्यान्तरेषु—वाद्यानाम् संगीतानाम् अन्तरेषु विरामेषु, सस्मितानि—मन्दहासेन सहितानि, कथितानि—भाषितानि (न स्मरसि) । (अयं भावः—धोषवति ! नूनं त्वं स्नेहरहिता शुष्कहृदयासि । यतस्त्वं देव्याः किमपि मन्दुरचेष्टितं न स्मरसि । वादनावसरे सा त्वाम् स्वकीयोत्पल्ले धृतवती, पाश्वर्भागेन निपीडितवती, संगीत-श्रमेण कुचयोर्मध्ये प्रालिङ्गितवती, मम विभोगकाले माम् उद्दिश्य त्वत्स्वरानुगतानि विलापितानि कृतवती, तथा संगीतानां विरामे सस्मितम् उच्यते । एतानि तस्याः चेष्टितानि स्मरसि किम् ? वद ।) ॥२॥

अनुवाद—जोधो पर धारण करने और बगलो में दबाने को, एक जाने पर मतनो के बीच मुलद प्रालिङ्गनो को, विभोग में मुझे उद्देश्य करके रोने-कलपने को और संगीत के बीच-बीच में मुसकान भरी बातों को याद नहीं करती हो ॥२॥

Her close grasps on the sides while bearing (you) on the hips, her pleasant embrace between her breasts full of sweets, her smiling conversations in the intervals of music (how do you forget all this ?)

टिप्पणी—(१) तपस्विन्याः—रीन, दुखिया । 'मुनिदीनो तपस्विनो' इत्यमरः ।
 यहाँ शेषे पष्ठी या 'अधीगर्गदपेशां कर्मणि' सूत्र से 'स्मरसि' के योग में पष्ठी हुई ।
 (२) श्रोणीसमुद्रहनपाश्वर्चनिपीडितानि—श्रोण्या समुद्रहनानि तू० त० वा श्रोण्या
 समुद्रहनानि स० त०, पार्श्वेन निपीडितानि तू० त०, श्रोणीसमुद्रहनानि च पार्श्व-
 निपीडितानि च इति श्रोणीसमुद्रहनपाश्वर्चनिपीडितानि इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास ।
 श्रोणी—कमर । 'कटिः श्रोणिः' इत्यमरः । श्रोणि+ङीप् सर्वतोऽक्षित्तर्या-
 दित्येके' इति गणमूत्रेण । निपीडितानि—नि√पीड्=णिच्+क्त (त) भावे) ।
 (३) खेदस्तनान्तरसुखानि—स्तनयोः अन्तरम् प० त०, स्तनान्तरे सुखानि
 स० त०, खेदे स्तनान्तरसुखानि स० त० । यहाँ 'खेदे स्तनान्तरे' इस प्रकार व्यरत
 पदों का पाठ होना चाहिए, क्योंकि सामर्थ्याभाव के कारण समास असम्भव है ।
 (४) अन्तर—मध्य । 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्ताधिमेदतादर्थ्ये । छिद्रात्मोय-
 विनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च' इत्यरः । (५) उपगूहितानि—प्रातिगन ।
 उप√गूह्+क्त (त), (भावे) । बिरहे—इसमें 'यस्म च भावेन भाव-
 लक्षणम्' सूत्र से भाव में सप्तमी हुई । (७) परिदेवितानि—विलाप । 'विलापः
 परिदेवनम्' इत्यमरः । परि√देव्+क्त (त) (भावे) । (८) बाधान्तरेषु—बाधों
 के बीच-बीच में अर्थात् संगीतात्मक स्वरों के विराम-काल में । (९) कवितानि—
 वचनानि । कर्मणि द्वितीया । 'स्मरसि' क्रिया का कर्म है । √कप्+णिच्+
 क्त (त) (भावे) । (१०) 'सस्मितानि—मुस्कराहट के साथ । स्मितेन सह
 वर्तमानानि यानि तानि । यह 'कथितानि' का विशेषण है । यह वसन्ततिलका
 छंद है ॥२॥

विदूषकः—अलं दाणि भव अदिमत्तं सन्तप्पिअ । [अलमिदानो भवान-
 तिमात्रं सन्तप्य ।]

विदूषक—इस समय आप बेकार इतना संताप कर रहे हैं ।

Vidushaka—Away with this great anguish now, your Majesty.

राजा—वयस्य ! मा मेवम्,

राजा—मित्र ! न ऐसा न कहो—

King—Friend—no, do not say so.

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।

तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥३॥

अन्वय—चिरप्रसुप्तः मे कामः वीणया प्रतिबोधितः । यस्या घोषवती प्रिया तां देवी तु न पश्यामि ॥३॥

संस्कृत टीका—चिरप्रसुप्तः—चिरं दीर्घकालं प्रसुप्तः शयितः, मे—मम, कामः—प्रियासङ्गमेच्छा, वीणया—अनया घोषवत्या, प्रतिबोधितः—जागरितः । यस्याः—वासवदत्तायाः, घोषवती—इयं वीणा, प्रिया—प्रीतिपात्रम् (आसीत्), तां—मत्प्राणवल्लभा, देवी—वासवदत्ता तु, न पश्यामि—नावलोकयामि । (अयं नावः—वासवदत्तानिघनान्तरम् मम कामः सुप्तप्रायः इव आसीत् । परन्तु अद्य घोषवत्या स प्रतिबोधितः । हा धिक् ! एषा वीणा यस्य मृगमरो-चत, सा मे प्रिया वासवदत्ता अद्यापि न दृश्यते ।) ॥३॥,

अनुवाद—बहुत दिनों के सोये हुए मेरे काम को वीणा ने जगा दिया । किन्तु जिसको यह वीणा प्रिय थी, उस देवी को नहीं देख रहा हूँ ॥३॥

That long dormant desire of mine is roused by the lute. I do not see the queen to whom Ghoshavati was dear.

टिप्पणी—(१) प्रतिपात्रम्—अत्यन्त, अधिक । ‘अतिवेसमृशात्यर्याति-मात्रोद्गाढनिर्भरम्’ इत्यमरः । मात्राम् अतिक्रान्तः इति विग्रहे ‘अत्यादयः क्रान्तादयः ; द्वितीया’ इत्यनेन प्रादितत्पुरुषसमासः, ततः क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया । (२) अलम्—सन्तप्य—सन्ताप करना व्यर्थ है । सम्+तप्+क्त्वा ‘अलखत्वोः प्रतिषेधयोः प्राचा क्त्वा’ इत्यनेन, ततः क्त्वास्थाने ‘समासेज्जञ्पूर्वे क्त्वोऽत्यप्’ इति सूत्रेण त्यप् प्रादेशः । (३) चिरप्रसुप्तः—चिरं वा चिरात् प्रसुप्तः । इति चिरप्रसुप्तः सुप्सुपा समासः । प्रसुप्त—प्र+स्वप्+क्त(त) । (४) प्रति-बोधितः—प्रति+बुध्+णिच्+क्त(त) । (५) कामः—√कम्+णिङ्+घञ्(ध) । (६) प्रिया—√प्री+क’इगुपञाप्रीकिर’ कः’ इत्यनेन, ततः इयञ्, टाप् । यह अनुटुप् छद है ॥३॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शोघ्रमानय ।

वसन्तक ! घोषवती को कारीगर से नयी बनवा कर (अर्थात् मरम्मत करा कर) दीध ले आओ ।

Vidushaka ! Quickly bring back Ghoshavati after putting strings from the artisans.

विदूषकः—ज भवं श्राणयेदि । [वीणां गृहोत्वा निष्क्रान्तः ॥] [यद् भवानाज्ञापयति ।]

विदूषक—जो आपकी आज्ञा । (वीणा लेकर चला जाता है ।)

Vidushaka—As your Majesty commands (Retires with the lute.)

(प्रविश्य) प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो खु महासेनस्स सम्रातादो रंभसगोत्तो कंचुईओ देवीएअङ्गारवदीए पैसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ताघत्तो अपडिहारं उवट्ठिदा । [जयतु भर्ता । एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रंभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याऽङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवत्ताघात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

(प्रवेश करके) प्रतीहारी—महाराज की जय हो । महासेन जी के पास से ये रंभ्य नामक कंचुकी और महारानी अंगारवती की भेजी हुई श्रीमती वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाई द्वार पर उपस्थित हैं ।

(Entering) Door-keeper—Hail, Sire, A herald of the Raibhya clan, from Mahasen's court stands at the gate and the lady Vasundhara, the nurse of Vasavadatta sent by Angarwati has also come.

राजा—तेन हि पद्मावती तावदाहूयताम् ।

राजा—तो पद्मावती को पहले बुला लामो ।

King—Then first let queen Padmavati be called.

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता ।) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा । (चली जाती है ।)

Door-keeper—As you command. (Exit).

राजा—किन्तु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

राजा—क्या प्रभी इतनी जल्दी यह समाचार महासेन जी को मालूम हो गया ?

King—Can it be that so soon has this news been 'known by Mahasena ?

टिप्पणी—(१) शिल्पिजनसकाशात्—कारीगर के पास से । शिल्पी चासी जनश्च इति शिल्पिजनः कर्मधारयः समास, तस्य सकाशम् प० त०, तस्मात् ।

(२) नवयोगाम्—जिसका नया निर्माण या मरमम्त की गई हो । नवः योगः पत्याः सा व० स०, ताम् । (३) उपस्थितौ—यहाँ एक स्त्री और एक पुरुष

कर्ता है । इसलिए 'उपस्थितः च उपस्थिता च' इस विग्रह में पुल्लिङ्ग का एकशेष हो जाने से 'उपस्थितौ' यह प्रथमा-द्विवचन का रूप बनता है । (४) प्रतीहारम्—डचोड़ी पर । (५) तेन—यहाँ हेतु में तृतीया हुई । (६) तेन हि तावत्—यदि ऐसा है तो पहले । (७) विदितः—ज्ञातः । विद् धातु अनेक गणों में अनेक अर्थों में पठित है । दिवादिगण में इसका अर्थ होता है 'सत्ता' और रूप 'विद्यते', अदादिगण में अर्थ 'जानना' और रूप 'वेत्ति', रुधादिगण में अर्थ सोचना और रूप 'विन्ते' तथा सुदादिगण में अर्थ 'पाना' और रूप 'विन्दते—विन्दति' । कहा भी है—'सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे । विन्दते विन्दति प्राप्ती इयन्-सुक्-श्नम्-शेष्विद क्रमात्' ।

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारो च ।) प्रतीहारो—एदु एदु भट्टि-दारिका । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

(तदनन्तर पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश ।) प्रतीहारो—आइये, राजकुमारी जी ! आइये ।

(Then enter Padmavati and door-keeper.) Door-keeper—Come, Come, Princess.

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो ।

Padmavati—Victory to the king.

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं महासेनस्य सकाशाद् रैम्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तस्तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

राजा—पद्मावती ! क्या तुमने सुना कि महासेन जी के पास से रैम्य नामक कंचुकी और पूजनीया अंगारवती की मैजी हुई श्रीमती वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की घाई दोनों डचोड़ी पर आये हुए हैं ।

King—Padmavati, have you heard that the Chamberlain, a kinsmen of the Raibhyas has come from Mahasena, and also a lady Vasundhara, the nurse of Vasavadatta sent by the ladyship, Angarvati; and that both are waiting at the door.

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे आदिकुलस्य कुशलवृत्तन्तं सोदुं ।

[आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

पद्मावती—आर्यपुत्र ! कुटुम्ब-परिवार का कुशल-समाचार सुनना मुझे प्रिय है ।

Padmavati—Your Majesty is will be a (matter of) 'pleasure to me to hear happy news about my kinsmen.

राजा—अनुरूपमेतद्भवत्याभिहितं—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति । पद्मावति । आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

राजा—तुमने यह उचित कहा कि वासवदत्ता के भाई-बिरादर मेरे भाई बिरादर है । पद्मावती ! बैठो । अब क्यों नहीं बैठती ?

King—Fittingly has it been said by your ladyship, that the household of Vasavadatta are your relations. Padmavati take seat, why do you not take a seat now ?

पद्मावती—अथ्यउत्त ! किमए सह उवविष्टो एवं जणं पेक्षिस्सदि ?
[आर्यपुत्र ! किं मया सहोपविष्ट एतं जणं प्रेक्षिष्यते ?]

पद्मावती—आर्यपुत्र ! क्या आप मेरे साथ बैठकर उन लोगों से मिलेंगे ?

Padmavati—Your Majesty, would you like to see them sitting with me ?

राजा—कोऽत्र दोषः ?

राजा—इसमें क्या दोष है ?

King—What harm is there.

पद्मावती—अथ्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होवि ।
[आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इति उदासीनमिव भवति ।]

पद्मावती—आर्यपुत्रने दूसरा विवाह कर लिया है, यह उन्हें अच्छा न लगे ।

Padmavati—Perhaps your second marriage might displease them ?

राजा—कलत्रदर्शनाहं जणं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पाद-
यति । तस्मादास्यताम्

राजा—एकरी को देखने योग्य व्यक्ति को देखने से रोकने में बहुत ही बुराई होती है । इसलिए बैठ जाओ ।

King—The man who from his wife's sight banishes those who are worthy of it, does great wrong. Therefore be seated.

पद्मावती—जं अद्यउत्तो आणवेदि । [उपविश्य] अद्यउत्त ! तादो वा
अम्वा वा किणु खु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता ।
[यदार्थपुत्र आज्ञापयति । आर्यपुत्र ! तातो वाम्बा वा किन्नु खलु
भणिप्यतोत्थाविग्गेव संवुत्ता ।]

पद्मावती—ओ आर्यपुत्र की आज्ञा । (बैठकर) आर्यपुत्र ! पिता जी या
माता जी क्या कहेंगी, यह सोच कर उद्विग्न-सी हो रही हूँ ।

Padmavati—As my Lord commands (sits). My lord, my heart
is anxious to learn what message, our father or mother have sent.

दिव्यणी—(१) जातिकुलस्य—मन्त्रग्नियों या ऋषियों के घर का ।
'मगोत्रवान्यवजातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः' इत्यमरः । अथवा जातिकुल—जातकुल ।
'जातिस्तातसगोत्रयोः' इति मेदिनी । जाति—√जा+कितच् । (२) प्रियं मे—
यहाँ 'मे' यह का अन्वय 'मध्यमग्न्याय' से 'प्रियम्' और 'जातिकुलस्य' दोनों के
साथ है । (३) श्रोतुम्—यहाँ प्रियम् और 'श्रोतुम्' दोनों के एक ही कर्ता होने के
कारण 'समानकर्तृकेषु तुभुन्' सूत्र से तुभुन् प्रत्यय हुआ । (४) अनुरूपम्—
उचित । अर्थात् कुल-शील के योग्य । रूपस्य योग्यम् इति अनुरूपम्, योग्यता के
अर्थ में अव्ययीभाव समाप्त । (५) परिग्रहः—पत्नी । परिग्रह्यते इति ।
परि√ग्रह्+अप् । 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः । (६) उदा-
सीनमिव—प्रवाछनीय जैसा । अर्थात् आपने दूसरी पत्नी कर ली, यह उन्हें
अशुचिकर प्रतीत होगा । (७) कलत्रदर्शनाहं जनं—यहाँ 'राजा के कहने का भाव
यह है कि जो व्यक्ति पत्नी को देखने का अधिकारी है, उसे यदि पत्नी न दिखायी
जाय तो बुराईयाँ उत्पन्न होती हैं । आगन्तुक कंचुको और घात्री के लिए जिस
प्रकार वासवदत्ता थी उसी प्रकार पद्मावती भी । इनसे पत्नी को छिड़ाना मन में
पाप रखना है । ऐसे दुराव से हम केवल अपपश के भागी बनेंगे । इसलिए तुम्हारे
साथ ही मैं उनसे मिलूँगा । कलत्र—पत्नी । 'कलत्र श्रोणिभार्ययोः' इत्यमरः ।
कलत्रस्य दर्शनम्, तस्य ग्रहः प० त०, तम् । (८) ग्रहं—√ग्रह् (पूजायाम्) +
अच् । (९) बहुदोषम्—अनेक प्रकार के दोषों को । यहाँ 'बहून् दोषान्' होना
चाहिये था, किन्तु जातिगत एकस्य की विवशा से एकवचन हुआ । (१०) कलत्र-
दर्शनात् परिहरति—'अपादाने पञ्चमी' तथा 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' सूत्र-से
पञ्चमी हुई है । यहाँ 'वारणार्थानामोचितः' सूत्र लागू नहीं होता, क्योंकि । कर्ता
की कलत्रदर्शन अभीष्ट नहीं है ।

इन पंक्तियों में पद्मावती के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है । उसमें सापत्न्य भावना का सर्वथा अभाव है । अपनी सपत्नी वासवदत्ता के संबंधी जनों में उसका आत्मीय भाव है । प्रतीहारी तथा धात्री की भावना पर आघात पहुँचने की आशंका से वह राजा के साथ नहीं बैठना चाहती ।
राजा—पद्मावती ! एवमेतत् ।

King—Even so Padmavati.

राजा—पद्मावती ! बात तो ऐसी ही है ।

**किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
 कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा ।**

भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः

पुत्रः पितुर्जनितरोप इवास्मि भीतः ॥४॥

अन्वय—किं वक्ष्यति इति मे अपि हृदयं परिशङ्कितम्, कन्या मया अपहृता न च सा रक्षिता । चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितुः जनितरोपः पुत्र इव भीतः अस्मि ॥४॥

संस्कृत टीका—किं वक्ष्यति—किं कथयिष्यति दूतमुखेनेति शेषः, इति—अस्मिन् विषये, मे अपि—ममापि, हृदयं—मनः, परिशङ्कितम्—शङ्काकुलं (वर्तते) कन्या—कुमारी वासवदत्तेति यावत्, मया—उदयनेन, अपहृता—अपनीता, न च—नैव, सा—कन्या, रक्षिता—परिपालिता । चलैः—चञ्चलैः, भाग्यैः—देवैः, महदवाप्तगुणोपघातः—महत्सु गुरुजनेषु अवाप्तः प्राप्तः गुणानां सदाचारादीनाम् उपघातः भङ्गः येन स तथाभूतः, (अहम्) पितुः—जनकस्य, जनितरोपः—जनितः उत्पादितः रोपः श्लोघः येन स तादृशः, पुत्र इव—तनय इव, भीतः—अययुक्तः, अस्मि—विद्ये । (अयं भावः—तातः अम्बा वा किं सन्देक्ष्यति—इति विमृश्य अहमपि उद्विग्नो बोधवीमि । यतो हि तयोः अनूढा पुत्री अनुमतिमन्तरेणैव मया कौशाम्बीम् आनीता । परं तस्याः परिपालने अहं सर्वथा अयोग्यः संवृत्तः । इत्थं सदाचारविनयादीनां गुणानाम् उल्लङ्घनेन अहं पितुः कृतापराधः पुत्र इव भीतोऽस्मि ।) ॥४॥

अनुवाद—क्या कहेंगे—इस बात से मेरा भी हृदय सशंकित है । मैंने उनकी पुत्री को भगाया, पर उसकी रक्षा नहीं की । (इस प्रकार) चंचल भाग्य के कारण गुरुजनो के प्रति शिष्टाचार का उल्लंघन करने वाला मैं पिता के श्लोघ को उत्पन्न करने वाले पुत्र के समान डरा हुआ हूँ ॥४॥

I stole away their maiden daughter and did not preserve her. Through the fickleness of fortune I have transgressed and greatly transgressed and I feel afraid like a son who has given cause for anger to his father.

टिप्पणी—(१) वक्ष्यति—कहेंगे, ब्रू या वच्+लृट् प्र० पु० ए० व० ।
 (२) परिशङ्कितम्—भय से पूर्ण । परिशङ्का+इतच् 'तदस्य सञ्जात'—मित्यादिना
 अथवा परि+शङ्क्+क्त(त) । (३) कन्या—कुमारी, बिना व्याही लड़की ।
 'कन्या त्वजातोपयमा' इति दर्पणः । (४) भाग्यैः—यहाँ हेतु मे तृतीया हुई ।
 (५) महदवाप्तगुणोपघातः—जिसने बड़ों के प्रति सदाचारमर्यादा को तोड़
 दिया । गुणानाम् उपघातः गुणोपघातः प० त०, महत्सु अवाप्तः महदवाप्तः स०
 त०, महदवाप्तः गुणोपघातः येन व० स० । (६) उपघात—मङ्ग, नाश ।
 उप+हन्+घञ् । (७) पितुः—यहाँ 'मीत्रार्यानां भयहेतुः' सूत्र से अपादान में
 पंचमी हुई । (८) पिता—√पा (रक्षणे) +तृच् । (९) पुत्रः—'पृत्' नाम-
 नरकात् त्रायते यः सः पुत्रः, पुत्+प्र+क पुत्राप्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।
 तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ (१०) जनितरोपः—कोय को उत्पन्न
 करने वाले, जनितः रोपः येन सः जन्+णिच्+क्त (त) कर्मणि । रुप्+
 घञ्—रोपः । (११) पितुः—'मीत्रार्यानां भयहेतुः' से पंचमी । मीतः√मी
 (मये)+क्त (त) (कर्तरि) । इस दलोक में उपमा अलंकार है और वसन्त-
 तिलका छन्द है । 'उज्जता वसन्ततिलका तमजा जगो यः' ॥४॥

पद्मावती—ए कि सचकं रक्खिदुं पत्तकाले ? [न कि शक्यं रक्षितुं
 प्राप्तकाले ?]

पद्मावती—क्या उचित समय पर रक्षा नहीं की जा सकती ? (भर्मात्
 घनकूल समय में आप उनकी रक्षा अवश्य करते । प्रतिकूल समय में कोई किसी
 की रक्षा नहीं कर सकता । अतएव इसमें आपका कोई दोष नहीं है ।)

Padmarati—What thing can be preserved whose time has
 come ?

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवठिट्वा । [एय
 काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ॥

प्रतीहारी—ये कचुकी और धाईदोनो दरवाजे पर सड़े हैं ।

Door keeper—The Chamberlain and the nurse both are
 standing at the door.

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

राजा—शीघ्र अन्दर ले आओ ।

King—Admit them speedily.

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि [यद् भर्तृनापयति ।] (निष्क्रान्ता ।)

प्रतीहारी—जो स्वामी की आज्ञा । (चली जाती है ।)

Door-keeper—As my lord wills. (exit)

टिप्पणी—(१) न किं शक्यम्—यहाँ पद्मावती के कहने का भाव यह है कि मनुष्य का जीवन नियत है । जब उस जीवन की अवधि समाप्त हो जाती है तो उसका विनाश-काल आ जाता है । उस समय उसे कोई नहीं बचा सकता । उत्पत्ति के बाद नाश तो निश्चित ही है । अतएव देवी वासवदत्ता की मृत्यु होनी ही थी । इसमें आपका क्या दोष है ? 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुव जन्म मृतस्य च' इति गीता । (२) शक्यम्—√शक्+यत् 'शक्तिसहोश्च' इति सूत्रेण । (३) प्राप्तकाले—योग्य अवसर पर । प्राप्तश्चासौ कालः प्राप्तकालः कर्म० स० तस्मिन् । (४) प्रवेश्यताम्—प्र√विश्+णिच्+लोट् (कर्मणि) ।

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च ।) काञ्चुकीयः—
भोः !

(तदनन्तर काञ्चुकी, धाई और प्रतीहारी का प्रवेश ।) काञ्चुकी—महा !

(Enter chamberlain, and the nurse and the door-keeper.)

Chamberlain—Aha,

सम्बन्धिराज्यमिदमेतत् महान् प्रहयः

स्मृत्या पुनर्नृपसुतानिधनं विपादः ।

किं नाम देव ! भवता न कृतं यदि स्याद्

राज्यं परैरपहतं कुशलं च देव्याः ॥५॥

अन्वय—इदम् सम्बन्धिराज्यम् एष महान् प्रहयः, पुनः नृपसुतानिधनम् स्मृत्वा विपादः । देव ! यदि परैः अपहतम् राज्यम् च देव्याः कुशलं, भवता किं नाम न कृतं स्यात् ॥५॥

संस्कृत टीका—इदम्—एतत्, सम्बन्धिराज्यम्—सम्बन्धिनः स्वामित्रामातुः राज्यम्—वत्सदेवताम्, एष—प्राप्य, महान्—भूयान्, प्रहयः—घानन्दः (भवति)

पुनः—किञ्च, नृपसुतानिवनम्—नृपसुतायाः राजकुमारीः वासवदत्ताया इति यावत्, निघनं—मरणं, स्मृत्वा—चिन्तयित्वा, विषादः—दुःखम् (भवति) । देव !—हे भाग्य !, यदि—चेत्, परैः—शत्रुभिः, अपहृतम्—बलात् गृहीतम्, राज्यं—वत्सदेशाधिपत्यं, च—तथा, देव्याः—वासवदत्तायाः, कुशलं—क्षेमम् (भवेत् तर्हि), भवता—स्वया किं नाम—किमिव, न कृतं स्यात्—नानुष्ठितं भवेत् । (अयं भावः—अस्मत्स्वामिनो जामातुः राज्यमागत्य अतीवाहम्माद्यामि । परन्तु राजकुमारीः वासवदत्तायाः मरणं सञ्चित्य विधीदामि च । हे भाग्येय ! यदि भवत्कृपया शत्रुभिः अपहृतं वत्सराज्यं यथा मिलितं तथा वासवदत्ता अपि मिलिता भवेत्तदा भवता अस्माकं महाराजस्य किं नाम हितं न कृतं भवेत् अपि तु सर्वमपि कल्याणं सम्पादितं भवेत् ।)

अनुबाह—इस सम्बन्धी के राज्य में आकर बड़ा हर्ष हो रहा है । फिर राजपुत्री की मृत्यु का स्मरण करके शोक हो रहा है । ओ भाग्य ! यदि शत्रुओं से छोना हुआ राज्य और महारानी की कुशल मिल जाती तो तूने क्या नहीं किया होता ॥५॥

रज्यं (only) was captured by the enemies leaving the queen happy (i. e. untouched)

टिप्पणी—(१) सम्बन्धिराज्यम्—कुटुम्ब का राज्य । सम्बन्धिनः राज्यम् प० त०, सम्बन्ध+इनि=सम्बन्धी, राजः कर्म भावो वा इति विग्रहे राजन्+यत्=राज्यम् । एत्य—आकर । आ+इ+क्त्वा—त्यप् । यहाँ एककर्तृक क्रिया में क्त्वा प्रत्यय की सिद्धि के लिए 'एत्य' के आगे 'स्यितस्य' जैसे किसी पद का अध्याहार कर लेना चाहिए । (२) निघनम्—मृत्यु । 'मरणं निघनोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । (३) किं नाम देव—यहाँ तात्पर्य यह है कि हे देव ! जैसे तुम्हारी कृपा से छोया हुआ राज मिल गया उसी तरह यदि वासवदत्ता सकुशल मिल जाती तो निःसन्देह यह बात सोने में सुगन्ध की तरह होती । इससे अधिक सुख की कामना क्या की जा सकती है ? नाम—सम्भावना में अव्यय का प्रयोग हुआ है 'नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधापगमकुत्सने' इत्यमरः । (४) स्यात्—यह भ्रस् पातु के विधिलिङ् लकार के प्रथमा-एकवचन का रूप है । यही 'इच्छार्थेऽ लिङ्लोटौ' सूत्र से लिङ् हुआ । इस श्लोक में वसन्ततिलका छंद है ॥५॥

प्रतीहारो—एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो । [एव भर्ता, उपसर्पत्वायः ।]

प्रतीहारो—ये स्वामी हैं । आप जायें ।

Door-keeper—Here is the king. Draw near sir.

काञ्चुकीयः—[उपेत्य] जयत्वार्थपुत्रः ।

कञ्चुकी—(समीप जाकर) महाराज की जय हो ।

Chamberlain—(Going near) Hail, Prince.

घात्री—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

घाई—स्वामी की जय हो ।

Nurse—Hail.

राजा—[सबहुमानम्] आर्य !

राजा—(सम्मान के साथ) आर्य ।

King—(Respectfully), sir.

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः ।

अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ॥६॥

अन्वय—पृथिव्याम् राजवंश्यानाम् उदयास्तमयप्रभुः मया काङ्क्षितबान्धवः स राजा अपि कुशली ? ॥६॥

संस्कृत टीका—पृथिव्यां—भूमी, राजवंश्यानां राजवंशीद्भवानां नृपाणा-
मिति यावत् उदयास्तमयप्रभुः—उदयः उन्नतिः अस्तमयः भवनतिः तयोः प्रभुः
समर्थः, मया—वत्सराजेन, काङ्क्षितबान्धवः—काङ्क्षितम् अभिलषितम् बान्धवं
बन्धुत्वं येन तथामृतः, स राजा—पूजनीयो महासेनः, अपि कुशली—कुशलमुक्तो
वर्तते किम् ? (अयं भावः—मः पृथिव्यां सर्वेषामपि राज्ञामुत्कर्षार्थं हेतुरस्ति
तथा येन मया सह बन्धुभावः अभिलषितः तस्य सम्राजो महासेनस्य कुशल-
माचक्ष्व ।) ॥६॥

अनुवाद—पृथ्वी पर से समस्त राजाओं के उत्थान-पतन करने में समर्थ
तथा मेरे साथ बन्धुत्व स्थापित करने के इच्छुक वे राजा कुशल से हैं न ?

Is that king who makes the rise and fall of the royal scions
in (this) world (and) with whom I desired friendship doing well?

टिप्पणी—(१) राजवंशानाम्—राजवंश मे । उत्पन्न अथवा राजाओं के वंशधरों के । वंशे भवाः [वंश्याः वंश+यत्, राजां वंश्याः राजवंश्याः प० त० तेषाम् । (२) उदयास्तमयप्रभुः—उद $\sqrt{\text{इ}}+\text{अच्}=\text{उदयः}$, अस्तम् $\sqrt{\text{इ}}+\text{अच्}=\text{अस्तमयः}$, उदयश्च अस्तमयश्च उदयास्तमयो द्वन्द्वसमास, तयोः प्रभुः प० त० । प्र+भू+ङ् इति प्रभुः । तत्कालीन इतिहासज्ञो के अनुसार मगध के सम्राट् भी अवन्तिनाथ प्रद्योत का लोहा मानते थे । (३) काश्चित्तवान्धवः—सम्बन्ध या मित्रता चाहने वाला । बन्धोर्भावः बान्धवम्, बन्धु+भण् । (४) अपि कुशली—क्या कुशल से है ? यहाँ अपि शब्द प्रदनायक है । 'गर्हासमुच्चयप्रश्नश्चासम्भावनास्वपि' इत्यमरः । (५) कुशली—कुशलम् अस्ति अस्य इति विग्रहे कुशल+इति । यह अनुष्टुप् छन्द है ॥६॥

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? कुशली महासेनः । इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।

कंचुकी—और क्या ? (जी हाँ,) महामेन जी कुशल से हैं । यहाँ भी सबका कुशल-मगल पूछा है ।

Chamberlain—Yes, Mahasena is well. He also enquires of the welfare of all here.

राजा—[आसनादुत्थाय] किमाज्ञापयति महासेनः ?

राजा—(आसन से उठकर) महासेन जी की क्या आज्ञा है ?

King—(Rising from his seat) what are the orders of Mahasena.

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य । नन्वासनस्थेनेव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः ।

कंचुकी—यह (शिष्टता) वैदेही पुत्र (प्राप) के अनुरूप ही है । किन्तु प्राप आसन पर बैठे ही बैठे महासेन जी का सदेश सुनें ।

Chamberlain—This reverence is worthy of the son of Vaidehi. Even while on your seat you deserve to listen to Mahasena's message.

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः । [उपविशति ।]

राजा—महासेन जी की जो आज्ञा । (बैठ जाता है ।)

King—As Mahasena orders. (Sits down).

काञ्चुकी—दिष्ट्या परंपरहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति । कुतः—

काञ्चुकी—भाग्य से शत्रुओं द्वारा छीना हुआ राज्य फिर लौटा लिया गया ।
अथोक्ति—

Chamberlain—Fortunately the kingdom seized by the enemies has been regained by you because.

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।

प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥७॥

अन्वय—ये कातराः अपि वा अशक्ताः तेषु उक्ताहः न जायते । हि प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव भुज्यते ॥७॥

संस्कृत टीका—ये—पुरुषाः, कातराः—अवीराः, अपि वा—प्रथवा, अशक्ताः—दुर्बलाः (मबल), तेषु—पुरुषेषु, उक्ताहः—कर्मकरणे साहस, न जायते—न उत्पद्यते । हि—यतः, प्रायेण—बहुधा, नरेन्द्रश्रीः—राजलक्ष्मीः, सोत्साहैः—उत्साहसम्पन्नैः, एव, (पुरुषैः), भुज्यते—उपभुज्यते आस्वाद्यते इत्यर्थः । (अयं भावः—धैर्येण शक्त्या वा विहीनाः पुरुषाः किमपि कार्यं सोत्साहं वक्तुं न प्रभवन्ति । एतादृशानां पुरुषाणां राजलक्ष्मीः योग्या न भवति । यतो हि ना प्रायेण उत्साहिभिर्जनैः उपभुज्यमाना दृश्यते ॥७॥

अनुवाद—जो अधीर या भयमय होते हैं, उनमें उत्साह नहीं होता । और जो उत्साही हैं, वे ही प्रायः राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं ॥७॥

In those who are cowardly or incapable, no strenuous effort is possible. Generally the dignity of a king is enjoyed by those who possess perseverance only.

टिप्पणी—(१) सर्वगतम्—सभी का । सर्वान् गतम् इति सर्वगतम् 'द्वितीया श्रितातीत'—इत्यादिना द्वितीयात्पुरुषसमासः (२) वैदेहोपुत्रस्य—विदेहस्य—मिथिलापतेः अपत्य स्त्री वैदेही—उदयनस्य माता, विदेह+अण् 'तस्यापत्यम्' इत्यनेन, ततः 'टिह्वाणञ्' इत्यादिना ङीप्, तस्याः पुत्रस्य । कवि के 'वैदेहोपुत्रस्य' के प्रयोग से मिथ होता है कि उस समय मिथिला की संस्कृति बहुत ऊँची थी । वहाँ की स्त्रियाँ विनय, शील, वैदुष्य आदि गुणों से सम्पन्न होती थी । राजा भी मैथिलियों में विनयता विशेष रूप से पायी जाती है । (३) आसनस्थेन—आसन पर बैठ ही बैठे । आसने तिष्ठतीति आसनस्थः तेन । आस्यते अस्मिन्-अस्मिन् आसनम् आसु+ल्यट् । (४) दिष्ट्या—यह हर्षमूषक तृतीयान्त प्रतिकरक

अव्यय है । 'दिष्ट्या समुपजीवं चेत्यानन्दे' इत्यमरः । (५) उत्साहः—कार्य करने का उत्साह या प्रेरणा, अध्यवसाय । 'उत्साहोध्यवसायः स्यात्' इत्यमरः । उत्/सह्+घञ् । (६) सोत्साहेः—उत्साहेन सह वर्तमानाः इति सोत्साहाः 'तिन सहेति तुल्ययोगे' इति सूत्रेण बहुव्रीहिसमासः, तं । इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा और अर्थान्तरन्यास अवकार है । तल्लक्षण काव्यप्रकाशे—'अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सेव प्रस्तुताधया । अर्थात् अप्रस्तुत अर्थ के कथन से प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति में अप्रस्तुतप्रशंसा अवकार होता है । 'सामान्य वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते । यत्तु मोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ॥ अर्थात् सामान्य कथन का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से जहाँ समर्थन हो वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है । यहाँ अनुष्टुप् छंद है ॥७॥

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनस्य प्रभावः । फुलः—

राजा—आर्य । यह सब तो महासेन जी का ही प्रभाव है । क्योंकि—

King—Sir all this is due to Mahasena's prowess. Because—

टिप्पणी—अभिज्ञानशानुत्तलस्य सप्तमेऽङ्के द्रष्टव्यं—राजा—अत्र खलु शतशतरेव महिमा स्तुत्यः । निध्नन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्निषोद्याः संभावना-गुणमवेहि तमीश्वराणाम् । किं वाऽमविष्यदरुणस्तमसां विमेता तं चेत्तदह्यकिरणो घुरि नाकरिष्यत् ।

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतः सह लालितो

दुदमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव नपि स्वता

ननु यदुचितान्वत्तान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ॥८॥

अन्वयः—पूर्वम् तावत् अहम् अवजितः, सुतः सह लालितः, मया कन्या दुदम् अपहृता भूय. न च रक्षिता । तस्या निधनं श्रुत्वा अपि मयि तथैव स्वता, ननु उचितान् वत्तान् प्राप्तुम् यत्, अत्र नृपः हि कारणम् ॥८॥

संस्कृत टीका—पूर्वं तावत्—गजग्रहणावसरे, अहम्—उदयनः, अवजितः—पराजित्य निगृहीतः, सुतं—पुत्रं, सह—साक, लालितः—शालनपूर्वकं पालितः, मया—वत्सराजेन, कन्या—कुमारी महाराजमहासेनस्य पुत्री वासवदत्तेति यावत्, दुदम्—बलपूर्वकम्, अपहृता—अपनीता स्वगृहम् आनीतेति यावत्, नृपः—

‘पुनश्च, न च—नैव, रक्षिता—अग्निदाहात् आता । तस्याः—स्वीयपुत्र्याः,
 ‘निघनं—मरणं, श्रुत्वा अपि—आकर्ण्य अपि, मयि—उदयने, तर्पय—पूर्ववदेव,
 स्वता—आत्मीयता (अस्ति), ननु निःसन्देहम्, उचितान्—मच्छाशनयोग्यान्
 मशीयान् इति यावत्, वत्सान्—वत्सदेशान्, प्राप्तुम्—पुनर्लब्धुम्, यत्—
 धर्मबलोत्साहादिजयोपकरणम् (आसीत्), अत्र—अस्मिन् जयोपकरणे, नृपः—
 राजा महासेनः, हि—एव, कारणम्—हेतुः । (अयं भावः—अहं पुरा गज-
 मृगयावसरे महाराजमहासेनेन बन्दीकृत्यापि पुत्रवत् पालितः । परन्तु कृतघ्नोऽहं
 तदीयां कुमारीं वासवदत्ताम् अपाहरम्, देवात् अग्निना दह्यमानां च तां रक्षितुं
 नापारयम् । तस्याः मृत्योः समाचारं श्रुत्वापि महाराजः पूर्ववदेव मयि स्निह्यति ।
 अतः निश्चयमहं वक्तुं शक्ये यत् शत्रुभिः अपहृतस्य राज्यस्य मया पुनः
 स्वायत्तीकरणे महाराजमहासेनस्यैव प्रभावातिशयो विद्यते ।) ॥८॥

अनुवाक—पहले मैं जीता जाने पर भी (महाराज महासेन द्वारा अपने)
 पुत्रों के साथ (समान भाव से) पाला गया । फिर भी मैं उनकी पुत्री को
 बलपूर्वक भगा ले आया, पर उसकी रक्षा न कर सका । उसकी मृत्यु की बात
 सुनकर भी वे मुझपर पूर्ववत् ममता या स्नेह रखते हैं । निश्चित है कि मैंने जो
 न्यायपूर्वक वत्सराज्य को पुनः प्राप्त किया, उसमें राजा (महासेन) ही कारण
 है ॥८॥

Formerly defeated, I was even then fondled together with
 his sons. His daughter was stolen by me and not cared for. Even
 after the tidings of her death, he shows the same affection as
 before, Truly it is to his favour that I owe it that Vatsa land
 obeys me once again.

टिप्पणी—(१) पूर्वम्—इसमें त्रिपाविशेषणत्वात् द्वितीया हुई ।
 (२) अवजितः—हराया गया । अव+जि+क्त(त) । (३) दृढम्—यहाँ भी
 त्रिपाविशेषणत्वात् द्वितीया हुई । (४) मयि—यहाँ विषयाधिकरण में गन्तमी
 हुई । (५) स्वता—आत्मीयता, ममता । स्वस्य भावः स्व+तन् (भावे)+
 टाप् (आ) म्रियाम् । ‘स्वो मातायात्मनि स्वं त्रिष्व्वात्मीये’ इत्यमरः । (६) प्राप्तुम्—
 यहाँ द्वितीया हुई ‘आसीत्’ त्रिपा के योग में ‘शक्यपुपगाग्यापटरभसनद्रमगहार्हाम्यवेष्टु
 तुमुन्’ सूत्र से तुमुन् प्रत्यय हुआ । (७) नृपः हि कारणम्—यहाँ कारण
 शब्द निमित्त नृप+सक+सिग होने से नृपः का विधेय होने पर भी पुंलिङ्ग नहीं हुआ ।
 ‘राजा भी है—’ उद्देश्ये च विधेये च विभक्तिः गन्तमी भवेत् । कर्वाणु जायते तच्च

वैपम्यं लिंगसंख्ययोः ॥' (८) हि—एव । 'हि हेतावधारणे' इत्यमरः । (९) ननु—अव्यय—निश्चय ही । इस श्लोक में हरिणी छंद है । तल्लक्षण—रसयुगहयन्सौ श्री स्त्री गो यदा हरिणी तदा ॥८॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः । देव्या सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति ।

कंचुकी—यह महासेन जी का सन्देश है । महारानी का सन्देश पूज्यवसुन्धरा कहेंगी ।

Chamberlain—This is Mahasena's message. This lady Vasundhara will tell the queen's message.

राज—हा ! अम्ब !

राजा—हाय माता !

King—Oh mother.

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता ।

मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु ॥६॥

अव्यय—ननु षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ? ॥६॥

संस्कृत टीका—ननु—प्रश्नार्थकमव्ययमिदम्, षोडशान्तःपुरज्येष्ठा—षोडशानाम् एतत्संख्याकानाम् अन्तःपुराणाम्—अन्तःपुरस्थस्त्रीणाम् ज्येष्ठा प्रधानभूता, पुण्या—पवित्रचरित्रा, नगरदेवता—नगरस्य देवता इव स्थिता, मम—उदयनस्य, प्रवासदुःखार्ता—प्रवासस्य देशान्तरवासस्य दुःखेन कष्टेन धार्ता पीडिता, माता—अम्बा, कुशलिनी—क्षेमयुक्ता ? (अथ भावः—महाराज-महासेनस्य षोडशप्रधानपत्नीषु सर्वज्येष्ठा, नगरवासिना जनानां देवता इव मान्या शुद्धाचरणा, मम उज्जयिन्याः कीशाम्बी प्रतिपलायनेन वियोगदुःखेन दुःखिनी माता कुशलयुक्ता वर्तते न ?) ॥६॥

अनुवाद—सोलह रानियों में प्रधान, नगर की देवता और मेरे परदेश के दुःख से दुःखिनी माता जी कुशल से तो हैं न ? ॥६॥

The most senior of the Sixteen queens, holy, the deity of the city my mother, afflicted by the sorrow of our absence, is she well?

टिप्पणी—(१) अम्ब ! मातः !, यहाँ अम्बा शब्द के सम्बोधन में 'अम्बार्य-नयोहंस्वः' सूत्र से ह्रस्वता हुई । धर्मशास्त्र के अनुसार मनुष्य की पाँच मातायें

मानी जाती हैं—अपनी माता, पत्नी की माता, गुरुपत्नी, राजपत्नी, मित्र-पत्नी । इस दृष्टि से उदयन^१ का अपनी सास को माता कहकर सम्बोधित करना उचित ही है । (२) षोडशान्तःपुरज्येष्ठा-षोडशसंख्यकानि अन्तःपुराणि षोडशान्तःपुराणि मध्यमपदलोपी समास, तेषु ज्येष्ठा त० स० । यहाँ अन्तःपुर शब्द का लाक्षणिक अर्थ—अन्तःपुर की रानियाँ—विवक्षित है । वैसे अन्तःपुर का अर्थ रनिवास होता है । ‘स्थगारं, भूमुजामन्तःपुरम्’ इति कोपः । (३) पुण्या—पवित्र या धर्मात्मा । पुण्यम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे पुण्य+अच् धर्मआदिवात् ततष्ठाप् । (४) नगरदेवता—यहाँ नगर का लाक्षणिक अर्थ नगरनिवासी श्रीर देवता का देववत् पूज्य समझना चाहिए । फलतः समुदाय का अर्थ हुआ नगरनिवासियों का पूज्य । (५) प्रवासदुःखार्ता—परदेश के दुःख से दुःखी, प्र✓वत्+घञ्—प्रवासः तस्य दुःखम् (प० त०) तेन ऋता प्रवासदुः-खार्ता—‘ऋते च तृतीयासमासे’ सूत्र से ऋकार की वृद्धि हुई । अथवा प्रवासदुः-खेन प्रार्ता । (६) कुशलिनो—कुशलम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे कुशल+इति—ङीप् । यह अनुष्टुप् छंद है, तत्त्वक्षण—पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः । पष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥६॥

धायी—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुशलं पृच्छदि । [अरोगा भट्टिनी भर्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।]

घाई—नीरोग महारानी ने आप सेवका कुशल-मंगल पूछा है ।

Nurse—The queen is well. She enquires of your lordship regarding the welfare of all.

राजा—सर्वगतं कुशलमिति ? अम्य ! इदं कुशलम् ।

राजा—सब की कुशल ? माता ! कुशल तो ऐसी ही है ।

King—Oh the welfare of all, oh mother. This sort of welfare.

धायी—मा दाणि भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं । [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।]

घाई—अब आप अधिक शोक न करें ।

Nurse—Nay grieve not over much.

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः उपरताऽप्यनुपरता महासेनपुत्री
एयमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा—

कंचुकी—भार्यपुत्र धैर्य धारण करें । भार्यपुत्र द्वारा इस प्रकार स्मरण की जाने वाली महासेन जी की पुत्री मर कर भी नहीं मरी । अथवा—

Chamberlain—Have patience, sire, thus held in fond remembrance she being dead yet lives or.

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले-काले छिद्यते रह्यते च ॥१०॥

अन्वय—मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः ? रज्जुच्छेदे के घट धारयन्ति ?
एवं वनानां तुल्यधर्मः लोकः काले-काले छिद्यते रह्यते च ॥

संस्कृत टीका—मृत्युकाले—मरणसमये, कः—अर्थात् मृत्युनिवारणतत्परोऽपि कः नरः, कम्—अतिशयप्रियमपि जनम्, रक्षितुं—मृत्युमूखात् त्रातुं, शक्तः—समर्थः ? रज्जुच्छेदे—रज्जोः गुणस्य कृपाज्जलाहरणार्थं घटग्रीवायां बद्धस्य वस्तुन इति यावत् छेदे मंगे (सति), के—पुरुषाः, घटं—रज्जुच्छेदेन कूपमध्ये पतन्तं कलशम्, धारयन्ति—गृह्णन्ति ? एवम्—इत्यम्, वनानाम्—अरण्यानाम् तत्स्यवृक्षाणामिति यावत्, तुल्यधर्मः—तुल्यः समानः धर्मः विनाशोत्पत्तिरूप-स्वभावः यस्य स तादृशः, लोकः—जनः, काले-काले—समये-समये यथाकाल-मिति यावत्, छिद्यते—छेदं प्राप्नोति नश्यतीत्यर्थः, रह्यते—च उत्पद्यते च । (अयं भावः—मृत्युकाले समायाते सति कोऽपि कमपि त्रातुं न शक्नोति । यथा अबलम्बभूताया रज्जो छिन्नायां सत्या घटः मध्येकूपं पतति न केऽपि तं पतनाद् धारयितुं प्रभवन्ति तथैव आयुषः क्षये सति अयिमाणं जनं रक्षितुं कोऽपि न क्षमो भवति । तथा च वनस्थाः पादपा यथा यथाकालमुत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च, एवमेव प्राणिनां जन्ममृत्युं नियतकालमाविनावनिवार्यो स्तः । इत्थं च सर्वथा देवपरतन्त्रे संसारे भवता धैर्यमवलम्ब्य वासवदत्ताविषये शोको न कर्तव्यः ।) ॥१०॥

अनुवाद—मृत्यु के समय कौन किसको बचा सकता है ? रस्ती के टूट जाने पर कौन घड़े को (गिरने से) रोक सकते हैं ? इसी प्रकार वृक्षों के समान स्वभाव वाले मनुष्य समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते हैं । (अर्थात् जैसे वृक्ष समय आने पर काटे जाते हैं और फिर समय आने पर पनप उठते हैं उसी तरह मनुष्य भी समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते रहते हैं) ॥१०॥

Who can save one at the time of death, What can hold the water jar, when the rope is cut. Thus the world has a common

peculiarity with the woods; at regular periods it is pruned and it is grown.

टिप्पणी—(१) अरोगा—रोगरहित, स्वस्थ । नास्ति रोगो यस्याः सा अरोगा 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इति वार्तिकेन नञ्बहुव्रीहिस्मान्नः ।
 (२) भर्तारम्—यहाँ द्विकर्मक प्रच्छंघातु के योग में 'अकथितञ्च' सूत्र से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया हुई । (३) धारयतु—आश्चस्त होइये या धैर्य धारण कीजिये ।
 (४) अनुकम्प्यमाना—अनुगृहीत की जाने वाली । अनु+कम्+णिच्+लट् (कर्मणि), शानच् । (५) रज्जुच्छेदे—रस्सी के टूट जाने पर । यहाँ तात्पर्य यह है कि जैसे कुएँ से पानी भरने वाले घड़े की रस्सी यदि टूटी नहीं है तो सब कोई उस घड़े को धामे रह सकते हैं, पर यदि रस्सी टूट जाती है तो कोई भी उस घड़े को नहीं धाम सकता है । उसी तरह मनुष्य की आयु जब तक अशीण रहती है तब तक उसकी रक्षा के लिए किये जाने वाले सभी उपाय सफल होते हैं । परंतु जब आयु समाप्त हो जाती है तब उसे किसी भी उपाय से नहीं बचाया जा सकता है । रज्ज्वाः छेदः प० त० । यहाँ सन्धि होने पर 'छे च' सूत्र से तुक् का आगम होता है । (३) एवं लोकस्तुल्यधर्मो—यहाँ कंचुकी के कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य का स्वभाव वृद्धों की तरह होता है । जैसे वृद्ध बटते रहते हैं और नये उगते रहते हैं, उसी प्रकार प्राणी मरते-जीते रहते हैं । धतः यासयदत्ता का मरना स्वाभाविक ही था । आप उसे बचा नहीं सकते थे । उसके लिए धन शोक करना व्यर्थ है । (७) तुल्यधर्मः—तुल्यः धर्मः यस्य सः ब० म० । यद्यपि इसका तुल्य शब्द 'वनानाम्' से सापेक्ष है, फिर भी 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' इस कारिका के बल से समास हुआ । यहाँ 'धर्मादनिच् केवलात्' सूत्र में अनिच् होने पर 'तुल्यधर्मो' पाठ उचित था । किन्तु 'समासान्तविधिरनित्यः' से अनिच् का अभाव करके 'तुल्यधर्मः' पाठ भी असंगत नहीं कहा जा सकता ।
 (८) वनानाम्—यहाँ तुल्य के योग में 'तुल्यार्थतुल्योपमाभ्यां तृतीयाञ्जनरम्याम्' सूत्र से पठ्टी हुई । (९) काले काले—बीषा में डिरबित हुई है 'वातापि वरणे मज्जमी' से साजमी हुई है । दिद्यते रह्यते—ये दोनों कर्मकर्तृवाच्य क्रियाएँ हैं । इस श्लोक के पूर्वार्ध में दृष्टान्त असंगत और उत्तरार्ध में उपाय धर्मकार है । तत्त्वज्ञानं—'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्' धर्मान् उपायान्, उपायान् विरोधण तथा साधारण धर्मं गणके मिश्र होने हुए भी उपायान्, उपायान् में 'बिम्बप्रतिबिम्ब भाव' होने पर दृष्टान्त होता है । इसमें सातिनी छंद है ।
 तत्त्वज्ञानं—मात्री गो भेष्यातिनी वेदमोरः ॥१०॥

राजा—आर्य मा मैवम्,

राजा—आर्य ! ऐसा मत कहिये.

King—Friend, say not so.

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।

कथं सा न मया शक्या स्मृतुं देहान्तरेष्वपि ॥११॥

अन्वय—महामेनस्य दुहिता मे शिष्या प्रिया देवी च, सा देहान्तरेषु अपि मया स्मृतुं कथं न शक्या ? ॥११॥

संस्कृत टीका—महासेनस्य—प्रद्योतस्य, दुहिता—पुत्री, मे—मम, शिष्या—छात्रा, प्रिया—प्रियमना, देवी च—प्रतिपिक्ता महिषी च (धामीतृ), सा—वामवदता, देहान्तरेषु अपि—अन्येषु जन्मसु अपि, मया—उदयनेन, स्मृतुं—चिन्तयितुं, कथं—केन प्रकारेण, न शक्या—न योग्या ? (अर्य मावः—उज्जयिनीपतेः प्रद्योतस्य तनया वासवदत्ता मम अन्तरङ्गशिष्या प्राणवत्तया पट्टराज्ञी च आसीत् । अन्तर्जन्मसु जन्मान्तरेष्वपि विस्मृतुं न शक्नुयाम्, किमुन एतस्मिन् जन्मनि)।

अनुवाद—महामेन जी की पुत्री मेरी शिष्या और प्यारी पट्टराज्ञी थी । मला मे जन्मजन्मान्तर मे भी कैसे उसका स्मरण नहीं कर सकता ? ॥११॥

Mahasena's daughter was my pupil and a dear queen. How would she not be remembered by me even in different bodies (i. e. future births.)

टिप्पणी—(१) दुहिता—दोषि इति दुहिता/दुहृ+तृप् (२) शिष्य—शिष्येण अनुशासनं नीयने या मा शिष्या/शास्+कृप् 'एतिष्ठुशास्वदुःखः कर्त्तु' इति सूत्रेण । (३) देवी—दीप्ति या मा देवी, √दिप्+घञ्—टीप् । (४) कथं सा न—इमया तावत्वं यह है कि वामवदता महामहिम प्रद्योत जी की पुत्री है—यही एक कारण उसके सदा स्मरण के लिए पर्याप्त है । यही तो कई कारण विद्यमान हैं । इसलिये मे जन्मजन्मान्तर मे भी उसकी भूल सकता हूँ, इस जन्म की तो बात ही क्या ? (५) देहान्तरेषु—अन्ये देहाः देहान्तराणि मयूर-व्यामरादिष्वपि विदममानः, तेषु ॥११॥

छात्री—आह भट्टिजी—उपरदा वासवदत्ता । मम या महामेनस्य या आदिता गोवातप्रसामया, तारिनी एव गुप्तं पुत्रं एव

अभिप्पेदो जामादुअत्ति । एदण्णिमित्तं उज्जइणि आणीदो ।
 अणगिसक्खिअं वीणाववदेसेण दिण्णा । अत्तणो चवलदाए
 अणिव्वुत्तविवाहसङ्गलो एव्व गदो । अहअ अहोहि तव अ
 वासवदत्ताए अ पडिकिदि चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो
 णिव्वुत्तो । एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा । एव्वं पेक्खिअ
 णिव्वुदो होहि । [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता । मम वा
 महासेनस्य वा यादृशो गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथम-
 मेवाभिप्रेतो जामातेति । एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानोतः । अनग्नि-
 साक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता । आत्मनश्चपलतयाऽनिर्वृत्तविवाह-
 मङ्गल एव गतः । अथ चावाम्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं
 चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः । एषा चित्रफलका तव
 सकाशं प्रेषिता । एतां प्रेक्ष्य निर्वृत्तो भव ।]

संस्कृत टीका—भट्टिनी—स्वामिनी, आह—कथयति,—वासवदत्ता—मम
 पुत्री, उपरता—मृता । मम—अङ्गारवत्याः, महासेनस्य वा—महाराजप्रद्योतस्य
 वा, यादृशो—यथा प्रीतिमाजो, गोपालकपालकौ—एतन्नामकौ पुत्रौ, तादृश
 एव—तत्सदृश एव,—त्वं—भवान्, प्रथममेव—पूर्वमेव, अभिप्रेतः—अभिमतः,
 जामाता—मम दुहितुः पतिः इति । एतन्निमित्तम्—जामातुकरणार्थम्, (त्यम्)
 उज्जयिनीम्—अवन्तिपुरीम्, आनोतः—प्रापितः । अनग्निसाक्षिकम्—न विद्यते
 अग्निः वैवाहिकोऽग्निः साक्षी साक्षात् द्रष्टा यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा,
 वीणाव्यपदेशेन—वीणावादनशिक्षाव्याजेन, दत्ता—समर्पिता वासवदत्ता तुभ्यमिति
 शेषः । (किन्तु त्वम्) आत्मनः—स्वस्य, चपलतया—घञ्चलतया, अनिर्वृत्त-
 विवाहमङ्गल एव—अनिर्वृत्तं न निष्पादित विवाहमङ्गलं परिणयोत्सवः यस्य स
 तयामृत एव, गतः—उज्जयिनीतः पलायितः । अथ च—अनन्तरम्, आवाम्याम्
 —मया महाराजेन च, तव—भवतः, वासवदत्तायाश्च—स्वपुत्र्याः, प्रतिकृति
 —चित्रम्, चित्रफलकायाम्—चित्राधारमूले काष्ठफलके, आलिख्य—निर्माय,
 विवाहः—परिणयः, निर्वृत्तः—सम्पादितः । एषा—इयं, चित्रफलका—चित्रकाष्ठ-
 फलकं, तव, सकाशं—समीपे, प्रेषिता—प्रहिता । एताम्—चित्रफलकाम्, प्रेक्ष्य-
 दृष्ट्वा, निर्वृत्तो भव—प्राश्चितो भव । अयं भावः—दुर्देवोदयात् वासवदत्ता
 मृता । मम महाराजस्य च स्वपुत्रगोपालकपालकवत् त्वमपि वारसत्वं वर्तते ।
 अतएव—पूर्वमेव त्वम् आवाम्याम् मनसा जामाता कल्पितः । तामेव मनशामनी

पूरयितुं स्वम् उज्जयिन्यामुपस्थापितः । विविदग्नितादयेण विवाहमकृत्वैव
वीणावादनकलाशिक्षायाः व्याजेन तुभ्यम् अर्पिता स्वपुत्री वासवदत्ता । परन्तु
चेतमश्चाञ्चत्येन त्वं विवाहमंगलविधानमनपेक्ष्यैव वासवदत्तामपहृत्य कीशाम्बीं
प्रति पलायितः । तदनन्तरम् स्वामिलापं पूरयितुकामो भ्रावाम् युवयोः आलेख्य-
कस्त्रितयोः कृत्रिमं विवाहमंगलं सम्पादितवन्तो । तदिदं चित्रफलकं युष्मदाकार-
मंवादिचित्रे धारयन् तव ममीपे प्रेष्यते । अस्मिन् वासवदत्तामूर्तिं दर्शं दर्शं
कथञ्चित् आत्मानं धारय । १) ।

अनुवाद—महारानी ने कहा है कि वासवदत्ता मर गई है । मेरे श्रीर
महाराज के लिए जैसे गोपालक श्रीर पालक हैं वैसे ही तुम हो, जो पहले ही
दामाद मान लिए गये थे । इसी कारण तुम उज्जयिनी में लाये गये । अग्नि
को साक्षी बनाये बिना ही वीणा (मित्राने) के बहाने वह तुम्हें दे दी गई थी ।
अपनी चंचलता के कारण तुम विवाह के उत्सव को सम्पन्न किये बिना ही चले
गये थे । पश्चात् हमने तुम्हारा श्रीर वासवदत्ता का चित्र एक चित्रपट पर
चनवाकर विवाह कर दिया था । वह चित्रपट तुम्हारे पास भेजा है । इसे देखकर
घर्यं धारण करो ।

Nurse—The queen says Vasavadatta is dead. You were, to me
or to Mahasena as dear a son, in law from the first as are Gopalak
and Palak. You were, for this very purpose brought to Ujjayini.
Without a fire as witness, she was given over under the device
of lute. Owing to :
the nuptial celebrat
portraits painted o
This picture-tablet

टिप्पणी (१) अभिप्रेतः—इष्ट या स्वीकार कर लिया था । अभि-प्र१/इ
+वत् । महासेन तथा उसकी रानी अंगारवती के उदयन को अपने जामाता
बनाने के निश्चय को वशान्तिमान के कारण उदयन द्वारा ठुकरा दिया गया था ।
अतः उसे बन्दी बना लिया गया । प्रद्योत ने वासवदत्ता को वीणावादन की शिक्षा
प्राप्त करने के उद्देश्य में उदयन के सम्पर्क में रख दिया । इस प्रकार दोनों में प्रेम
उत्पन्न हो गया तथा अन्त में दोनों का विवाह हो गया । (२) अग्नितादयिकम्—
अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तत् अग्नितादयिकम् ब० स० कप् प्रत्यय, तत् यथा
स्यात् तथा क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया, न अग्नितादयिकम् अग्नितादयिकम्
नञ् तत्पुरुष । (३) साक्षी—साक्षात्+इति 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इति

सूत्रेण । (४) वीणाव्यपदेशेन—यहाँ वीणा का साक्षजिक अर्थ वीणावादन की शिक्षा समझना चाहिए । उसके व्यपदेश=छल से । (५) चित्रफलकायाम्—काष्ठ, हाथीदांत आदि की पटिया , जिस पर चित्र बनाया जाय बनाया गया हो । यह शब्द नपुंसकलिङ्ग है । परन्तु यहाँ स्त्रीलिङ्ग में इसका प्रयोग 'निरकुशाः कवयः' मानकर समाधेय है । (६) निर्वृत्तो भव—घोरज घरो । निर्वृत्+वृत्+क्त (त) कर्त्तरि । वियोग-काल में वियोगी अपनी प्रियतमा का चित्र खींच कर सान्त्वना प्राप्त करते हैं । उदाहरणार्थ—मेषदूत में यक्ष 'त्वामातिष्ठ्य प्रणय-कुपितां घातुरामः शिलायाम्' । इसी प्रकार दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र खींच कर आत्मसन्तोष पाता है ।

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या ।

राजा—अहो ! महारानी ने अत्यन्त प्रेमपूर्ण और अनुरूप ही कहा ।

King—Oh very loving and fitting words from her ladyship.

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलामशतावपि ।

अपराद्धेष्वपि स्नेहो तदस्मासु न विस्मृतः ॥१२॥

अन्वय—एतत् वाक्यम् राज्यलामशतात् अपि प्रियतरम् यत् अपराद्धेषु

अपि अस्मासु स्नेहः न विस्मृतः ॥१२॥

संस्कृत टीका—एतत्—भगवद्भूवा प्रहितं, वाक्यं—सन्देशवचनं, राज्यलाम-शतात् अपि—शतसंख्यकराज्यप्राप्तेरपि, प्रियतरम्—अधिकप्रियम्, यत्—यस्मात् कारणात्, अपराद्धेषु अपि—कृतापराधेषु अपि, अस्मासु—मयि, स्नेहः—वास्तव्यं न विस्मृतः—न विस्मृति प्रापितः । (अर्थ भावः—सहस्राधिकराज्य-प्राप्तिरपि न तथा मां प्रीणयितुं प्रभवेत् यथेदमिदानीमस्मायाः सन्देशवचनं प्रीणयति । यतो हि मया दुरात्मना तस्याः कन्या बलात् अपहृता, परन्तु ता कृतघोरापराधेषु मयि सानुक्रोशा एव विद्यते ।) ॥१२॥

अनुवादः—यह (सन्देश) बचन सैकड़ों राज्यों के लामसे भी बढ़कर प्रिय है; क्योंकि उन्होंने मुझ अपराधी के प्रति भी अपना स्नेह नहीं भुलाया है ॥१२॥

These words are more agreeable than the 'acquisition of a hundred kingdom, since even towards offenders like this affliction was not forgotten.

टिप्पणी—(१) अतिस्निग्धम्—अत्यन्त प्रेमपूर्ण । 'अभिहितम्' की विशेषता बतलाता है । अति+स्निह्+क्त (त) कर्त्तरि । (२) अनुरूपम्—अनुरूप ।

रूपस्य योग्यम् इति अव्ययीभाव समास । (३) राज्यलामशतात्—यहाँ शत शब्द बहुवचनबोधक है । इसलियेसैंकड़ों-हजारों राज्यों के लाम से—ऐसा अर्थ कर सकते हैं । वस्तुतः राज्यानां लामाः ५० व०, तेषांशतम् ५०त० । तस्मात्—इस प्रकार समास होने से शत शब्द का अन्वय राज्यलाम से है न कि राज्य मे । ऐसी स्थिति में सैंकड़ों राज्य-प्राप्तियों से-ऐसा अर्थ करना उचित प्रतीत होता है । (४) प्रियतरम्—इदम् अनयोः अतिशयेन प्रियम् इति विग्रहे प्रिय+तरप् । (५) अपराद्धेषु—अप०/राध्+क्त(त) (क्तंरि) । यह अनुष्टुप् छंद है ॥१३॥

पद्मावती—अप्यउत्त ! चित्रगदं गुरुग्रणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि ।
[आर्यपुत्र ! चित्रगतं गुरुजनं प्रेक्ष्याभिवादयितुमिच्छामि ।]

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्र-स्थित गुरुजन को देखकर मैं प्रणाम करना चाहती हूँ ।

टिप्पणी—अभिवादयितुमिच्छामि—प्रणाम करना चाहती हूँ । इस पक्ति में पद्मावती का प्रादशं चित्र द्रष्टव्य है । अपनी बड़ी मगिनी के समान वासवदत्ता के चित्र को प्रणाम करना चाहती है । उसके प्रति तनिक भी ईर्ष्या नहीं है ।

Padmavati—Seeing the elder people in pictures I wish to salute.

घात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । (चित्रफलकं दर्शयति ।)
[प्रेक्षतां प्रेक्षतां भर्तृदारिका ।]

घाई—देखिये, राजकुमारी जी देखिए । (चित्रपट दिखलाती है ।)

Nurse—(Shows the picture board) princess, have a look, see.

पद्मावती—[दृष्ट्वा आत्मगतम्]हं ! अदिसदिसा खु इअं अय्याए आवन्तिआए । [प्रकाशम्] अप्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ? [हम् ! अतिसदशो खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः । आर्यपुत्र ! सदशो खल्वियमार्यायाः ?]

पद्मावती—(देखकर मन) ऐं ! यह तो मार्या आवन्तिका से बहुत मिलनो-बुलती है । (प्रकट) आर्यपुत्र ! क्या यह मार्या के समान ही है ?

Padmavati—(Seeing, aside) why this is, like the lady of Avantika. (aloud) My lord, this portrait, is it like the queen,

राजा—न सदृशी । सैवेति मन्ये । भोः ! कष्टम् ।

राजा—समान ही नहीं, वही है—ऐसा मैं समझता हूँ । हाय ! कष्ट !

King—Not only similar I think it is herself. Oh alas.

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिदारुणा कथम् ।

इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ॥१३॥

अश्वय—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् ? इदम् मुखमाधुर्यं च अग्निना कथं दूषितम् ? ॥१३॥

संस्कृत टीका—अस्य—दृश्यमानस्य, स्निग्धस्य—स्नेहुरसपूर्णस्य मनोहर-
स्येति यावत्, वर्णस्य—रूपस्य, दारुणा—भीषणा, विपत्तिः—प्रापत्, कथं—
किमिति अभवत् इति शेषः । इदम्—एतादृशम्, मुखमाधुर्यं च—मुखस्य वदनस्य
माधुर्यं रमणीयत्वं च, अग्निना—वह्निना, कथं—केन प्रकारेण, दूषितं—विनाशितम् ?
(अयं भावः—अहह! ईदृशो नयनाकर्षको वर्णः कथं दारुणया विपत्त्या कवसितः ?
किञ्च इदं वदनसौन्दर्यम् अग्निना कथं विलोपितम्) ॥१३॥

अनुवाद—इस मनोहर रूप पर दारुण विपत्ति कैसे पड़ी ? और इस
मुखमाधुरी को अग्नि ने कैसे बिगाड़ दिया ? ॥१३॥

How could this delicate complexion suffer such cruel injury?
How could the flames destroy the sweetness of this countenance?

टिप्पणी—(१) आबन्तिकायाः—इसमे 'तुल्यार्थरतुलोपमाभ्यां तृतीया-
ज्यतरस्याम्' सूत्र से पढ़ी हुई । (२) स्निग्धस्य—सरस, विकृता, आकर्षक ।
√स्निह् + क्त (त । (३) वर्णस्य—रूप, आकृति । (४) विपत्तिः—वि-
पद् + क्तित् । (५) दारुणा—भयकर । 'दारुणं भीषणं भीष्मम्' इत्यमरः । यह
शब्द विशेषण बनाने पर अपने विशेष्य के समान लिंग में प्रयुक्त होता है । दारुण +
अच्—टाप् (घा) । यह अनुष्टुप् छन्द है ॥१३॥

पद्मावती—अयमुत्तमस्य पङ्क्तिर्विपेक्षितं जानामि इदं । अयमा
सदिसी न वेति । [आयंपुत्रस्य प्रतिवृत्तिं प्रेक्ष्य जानामीयमार्या
सदृशी नवेति ।]

पद्मावती—आयंपुत्र का चित्र देखकर मैं समझूंगी कि यह आर्या के समान
है या नहीं ।

Padmavati—By looking on your counterfeit my lord, I shall
judge better whether the queen's is like or not.

घात्री—पेखखु पेखखु भट्टिदारिआ । [प्रेक्षतां प्रेक्षतां भर्तृदारिका ।]

घात्री—देखिये, राजकुमारी जी ! देखिये ।

Nurse—princess, have look, see

पद्मावती—[दृष्ट्वा] अय्यउत्तस्स पडिक्किदीए सदिसदाए जाणामि
इअं अय्याए सदिसो त्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया
जानामीयमार्यायाः सदृशीति ।]

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्र के चित्र की समानता देखकर मैं समझती
हूँ कि यह आर्या के सदृश ही है ।

Padmavati—(After seeing) By the resemblance of the portra;
it of (your) lordship, I find that this is a likeness of her ladyship.

राजो—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नमिव त्वां पश्यामि ।
किमिदम् ?

राजा—देवी ! चित्र देखने के समय से मैं तुम्हें प्रसन्न और उद्विग्न-सी
देख रहा हूँ । यह क्या ?

King—Queen, from the time you saw the portrait I find you
to be dejected after being overjoyed.

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिक्किदीए सदिसो इस एव्व पडिवसदि ।
[आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस चित्र की जैसी (एक स्त्री) तो यही रहती है ।

Padmavati—There is one living in this very place who is
the living image of this porait.

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

राजा—क्या वासवदत्ता की जैसी ?

King—Vasavadatta's portrait ?

पद्मावती—आम । [आम् ।]

पद्मावती—हाँ ।

Padmavati—Yes my lord .

राजा—तेन हि शीघ्रमानोयताम् ।

राजा—तो शीघ्र लीजा लाओ ।

King—Then let herbe brought here with all speed.

पद्मावती—अप्युक्त ! मम कण्ठाभावे केनपि ब्रह्मणेन मम भङ्गि-
प्रतिष्ठायाः निक्षिप्तो । पोषितभर्तुः परपुरुषदंशनं परि-
हरति । ता अप्यं मय सह आश्रयं प्रेषितं जानातु अय्युक्तो ।
[आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति
न्यासो निक्षिप्तः । पोषितभर्तुः परपुरुषदंशनं परिहरति ।
तदार्या मया सहागतां प्रेक्ष्य जानात्वार्यपुत्रः ।]

संस्कृत टीका—मम—पद्मावत्याः, कन्याभावे अविवाहितावस्थायाम्,
केनापि—केनचित्, ब्राह्मणेन—विप्रेण, मम—मदीया, भगिनिका—स्वसा, इति
(उक्त्वा), न्यासः—निक्षेपः, निक्षिप्तः—स्थापितः, पोषितभर्तुः—पोषितः
प्रवासं गतः भर्ता पतिः यस्याः सा, परपुरुषदंशनं—स्वस्वामिभिन्नपुरुषावलोकनं,
परिहरति—वर्जयति । तत्—तस्मात् कारणात्, आर्याम्—मत्समीपे रक्षिताम्
ब्राह्मणभगिनीम्, मया सह—मया साकम्, आगताम्—समायाताम्, प्रेक्ष्य—
दृष्ट्वा, जानातु—निश्चयं करोतु, आर्यपुत्रः—भवान् ।

अनुवाद—पद्मावती—आर्यपुत्र ! जब मैं कुमारी थी तब किसी ब्राह्मण ने
'मेरी बहन है' ऐसा कहकर उसे (मेरे पास) धाती रख दिया । पति के परदेश
में होने के कारण वह दूसरे पुरुष को देखने से परहेज करती है । इसलिए मेरे
साथ आती हुई उस देवी को देखकर आर्यपुत्र समझ लें (अर्थात् मैं किसी बहाने
उसको अपने साथ लाती हूँ । आर्यपुत्र उसे देखकर निश्चय करें कि वह
वासवदत्ता ही है या और कोई ।)

Padmavati—Your Majesty, in my maidenhood a certain
Brahmin, describing her to be his younger sister, made her over
to me as a treasure (Nyasa). Her husband being abroad, she
avoids the sight of other men, but I will bring her that you
may see and know her for yourself.

टिप्पणी—(१) आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिम्—यहाँ भाव यह है कि यदि आप
वाले चित्र में चित्रकार ने आपकी छाया ठीक-ठीक उतारी होगी तो उसी चित्रकार
द्वारा चित्रित की हुई आर्यावासवदत्ता की छाया भी ठीक ही होगी । इसलिए
मैं आर्यपुत्र का चित्र देखना चाहती हूँ । (२) प्रतिकृति—चित्र, प्रतिमा ।
'प्रतिमाप्रतियातना प्रतिच्छाया प्रतिकृतिरर्चा पुति प्रतिनिधिः' इत्यमरः ।
(३) जानामि—यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से भविष्यत्काल के अर्थ
में लट् लकार हुआ । (४) चित्रदर्शनात्प्रभृति—यहाँ 'कारिकायाः प्रभृति' इस

माध्यप्रयोग के बल से प्रभृत्यर्थे योग मे पचमी हुई । (५) प्रहृष्टोद्विग्नान्—
प्रसन्न और घबड़ायी हुई । प्रहृष्टा+प्र+हृप्+क्त(त) (कत्तरि)+टाप् (आ)
उद्विग्नान्—उत्+विज्+क्त (त) कत्तरि+टाप् (आ) । यहाँ पदमावती की
प्रमदता इस बात से है कि वामवदता जीवित है और घबड़ाहट इस कारण हो रही
है कि एक ब्राह्मण द्वारा अपनी बहन बताकर थाती के रूप मे रखी हुई भावन्तिका
को वह कैसे प्राप्त कर सकती है । (६) प्रीयितभर्तृका—प्रीयितः भर्ता यस्याः
सा—वह स्त्री जिसका पति परदेश चला गया हो । 'नच्युतः कप्' सूत्र मेक
प्रत्यय । (७) तां ध्रुप्यं मए —यहाँ कोई 'ता ध्रुप्या पेक्खदु सदिंसी णवेत्ति
(तदार्या पश्यतु सदुशी नवेत्ति)'ऐसा पाठ मानते हैं । इसका अर्थ होगा—इसलिए
आर्या वसुधरा देखें कि वह वासवदत्ता की जैसी है या नहीं ।

राजा—यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति ।

परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥४॥

अन्वय—यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तम् अन्या भविष्यति । लोके परस्परगता
रूपतुल्यता दृश्यते ॥१४॥

संस्कृत टीका—यदि चेत्, (सा) विप्रस्य—ब्राह्मणस्य, भगिनी—स्वसा
(भवेत् तर्हि) व्यक्तम्,—स्पष्टम्, अन्या—इतरा, भविष्यति—स्यात् । लोके—
संसारे, परस्परगता—पारस्परिकी, रूपतुल्यता—स्वरूपसादृश्यं, दृश्यते—
अवलोक्यते । (अर्थ भावः—त्वत्समीपे विद्यमाना सा महिला यदि ब्राह्मणस्य
स्वमा वर्तते तर्हि सा वासवदत्ता नैव भवेत्; यतो हि वासवदत्ता राजकुलप्रभूता,
इयं च ब्राह्मणी । का तयोस्तुल्यता ? रूपसादृश्यं तु जगति बहु दृश्यते । एताव-
न्मात्रसादृशात् सा वासवदत्तैवेति निश्चयकरणं न समीचीनम् ।) ॥१४॥

अनुवाद—राजा—यदि (वह) ब्राह्मण की बहन है तो स्पष्ट (है कि कोई)
दूसरी होगी । क्योंकि संसार मे (बहुतों के) स्वरूप एक दूसरे से मिलते-जुलते
दिखाई पड़ते हैं ॥१४॥

King—A Brahmin's sister ? Then she needs must be some
other person. It is a chance resemblance, such as are often
met with in this world.

टिप्पणी—(१) व्यक्तम्—वि/धञ्ज्+क्त (त) । 'अत्र क्रियाविशेषण-
त्वात् द्वितीया । (२) परस्परगता—सर्वव्यक्तिरूप परस्परस्य 'कर्मव्यतिहारे
सर्वनाम्नो द्वे वाक्ये समासवच्च बहुलम्' इत्यनेन द्वित्वे 'असमासवद्भावे पूर्वपदस्य

मुपःसुर्वन्तव्यः' इत्यनेन पूर्वपदस्य विभक्तेः सु आदेशो सस्य रुत्वे विसर्गे च 'कस्कादिषु च' इत्यनेन विसर्गस्य सत्वे परस्परम् सिध्यति, परस्परम् गता इति परस्परगता द्वि० त० । (३) रूपतुल्यता—रूपयोः रूपाणाम् वा 'तुल्यता रूप-तुल्यता ष० त० यह प्रनुष्टुप् छंद है ॥१४॥

(प्रवेश्य) प्रतिहारो—जेदु भट्टा । एसो उज्जइणीओ बह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, त पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो । [जयतु भर्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतिहारमुपस्थितः ।]

(प्रवेश करके) प्रतिहारो—महाराज की जय हो । उज्जैन के रहने वाले एक ब्राह्मण दरवाजे पर खड़े हैं; जो कह रहे हैं कि स्वामिनी के हाथ में मैंने अपनी बहन को धाती रखा था । उसे लेने आया हूँ ।

(Entering) Door-keeper—Hail, Sire, A Brahmin of Ujjain, who left his sister in the keeping of the queen—so he declares—has come to take her hence, and waits before the gate.

राजा—पद्मावति ! किन्तु स ब्राह्मणः ?

राजा—पद्मावती ! क्या (यह) वही ब्राह्मण है ?

King—Padmavati, is he the same Brahmin ?

पद्मावती—होदद्वं । [भवितव्यम्]

पद्मावती—हो सकता है !

Padmavati—He may be.

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ।

राजा—गृहोचित शिष्टाचार के साथ उस ब्राह्मण को शीघ्र अन्दर ले आओ ।

King—Bring in that Brahmin with the formalities of the internal apartments.

प्रतिहारो—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता ।) [यद्भर्तानापयति ।]

प्रतिहारो—जो स्वामी की आज्ञा । (चली जाती है ।)

Door-keeper—As your majesty commands.

राजा—पद्मावति ? त्वमपि तामानय ।

राजा—पद्मावती ! तुम भी उसे ले आओ ।

King—Padmavati you too bring her.

पद्मावती—जं अग्र्यउत्तो आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् आर्यपुत्रः
आज्ञापयति ।

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा । (चली जाती है ।)

Padmavati—As your lordship commands (exit).

टिप्पणी—(१) उज्जयिनीयः—उज्जयिनी निवासोऽस्य इति विग्रहे 'सोऽस्य निवासः' इत्यधिकारे 'वा नामधेयस्य' इति 'बृद्धसंज्ञायां 'बृद्धाच्छः' इति सूत्रेण छप्रत्यये तस्य ईयादेशः । (२) प्रतिग्रहीतुम्—प्रति+ग्रह्+तुमुन् (तुम्) । (३) उपस्थितः—उप+स्था+वत (त) । (४) अग्न्यन्तरतमुदाचारेण—अग्न्यन्तरे—गृहाम्न्यन्तरे यः समुदाचारः—पाद्यादिप्रदानरूपोऽतिथिजनोचितः सत्कारः, तेन तत्पूर्वकेणेत्यर्थः ।

(ततःप्रविशति योगन्धरायणः प्रतीहारी च ।) योगन्धरायणः—भोः !
[आत्मगतम्]

(तदनन्तर योगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश ।) योगन्धरायण—
(मन में) आह ।

(Then enter Yaugandharayan and the door-keeper) Yaug-
(Aside.)

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेहितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पायिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥१५॥

अन्वय—मयानृपतेः हितार्थम् राजमहिषीम् प्रच्छाद्य इदम् हितम् इति अवेक्ष्य
कामं कृतम् । मय कर्मणि सिद्धे अपि नाम असौ पायिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं
परिशङ्कितम् ॥१५॥

संस्कृत टीका—मया—योगन्धरायणेन, नृपतेः—राजः, हितार्थम्—उप-
काराय, राजमहिषीम्—पट्टराज्ञी वासवदत्तामिति यावत्, प्रच्छाद्य—सङ्गोप्य,
इदम्—पद्मावत्या सह महाराजस्य परिणयनम्, हितम्—सामकरम्, इति—
इत्यम्, अवेक्ष्य—प्राप्तोन्व, कामं—स्वैर यथा स्वात् तथा, कृतं—विहितम् ।

मम—मत्सम्पादिते, कर्मणि—कार्ये, सिद्धे अपि—साफल्यं प्राप्ते अपि, नाम—
वाक्यासङ्कारार्थमिदमव्ययम्, असौ—अप्यं, पार्थिवः—राजा, किं वक्ष्यति—किं
कथयिष्यति, इति—एवं विचार्यं, मे—मम, हृदयं—चेतः, परिशङ्कितम्—
शङ्काकुलम् (विद्यते) । (अथ भावः—पद्मावत्या सह महाराजस्य विवाहे संवृत्ते
मगधेश्वरसाहाय्यलामेन स्वामी शत्रुं पराजित्य अपहृतं राज्यं पुनः स्वायत्तीकृतुं
प्रमवेत् इत्यस्माकं योजना राज्ञः प्रणयविशेषशालिन्या वासवदत्ताया विद्यमानाया
दुर्घटा इति विमृश्य 'वल्लो वासवदत्ता दग्धा' इति मिथ्याप्रवादं प्रचार्यं मया राज्ञः
प्राणेश्वरी वासवदत्ता भावन्तिकार्येण पद्मावत्या हस्ते न्यस्तीकृता । अथ साफल्यं
'प्राप्तायामस्माकं योजनायाम् मया सर्वमप्यनुष्ठितं स्वामिहितसम्पादनायैवेति
जानन्नप्यहं विमेमि यत् स्वामी मदीयं कार्यमिदम् उचितम् अनुचितं वा वेत्स्यति
तदयं च साध्यसाधु किं वा कथयिष्यति इति ।) ॥१५॥

अनुवाद—मैंने राजा के हित के लिए महारानी को छिपाकर इसी में
कल्याण है—ऐसा सोच कर मनमाना काम किया । परन्तु मेरे प्रयत्नों के सफल
हो जाने पर भी 'ये राजा क्या कहेंगे' यह सोचकर मेरा हृदय शंकित हो रहा
है ॥१५॥

Having concealed the queen for the welfare of the king, I
have willingly done this, thinking it to be his good, Even though
my action has really been accomplished, I feel doubtful as to
what the king would say.

टिप्पणी—(१) हितायम्—√धा+क्त (भावे) 'दधातेहिः' इति सूत्रेण धा
इत्यस्य हि आदेशः—हिताय इदम् इति हितायम् (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्य-
लिङ्गता चेति वक्तव्यम्) इति वातिकेन नित्यसमासः । (२) राजमहिषी—
महारानी को, राज्ञः महिषी ताम् (ध० त०) । (३) प्रच्छाद्य—य/छद्+
णिच्+क्त्वा—ल्यप् । (४) अवक्ष्य—विचार कर । अब/ईक्ष्+क्त्वा—ल्यप् ।
(५) कामम्—स्वेच्छा से । यत्र क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया । (६) कर्मणि—
अन 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सूत्रेण सप्तमी । (७) पार्थिवः—पृथिव्याः
ईश्वरः इत्यर्थे पृथिवी+भन् । यंह वसन्ततिलका छंद है । योगन्धरायण का इस
प्रकार घबड़ाना स्वामाविक ही था । राजा या तो उसकी स्वामिमक्ति से प्रमत्त
होता या धरुनि प्रकट करता ॥१५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा । उवसप्पडु अग्यो । [एव भर्ता ।

उपसर्पत्वार्यः ।

प्रतीहारी—ये स्वामी हैं। आप समीप जायें।

Door-keeper—Here is the king. Approach him.

योगन्धरायणः—[उपसृत्य] जयतु भवान् जयतु।

योगन्धरायण—(समीप जाकर) आपकी जय हो।

Yaug.—(Going near) Hail my lord.

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः। भो ब्राह्मण ! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ?

राजा—यह स्वर तो पहले का सुना हुआ-सा मालूम होता है। हे ब्राह्मण !

क्या आपकी बहन पद्मावती के हाथ धाती रखी हुई है ?

King—This seems a voice that have I heard before. Say Brahmin was your sister left in charge with the princess Padmavati.

योगन्धरायणः—अथ किम् ?

योगन्धरायण—घोर क्या ?

Yaug.—She was.

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका।

राजा—(प्रतीहारी से) तब शीघ्र से शीघ्र इनकी बहन ला दो।

King—(To the door-keeper) then bring his sister soon.

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता।) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

प्रतीहारी—जो स्वामी की आज्ञा। (चली जाती है।)

Door-keeper—As your lordship commands (goes.)

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च।) पद्मावती—
एदु एदु अय्या। पिअं दे णिवेदेमि। [एत्वेत्वार्या। प्रियं ते
निवेदयामि।

(तदनन्तर पद्मावती, आवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश।) पद्मावती—
आइय, आइये आर्या ! मैं आपको प्रिय बात सुनाती हूँ।

(Then enter Padmavati, Vasavadatta and door-keeper.)
Padmavati—Come, lady, come I have good news for you.

प्रावन्तिका—किं किं ? [किं किम् ?]

प्रावन्तिका—क्या ? क्या ?

Vasava.—What ? Tell me what ?

पद्मावती—भावा दे आग्रदो । [भ्राता ते आगतः ।]

पद्मावती—आपके भाई आये हैं ।

Padmavati—Your brother has arrived.

प्रावन्तिका—दिट्ठिआ इदाणि पि सुमरदि । [दिट्ठेवानोमपि स्मरति ।]

प्रावन्तिका—कस्य भाग्य ! अभी भी याद करते हैं ।

Vasava.—How happy that he still remembers me.

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । एसो ण्णासो । [जयत्वायंपुत्रः । एष न्यासः ।]

पद्मावती—(समीप जाकर) भायंपुत्र की जय हो । यह धरोहर है ।

Padmavati—(Going near) Hail, Sire here is the pledge entrusted to me.

राजा—निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्त्यासो निर्यातयितव्यः । इहात्र-
भवान् रेभ्यः अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः ।

राजा—पद्मावती ! धरोहर लौटा दो । साक्षी के सामने धरोहर लौटानी चाहिए । इनमें पूज्य रेभ्य और पूज्या वसुंधरा साक्षी होंगे ।

King—Padmavati, give it back. A deposit, should be returned in the presence of witnesses. Here the honoured Raibhya and the served Basundhara will become the tribunal.

पद्मावती—अय्य ! जीअदांदाणि अय्या । [भायं ! नीयतामिदानो-
मार्पा ।]

पद्मावती—भायं ! सब धार धारों को ले जायें ।

Padmavati—Sir, take your sister.

धाम्नी—[प्रावन्तिकां निर्वर्त्य] अम्मो ! भट्टिशरिष्ठा वागवदता !
[अम्मो ! भर्तृशरिष्ठा वागवदता !]

घाई—(आवन्तिका को ध्यान से देखकर) अरे ! यह तो राजकुमारी वासवदत्ता है ।

Nurse—(Closely looking at Avantika) Oh princess Vasavadatta.

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविशस्वमग्न्यन्तरं पद्मावत्या सह । !

राजा—क्या महासेन जी की पुत्री ? देवी ! तुम पद्मावती के साथ घन्दर जाओ ।

King—Why, she is king Mahasen's daughter, Queen go inside with Padamavati.

योगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रयेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेया ।

योगन्धरायण—न न, भीतर नहीं जाना चाहिए । यह सचमुच मेरी बहन है ।

Yaog.—No, no, do not go in. Really she is my sister.

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेया ।

राजा—आप क्या कहते हैं ? यह निश्चित ही महासेन जी की पुत्री है ।

King—What do you say sir ? She is truly Mahasen's daughter.

टिप्पणी (१) श्रुतपूर्वः—पूर्वं श्रुतः इति श्रुतपूर्वः 'पूर्वकालकसर्वेष्टरत्पुत्राण-
नवकेवलाः समानाधिकरणेन' इति सूत्रेण समासे विशेषस्य पूर्वनिपातः ।

(२) न्यास इति निक्षिप्ता ?—न्यासरूपेण स्थापिता किम् ? (३) स्वयंतामस्य भगिनिका—प्रतिशीघ्रमानीयतामस्य स्वसा । त्वयंताम्—स्वर्+णिच् (कर्मणि यक्+लोट्ताम्) । (४) प्रियं ते निवेदयामि—सम्प्रदाने चतुर्थी । निपूर्वक प्रेरणायकविद् घातु के प्रकृत दशा के कर्त्ता को कर्मरूप में प्रयुक्त न करके सम्प्रदान रूप में प्रयुक्त करते हैं । (५) निर्यातय—न्यासं प्रत्यपय । 'निर्यातय वैरशुद्धी दाने न्यासापेक्षेऽपि च' इत्यमरः । (६) साक्षिभ्यः—साक्षिपूर्वक । यह क्रिया-विशेषण है । साक्षी विद्यते यत्र तत् यथा स्यात् तथा, साक्षिन्+भतुप् । (७) निर्यात-यितव्यः—प्रत्यपणीयः । यहाँ भाव यह है कि परोक्ष साक्षी की उपस्थिति में ही सोटानी चाहिए । क्योंकि विधान ऐसा ही है । लोक में किसी बात को लेकर विवाद खड़ा होने पर साक्षी ही निर्णय में सहायता प्रदान करके सगद्दे को निपटाता है । यहाँ तो घाती भी विविध प्रकार की है । इसमें साक्षी की ओर प्रावश्यकता

हैं । (८) अधिकरणम्—निर्णयस्थान, न्यायालय । यहाँ इसका साक्षणिक अर्थ न्यायाधीश विवक्षित है । (९) खतु—निश्चय ।

योगन्धरायणः—भो राजन् !

योगन्धरायण—हे राजन् !

Young—Oh king.

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानधाञ्छुचिः ।

तन्नाहंसि बलाद्धतुं राजधर्मस्य देशिकः ॥१६॥

अन्वय—भारताना कुले जातः विनीतः, ज्ञानवान्, शुचिः, राजधर्मस्य देशिकः । तत् बलात् हतुं न अहंसि ॥१६॥

सस्कृत टीका—(स्वम्) भारतानां भरतवंशीयाना राज्ञां, कुले—वशे, जातः—उत्पन्नः, विनीतः—नम्रः, ज्ञानवान्—प्रज्ञावान् सदसद्विवेकशील इति यावत्, शुचिः—शुद्धः पवित्राचरण इति यावत्, राजधर्मस्य—राजोचित-कर्तव्यस्य, देशिकः—उपदेष्टा (भसि) । तत्—तस्मात् कारणात्, बलात्—हठात्, हतुं—ग्रहीतुम्, न अहंसि—न योग्योऽसि । (अयं भावः—हे राजन् ! भवान् जगद्विदितपाण्डववंशे समुत्पन्नोऽस्ति । भवतः नम्रता, विवेकशीलता, पवित्रता एवं राजधर्मस्य उपदेष्टा सर्वः प्रशस्यते । अतः नेदमुचितं यत् भवान् मम दरिद्रस्य ब्राह्मणस्य भगिनीं हठात् स्वान्तःपुरे प्रवेशयेत् ।) ॥१६॥

अनुवाद—आप भरतवंशी राजाओं के कुल में उत्पन्न हुए हैं, विनम्र, जानी, पवित्राचरण वाले और राजधर्म के प्रवर्तक हैं । इसलिए बलपूर्वक (मेरी बहन) छीनने योग्य नहीं है ॥१६॥

Prince, you are sprung from the race of Bharat, well nurtured. Well instructed, well disposed and all kingly virtues are instructive to you. You cannot, will not take her hence by force.

टिप्पणी—(१) भारतानाम्—भरत के कुल में उत्पन्न अभिमन्यु से पचीसवीं पीढ़ी में उदयन का जन्म हुआ था । भरतस्य गोत्रापत्यानि पुमासः इति विग्रहे भरत+अञ् 'उत्सादिभ्योऽञ्' इति सूत्रेण । (२) देशिकः—उपदेशक या प्रवर्तक आचार्य । देशः=उपदेशः अस्ति अस्य इति विग्रहे देश+ठन्—इक । यहाँ योगन्धरायण के कहने का तात्पर्य यह है कि हे राजन् ! आप उन राजाओं के कुल में उत्पन्न हुए हैं जो न्याय के लिए प्रसिद्ध हैं । यही नहीं, आप जानी और पवित्र

हैं। उस पर भी आप राजघरमं के चलाने वाले हैं। ऐसी स्थिति में यदि आप दूसरे की स्त्री को बलपूर्वक अपने घर में डाल लेंगे तो अनर्थ हो जाएगा। अतः आप मेरी बहन को लौटा दें, अपने घर में न डालें। इस श्लोक में सभी विशेषणों के सामिप्राय होने के कारण परिकर धलंकार है। तत्सक्षणं काव्यप्रकाशे—विशेषणयन्ताकूर्तकवितः परिकरस्तु सः। और इसमें अनुष्टुप् छन्द है ॥१६॥

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद्रूपसादृश्यम्। संक्षिप्यतां जवनिका।

राजा—प्रच्छा, आकृतियों की समानता देखें। जरा घूँघट हटाइये।

King—Then here let us examine the resemblance and let the lady's veil be removed first.

योगन्धरायणः—जयतु स्वामी।

योगन्धरायण—महाराज की जय हो।

Yaug—All hail my king.

वासवदत्ता—जेदु अय्युत्तो। [जयत्वार्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो।

Vasava.—All hail my lord and husband.

टिप्पणी (१) संक्षिप्यतां जवनिका—जवनिका कहते हैं पर्दे को। 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा' इत्यमरः। किन्तु यहाँ इसका अर्थ घूँघट मालूम होता है। क्योंकि पद्मावती राजा को दिखाने के लिए वासवदत्ता को ले आई थी। यदि वासवदत्ता पर्दे के पीछे खड़ी रहती तो पद्मावती का अभिप्राय मिट नहीं होता और न वसुन्धरा ही को देख पाती। फिर पद्मावती ने योगन्धरायण के सामने जो कहा कि यह है आपकी बहन, इस वाक्य की संगति भी पर्दे वाले अर्थ से नहीं बैठती है। घात्री के पहचानने पर वासवदत्ता के प्रति राजा का आदेश कि देवी! तुम पद्मावती के माथे भीतर चली जाओ, पर्दे वाले अर्थ में युक्तिमग्न नहीं कहा जा सकता। इन अनुपपत्तियों के कारण हम यहाँ जवनिका का अर्थ पर्दा नहीं कर सकते। घूँघट से भी तो पर्दा होता ही। इसलिए इसका मुख्यार्थ से कोई विरोध भी नहीं होगा। (२) जयतु स्वामी; जयतु आर्यपुत्रः—यहाँ योगन्धरायण और वासवदत्ता अपने छद्म वेश को हटा कर राजा का अभिवादन करने लगते हैं। वसुन्धरा नाटक यहीं समाप्त हो जाता है।

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः, इयं महासेनपुत्री ।

राजा—अरे ! यह यौगन्धरायण और यह महासेन जी की पुत्री !

King—Oh it is Yaugandharayan and this Vasavadatta.

किन्तु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।

अनयाप्येवमेवाहं दृष्ट्या वञ्चितस्तदा ॥१७॥

अन्वय—इदम् किन्तु सत्यम् स्वप्नः (वा) मया सा भूयो दृश्यते । तदा दृष्ट्या अपि अनया एवम् एव अहम् वञ्चितः ॥१७॥

संस्कृत टीका—इदम्—वासवदत्तायाः दर्शनं, किन्तु सत्यम्—पर्यायं किम् (अथवा) स्वप्नः—स्वप्नरूपमयपर्यायं, (यत्) मया—उदयनेन, सा—वासवदत्ता, भूयो—पुनः, दृश्यते—अवलोक्यते, तदा—तदानीं समुद्रगूहगयनसमये इति यावत्, दृष्ट्या अपि—प्रवलोकितया अपि, अनया—वासवदत्तया, एवमेव—इत्यमेव, अहम्—उदयनः, वञ्चितः—प्रतारितः (अथ भावः—अधुना वासवदत्ताया दर्शनं सत्यं वा स्वप्नमहं पश्यामि ? पुरा समुद्रगूहे शयानेन मया वासवदत्ता दृष्टा आसीत्, परन्तु दृष्टिमोचरतां प्रयाताऽपि सा तत्क्षणमेव अन्तर्हिताऽभूत् । इत्थं तया वञ्चितोऽहं न निर्णेतुं पारयामि यदियं वासवदत्ता पुरो मे वर्तते वा दृग्भ्रमो मे सञ्जातः ।) ॥१७॥

अनुवाद—क्या यह सत्य है या स्वप्न है, जो मैं वासवदत्ता को फिर देख रहा हूँ ? उस समय (समुद्र-गूह में सोते समय) इसी प्रकार देखी गई उसके द्वारा मैं ठगा गया था ॥१७॥

It is a dream or a reality that she is seen by me again at that time I was thus certainly deceived by her when I saw her.

टिप्पणी—(१) किन्तु...—पहले समुद्रगूह में उदयन ने स्वप्न के अन्त में वासवदत्ता को साक्षात् देखा था । परन्तु वह भाग गई । अतः उसके अस्तित्व का निर्णय नहीं हो सका । उदयन ने उसे घेरने मन का विभ्रम ही समझा । अब जब वासवदत्ता सामने आती है तब वह सोचता है कि यह कहीं पहले के समान ही स्वप्न तो नहीं है जो क्षण भर बाद भवास्त्विकता में बदल जाय और वासवदत्ता भ्रष्ट हो जाय । यह अनुश्रुत् ध्रुव है ॥१७॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः सत्त्वहम् । तत् क्षान्तमर्हति स्वामी । [इति पादयोः पतति ॥

संस्कृत टीका—स्वामिन् ! --प्रभो !, देव्यपनयेन—देव्याः वासवदत्तायाः अपनयेन स्वरूपप्रच्छादपुरस्तरमन्यत्र नयनेन, ग्रहम्—योगन्धरायणः, खलु—निश्चयेन, कृतापराधः—कृतः विहितः अपराधः दोषः येन स तथाविधः, (अस्मि) । तत्—मम दुर्विनयचेष्टितम्, स्वामी—महाराजः, क्षन्तुमर्हति—मर्पयितुं योग्योऽस्ति ।

अनुवाद—योगन्धरायण—महाराज ! महारानी को हटाकर मैंने अपराध किया है इसे श्रीमान् क्षमा करें । (यह कहकर पैरों पर गिर जाता है ।)

Yaug.—My Lord I am to be blamed for concealing the queen. I request you to forgive me (Falls at the king's feet).

राजा—(उत्थाप्य) योगन्धरायणो भवान् ननु ।

राजा—(उठाकर) क्या सचमुच आप योगन्धरायण हैं ?

King—(Raising) Are you really Yaugandharayan ?

मिथ्योन्मादेश्च युद्धेश्च शास्त्रदृष्टेश्च मन्त्रितैः ।

भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥१८॥

अन्वय—मिथ्योन्मादेः च युद्धेः च शास्त्रदृष्टेः मन्त्रितैः च भवद्यत्नैः मज्जमाना वयम् खलु समुद्धृताः ॥१८॥

संस्कृत टीका—मिथ्योन्मादेः—मिथ्या, असत्याः उन्मादाः चित्तविभ्रमाः तैः, युद्धैः—मङ्गग्रामे, शास्त्रदृष्टेः—शास्त्रानुमोदितैः, मन्त्रितैः—गूढविचारेश्च, भवद्यत्नैः—भवतः योगन्धरायणस्य यत्नैः प्रयत्नैः, मज्जमानाः—मज्जनेशीलाः विप्लवागरे इति शेषः, वयम्, खलु—निःसंशयम्, समुद्धृताः—समुत्तारिताः अयं भावः—यदाऽहं महासेनेन निगृह्य स्वान्तपुरे स्थापितः तदा भवानेव उज्जयिन्याम् आत्मानमुन्मत्तमिव प्रदर्शयन् पश्चात् प्रद्योतसैनिकैः सह युद्धमपि कुर्वन् मा बन्धनान्मोचितवान् । समयै-समये स्वमन्त्रणामिः प्रयत्नैश्च विपत्तिन्वी मज्जमानान् अस्मान् समुत्तारितवान् । इदानीमपि सज्जाता स्वराज्यप्राप्तिरपि भवद्भ्राजनीतेरेव फलम् । इत्थं परमोपकारिणो भवतः उपकारान् कथमहं विस्मर्तुं शक्नुयाम् ? अतएव न मनागपि भवतोऽपराधः । भवान् सर्वथा प्रशंसनीय एव ।) ॥१८॥

अनुवाद—आपने बनावटी पागल की-सी चेष्टायों, युद्धों, शास्त्रसम्मत परामर्शों और प्रयत्नों द्वारा निःसन्देह (विपत्ति-सागर में) डूबते हुए हमें उबार है ॥१८॥

By feigned insanity, battles, counsels and your efforts we have indeed been well saved from sinking into the ocean of misfortunes.

टिप्पणी—(१) मिथ्योन्मादः—झूठा पागलपन । ‘उन्मादश्चित्तविभ्रमः’ इत्यमरः । उद्+मब्+घञ्=उन्माद । मिथ्या उन्मादाः मिथ्योन्मादाः सुप्सुपा समास । करणे तृतीया । जब प्रद्योत ने उदयन को बन्दी बना लिया था तब योगन्धरायण पागल का रूप धारण करके उज्जयिनी में रहने लगा था । वहाँ रहते-रहते वह राजा को निकालने का प्रबन्ध कर चुकने के बाद उसे लेकर वहाँ से भाग गया था । जब प्रद्योत की सेना ने उसका पीछा किया तो उसने डट कर मुकाबला किया था । (२) युद्धः—युध्+क्त (त) । करण में तृतीया हुई है । (३) शास्त्रदृष्टः—राजनीति के सिद्धान्तों के अनुकूल । शास्त्रे दृष्टानि शास्त्र-दृष्टानि सप्तमी तत्पुरुष, तैः । (४) मन्त्रितः—मन्त्रणाओं से । √मन्त्र्+णिच्+क्त (त) (मावे) । (५) मञ्जमानाः—डूबते हुए । √मस्ज्+लट्+चानश् ‘ताच्छीत्यवयोवचनशक्तिपु चानश्’ इति सूत्रेण । यहाँ शानच् प्रत्यय नहीं हो सकता है, क्योंकि यह परस्मैपदी धातु है । (६) समुद्धृताः—उबारे गये । सम्+उद्+घृ+क्त (त) । यहाँ राजा के कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे ऊपर कई बार विपत्तियाँ पड़ी, हम बन्धन में पड़े, राज्य खोया, स्त्री से वियुक्त हुए, पर आपने अपने प्रयत्नों द्वारा हमें नष्ट होने से बचाया और पुनः समस्त सुखों का भागी बना दिया । यह अनुष्टुप् छंद है ॥१८॥

योगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

योगन्धरायण—हम तो स्वामी के भाग्य के पीछे चलने वाले हैं ।

Yang.—We are the followers of our lord's fortunes.

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजनसमुदाचारेण अजाणन्तोए अदियकन्दो समुदाचारो । ता सीसेण पसादेमि । [अहो ! आर्याखल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽ-जानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्येण प्रसादयामि ।]

संस्कृत टीका—अहो !—आश्चर्यप्रद्योतकमभ्ययमिदम्, इयम्—पुरोवर्तिनी आर्या—मम पूज्या वासवदत्ता, खलु—निश्चयेन (वर्तते) । आर्ये !—पूज्ये ! सखीजनसमुदाचारेण—वयस्यासमूचितेन व्यवहारेण, अजानन्त्या—अनवगच्छन्त्या, (मया) समुदाचारः—शिष्टाचारः, अतिक्रान्तः—उत्सङ्कितः । तत्—तस्मात् कारणात्, शीर्येण—शिरसा (प्रणामेन), प्रसादयामि—अनुनयामि ।

भनुवाद—पद्मावती—महा ! ये तो भार्या (पूज्य दीदी) हैं । दीदी ! भनजान में मैंने सखी का-सा व्यवहार करके शिष्टाचार का उल्लंघन किया है । अतः शिर झुकाकर क्षमा मांगती हूँ ।

Padamavati—Oh indeed she is a noble, lady madam, intreaching you as a companion unknowingly I have transgressed proper conduct, I therefore propitiate you by head.

वासवदत्ता—[पद्मावतीमुत्थाप्य] उठोहि उठोहि अविह्वे । उठोहि । अतिसखं नाम शरीरं अवरद्ध । [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाऽविघ्वे । उत्तिष्ठ । अयिस्त्वं नाम शरीरमपराध्यति ।]

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) उठो उठो सुहागिन ! उठो । याचक का घन बना हुआ (मेरा) शरीर ही अपराधी है ।

Vasava—(Raising Padamavati) Stand up blessed one. A suppliant really does wrong to his own body.

पद्मावती—अनुगृहीहि । [अनुगृहीतास्मि ।]

पद्मावती—मैं अनुगृहीत हूँ ।

Padamavati—I am favoured.

राजा—वयस्य यौगन्धरायण ! देध्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

राजा—मित्र ! महारानी को हटाने से तुम्हारा क्या तात्पर्य था ?

King—What did you mean by removing the queen.

यौगन्धरायण—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति ।

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी पर ही हमारा अधिकार रह गया था ।

Yang—Only Kaushambi was left in or possession.

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

राजा—अन्धा, पद्मावती के हाथ धरोहर रखने का क्या कारण था ?

King—What did you mean by entrusting her to Padamavati.

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरावेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।

यौगन्धरायण—पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियो ने भविष्यवाणी की थी कि पद्मावती महाराज की रानी होगी ।

Yaug.—Astrologers, like Puspakbhadrā had prophesied that Padamavati will be your queen.

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ?

राजा—क्या यह रुमण्वान् को भी ज्ञात था ?

King—Did Rumanvan also know this ?

योगन्धरायणः—स्वामिन् सर्वैरेव ज्ञातम् ।

योगन्धरायण—महाराज ! सभी को ज्ञात था ।

Yaug.—Oh sire, it was known to all.

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

राजा—घरे ! रुमण्वान् बड़ा दुष्ट है ।

King—What a rogue Rumanvan was.

योगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनायमद्यैव प्रतिनिवर्त-
तामत्रभवान् रंभ्योऽत्रभवतो च ।

योगन्धरायण—महाराज ! महारानी की कुशल निवेदन करने के लिए
भाज ही पूज्य रंभ्य और पूजनीया वसुन्वरा लौट जायें ।

Yaug.—Oh king let the revered Raibhya and the lady Vasun-
dhara return just today to tell the welfare of the queen.

राजा—न, न । सर्व एव वयं मासयामो देव्या पद्यायत्या सह ।

राजा—नही-नहीं । हम सभी लोग देवी पद्मावती सहित जायेंगे ।

King—No, no we all shall go with her ladyship Padamavati.

योगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

योगन्धरायण—जो महाराज की आज्ञा ।

Yaug.—As your honour says.

टिप्पणी—(१) स्वामिभाषयानाम्—स्वामिनः=श्रीमतः भाषयानाम्
परमाभ्युदयमन्नादकानां सुमादृष्टानाम् । अर्थान् आपका भन्मुदय धारके पुष्प
कर्मों का ही कल है । हम तो केवल निमित्तमात्र हैं । यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति'
गूत्र से कर्म में पट्टी हुई । (२) अनुगन्तारः—अनु+गम्+तृप् । (३) सखी-
जनसमुदाचारेण—भग्वी की तरह व्यवहार करने के कारण । गनी एव जनः

सखीजनः मयूरध्वंसकादित्वात् समास, सखीजनोचितः समुदाचारः सखीजन-
समुदाचारः मध्यमपदलोपी समास तेन । यहाँ हेतु में तृतीया हुई । (४) शीर्षेण-
अर्थात् आपके चरणों पर शिर रखकर । 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इत्यमरः । यहाँ
भावार्थ यह है कि परिचय न होने के कारण मैंने आज तक आपसे सखी की तरह
व्यवहार किया है । पूज्य व्यक्ति के साथ जैसा बर्ताव करना चाहिए वैसे नहीं
किया । इसलिए चरणों पर गिर कर क्षमा चाहतो हूँ । (५) अविधवे !—
सौभाग्यवती ! विगतः धवः=पतिः यस्याः सा विधवा, न विधवा अविधवा, तस्याः
सम्बोधने अविधवे इति । यहाँ अविधवा शब्द का प्रयोग सौभाग्याभाव का निषेध
करके अलखण्डित सौभाग्य रूप अर्थ को देता है । इसलिए यह सुन्दर है । महाकवि
कालिदास ने भी इसका प्रयोग किया है—'मर्तुमित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बु-
वाहम्'—मेघदूत । (६) अर्पिस्त्वं नाम शरीरमपराध्यति—यहाँ भाव यह है कि
याचक का रूप धारण करके योगन्धरायण ने मुझको तुम्हारे पास घरोहर रख
दिया और उसके अनुसार मैंने भी अपना नाम-धाम छिपा लिया । इस प्रकार
वस्तुतः शिष्टाचार का अतिक्रमण तो मैंने किया, तुमने नहीं । अतएव मैं ही
अपराधिनी हूँ, तुम्हारा कोई अपराध नहीं । (७) अपराध्यति—यहाँ मृतायं
मे लट् लकार हुआ और दिवादिगणीय धातु होने के कारण मध्य में श्यन् प्रत्यय
भी । (८) देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः—देवी को अलग करने में तुम्हारा क्या
उद्देश्य था ? देव्याः=वासवदत्तायाः अपनयः=देशान्तरनयनम्, तस्मिन्, ते=त्वया
का बुद्धिः=कीदृशी मतिः, कृता=विहिता । अपनयः—अप/नी+अच् ।
(९) कौशाम्बीमात्रम्—भाव यह है कि उस समय हम केवल कौशाम्बी नगर पर
ही शासन कर रहे थे और सम्पूर्ण वत्सराज्य शत्रु के हाथ में चला गया था । उसे
पुनः प्राप्त करने के लिए किसी शक्तिशाली राजा की सहायता आवश्यक थी ।
इसलिए हमने सोचा कि वासवदत्ता का अपहरण करने के कारण महासेनजी तो
सहायता दे नहीं सकते । इसलिए मगधेश्वर से सम्बन्ध स्थापित करके हमें सहायता
लेनी चाहिए । पुरुषकमद्र आदि ज्योतिषियों ने कहा भी था कि महाराज का
दूसरा विवाह मगधराजकुमारी से होगा । परन्तु वासवदत्ता जी के रहते आप
दूसरा विवाह नहीं कर सकते थे । इसलिए हमने आपसे मैंने तय किया कि अग्निकाण्ड
के माध्यम से देवी के जल जाने का मिथ्या प्रचार करके उन्हें मगधराजकुमारी के
पास ही गुप्तरूप से पाती रख दें, ताकि महारानी सुरक्षित रहेंगी और इधर
महाराज भी उनकी मृत्यु को निश्चित समझकर पद्मावती से विवाह कर लेंगे ।

फिर तो मगधराज की सहायता से हमें वत्सराज्य पर अधिकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी । (१०) परिपालयामि—यहाँ भूतार्थ में लट् लकार हुआ उ० पु० ए० व० । (११) पुष्पकभद्रादिभिः—तात्पर्य यह है कि पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों ने बताया था कि पद्मावती जी आपकी अर्धाङ्गिनी होंगी । इन ज्योतिषियों ने पहले आपके राज्य नष्ट होने की भी बात कही थी । वह सत्य निकली । तो विवाह-सम्बन्धी बात भी सच्ची होगी—यह निश्चय करके हमने महारानी को पद्मावती के पास ही रखना उचित समझा । क्योंकि समय आने पर पद्मावती जी महारानी के चरित्र की शुद्धि के बारे में जो साक्ष्य देगी, उस पर आपको विश्वास होगा । और दूसरा कारण यह भी सोचा कि राजकुमारी पद्मावती के साथ रहने से महारानी को जीवन के अभावजन्य दुःखों का अनुभव न करना पड़ेगा और पद्मावती के चरित्र की साधुता का भी परिचय मिल जाएगा । पुष्पकभद्रः आदिः येषां ते पुष्पकभद्रादयः बहुव्रीहि समास, तैः । (१२) आदेशिकैः—अविध्यदर्थवादिभिः सिद्धैः । आदेशः शीलमेयाम् इति आदेशिकाः तैः, आदेश+ठक् 'शीलम्' इत्यनेन, तस्य इकादेशः । शठः । (१३) खलु रमण्वान्—यहाँ राजा ने रमण्वान् को स्नेहपूर्वक उपासम्म देते हुए शठः कहा है । वह आश्चर्य करता है कि जो लोग इस विषय को नहीं जानते थे, उनकी तो कोई बात नहीं है किन्तु रमण्वान् ने इस बात को जानते हुए भी तथा मेरे दुःख से दुःखी होते हुए भी वासव-दत्ता का कुशल-समाचार मुझे नहीं बताया यह उसकी अद्भुत वञ्चकता है । (१४) कुञ्जलनिवेदनायम्—कुशलस्य निवेदनम् य० त०, तस्मै इदम् इति नित्य-समासः । (१५) प्रतिनिवर्तताम्—प्रस्थान कर दें । यहाँ प्रत्येक के अभिप्राय से एकवचन हुआ, अन्यथा रम्य और अत्रभवती दो कर्ता होने के कारण द्विवचन होना चाहिए था । न न—ये दो न अकेले जाने का सर्वथा निषेध करते हैं । (१६) सर्व एवः—भाव यह है कि भवधू पद्मावती सहित हम सभी लोग चलेंगे । क्योंकि इन दोनों को देखकर और यह समझ कर कि अब तक वासवदत्ता पद्मावती के पास ही रही है तथा इन दोनों में परस्पर प्रगाढ़ स्नेह है, माता-पिता बहुत प्रसन्न होंगे ।

[भरतवाक्यम्]

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।

महीमेकातपत्राङ्गा राजसिंहः प्रशस्तु नः ॥१६॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे ।] इति पष्ठोऽङ्कः । इति स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

अन्वय—नः राजसिंहः सागरपर्यन्ताम् हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्काम् इमाम् महीम् प्रशास्तु ॥१६॥

संस्कृत टीका—नः—अस्माकं, राजसिंहः—सिंहसदृशपराक्रमी राजा उदयन इति यावत्, सागरपर्यन्ताम्—सागराः समुद्राः पर्यन्ताः अन्तिमाः सीमाः यस्याः सा ताम्, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्—हिमवान् हिमालयः विन्ध्यः विन्ध्याचलश्च इति हिमवद्विन्ध्यो तौ एव कुण्डले कर्णभूषणे यस्याः सा ताम्, एकातपत्राङ्काम्—एकम् अद्वितीयम् आतपत्रम् छत्रम् अंकः (राज्यलक्ष्मीत्वसूचकं) चिह्नं यस्याः सा ताम्, इमाम्—दृश्यमानाम्, महीम्—पृथ्वीम्, प्रशास्तु—परिपालयतु । (अयं भावः अस्माकं राजाधिराजः श्रीमानुदयनः इमां कृत्स्ना मही परिपालयतात् या किल समुद्रपर्यन्तविस्तृता विद्यते, विन्ध्यहिमालयो यस्याः कुण्डलाविव शोभेते, यस्यां चैकाधिपत्यसूचकम् एकमेव तत्सर्वेच्छत्रं विराजते ।) ॥१६॥

अनुवाद—(नट या नाट्याचार्य भरत का वचन) हमारे राजसिंह समुद्र तक विस्तृत, हिमालय और विन्ध्याचल रूपी कुंडली से युक्त तथा एक छत्र से विह्वित इस पृथिवी पर शासन करें ॥१६॥ (सबका प्रस्थान) छठा अंक समाप्त । स्वप्न-वासवदत्त नाटक समाप्त ।

(Benediction) May our Rajsingha rule over this earth, girt by the oceans, possessing earring of Himavat and Vindhya and marked by one (royal) umbrella (Excunt all) Here ends the sixth Act.

टिप्पणी—(१) भारतवाक्यम्—नाटक के अन्त में आशीर्वाद रूप में गाया जाने वाला पद्य । इसको प्रशस्ति कहते हैं । प्रशस्ति का लक्षण है—‘नृपदेशादिशान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते’ यह निर्वहणसन्धि का अंग कहलाता है । यहाँ जब पद्मावती से उदयन का विवाह हो गया, उसके भाई की सहायता से उदयन ने वत्सराज को पुनः प्राप्त कर लिया, प्रधान नायिका वासवदत्ता उसे मिल गई और इस प्रकार सम्पूर्ण नाटकीय सविधान निष्पन्न हो गया तब अन्त में कवि ने योगन्दरायण के मुख से ‘इमां सागरपर्यन्ताम्’ इत्यादि भरतवाक्य कहलाया है । (२) नः—यह अस्मद् शब्द के पष्ठी-बहुवचन में ‘बहुवचनस्य वस्नसौ’ सूत्र से किये गये नत् प्रत्यय का रूप है । (३) राजसिंहः—सिंह के समान पराक्रमी या राजाओं में सबसे श्रेष्ठ । ‘सिंहशार्ङ्गलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः’ इत्यमरः ।

राजा सिंह इव इति राजसिंहः उपमित समास (४) हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्—
 हिमवांश्च विन्ध्यश्च इति हिमवद्विन्ध्यो द्व० स०, तौ कुण्डले यस्याः सा व० स०,
 ताम् । हिमाचल और विन्ध्याचल से घिरी हुई । (५) एकातपत्रांकाम्—एकम्
 आतपत्रम् इति एकातपत्रम् 'पूर्वकालैकसर्वंजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन'
 इति सूत्रेण कर्मधारयसमासः, एकातपत्रम् अंकः यस्याः सा व० स०, ताम् ।
 जिस पर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो ऐसी (६) प्रशास्तु—प्र+शास्+लोट्
 प्रथमपुरुषस्यैकवचने रूपम् (७) राजसिंहः प्रशास्तु नः—यह वाक्य मास के
 नाटकों में से अन्य छह नाटकों में भी आया है । यह अनुष्टुप् छंद है ॥१६॥

इति श्रीतारिणीशशर्मकृतायां स्वप्नवासवदत्तस्य विमाण्यटीकाया विवरण

समाप्तम् ॥६॥

परिशिष्ट १

(१) नाटक (रूपक) के भेद

नाटक के मुख्य दस भेद हैं—

नाटकमय प्रकरणं भाणव्यायोगसवकारडिमाः ।

ईहामृगाञ्जुवीर्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥ (साहित्यदर्पण ६-३)

[नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग समवकार, डिम, ईहामृग, अञ्जु, वीर्य और प्रहसन ये दस रूपक हैं ।]

इन दशों के लक्षण, कथावस्तु आदि में प्रायः भिन्नता रहती है । नाटक की कथावस्तु कोई प्रसिद्ध पौराणिक या ऐतिहासिक होती है और उसका नायक लोक-विश्रुत होता है । रूपक की अधिकांश रचनाएँ इसी भेद का लक्षण लेकर लिखी गई हैं । प्रकरण की कथावस्तु काल्पनिक होती है । प्रायः नाटक और प्रकरण इन दो भेदों की रचनाएँ ही अधिक प्रचलित हैं । अन्य भेदों के लक्षण इन्हीं से मिलते-जुलते हुए होते हैं । भाण और प्रहसन व्याग्य और हास्य-प्रधान होते हैं । इनमें समाज के पाखण्डियों और वैदिक धर्म के न मानने वाले नास्तिक-धर्मावलम्बियों की संस्कृत कवियों ने खिल्लो उड़ापी है । व्यायोग एक अञ्जु का होता है । ईहामृग चार अञ्जु और तीन सधियों का होता है । वीर्य का कथानक भी भाण के समान होता है । इसमें शृङ्गार रस और कैशिकी वृत्ति प्रधान होती है । पात्र एक-दो ही रहते हैं । अञ्जु में युद्ध का वर्णन रहता है । करुण रस की प्रधानता होती है । कथा इतिहास या पुराण से ली जाती है । डिम और समवकार के उदाहरण रूप में क्रमशः त्रिपुरदाह और समुद्र-मन्थन संस्कृत में आदर्श माने जाते हैं । इन रूपकों के अतिरिक्त १८ उपरूपक होते हैं । इनमें से अधिकांश एक अञ्जु के होते हैं । सभी लक्षणों को लेकर संस्कृत में रचनाएँ की गई हैं । हमें इस विषय की विशेष जानकारी के लिए संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों को देखना चाहिए ।

(२) नाटक के प्रमुख तत्त्व

नाटक की सफलता के लिए उसके तीन प्रमुख तत्त्व—कथावस्तु, नायक और रस का मली भाँति निर्वाह कवि को करना चाहिए । यद्यपि ये तीनों बहुत

महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु उत्तरोत्तर इनका महत्त्व अधिक होता है। लेकिन कथावस्तु का समुचित निर्वाह नायक और रस के निर्वाह को स्वतः सिद्ध कर देता है। इसलिए प्रायः कथावस्तु की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। काव्य के नव रसों में से शान्त रस को छोड़ कर आठ रस नाटक में व्यवहृत होते हैं। वीर या शृङ्गार रस प्रायः नाटक के प्रधान रस होते हैं। धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त ये चार नायक के भेद बताये गये हैं।

कथावस्तु

कथावस्तु का विन्यास नाटक का मूल तत्त्व है। यह जितना स्वच्छ और नाटकोपयोगी होगा उतना ही अधिक नाटक प्रभावशाली होगा। उपादेयता की दृष्टि से कथावस्तु दो तरह से विभक्त होती है—मुख्य कथावस्तु और उसकी संगमूत कथावस्तु, जिससे मुख्य कथा के विकास में सहायता मिलती है। दोनों को क्रमशः आधिकारिक और प्रासङ्गिक कथावस्तु कहते हैं—

इवं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते ।

आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासङ्गिकमथापरम् ॥

अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।

तस् येतिवृत्त कविभिराधिकारिकमुच्यते ॥

अस्योपकरणार्थं तु प्रासङ्गिकमितिष्यते । (सा० दर्पण ६, ४२—४३)

प्रासङ्गिक कथावस्तु दो तरह की होती है—एक वह जो मुख्य कथावस्तु के साथ दूर तक चलती रहती है और दूसरी वह जो स्थान-विशेष पर ही मुख्य कथावस्तु की सहायक होती है। दोनों को पारिभाषिक शब्दों में क्रमशः पताका और प्रकरी कहते हैं।

प्रकार या प्रकृति की दृष्टि से भी कथावस्तु रूपक में तीन तरह की होती है—(१) इतिहास आदि पर अवलम्बित प्रख्यातकथावस्तु; प्रायः 'नाटक' की कथावस्तु ऐसी ही होती है। (२) कवि द्वारा कल्पित उत्पाद्यकथावस्तु; जैसी कि 'प्रकरण' में होती है। (३) इतिहास के भंश और कवि-कल्पना दोनों में मिश्रित मिश्रकथावस्तु; रूपक के अनेक भेदों में ऐसी ही कथावस्तु होनी है।

रंगमंच पर प्रदर्शन की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद हैं—(१) अभिनेय—वे वस्तुएँ, जिनका अभिनय रंगमंच पर घटना और संवाद के रूप में किया जाता है। (२) सूच्य—वे वस्तुएँ, जिनका रंगमंच पर प्रदर्शन न होकर केवल पात्रों में

संवाद के माध्यम से सूचना दे दी जाती है। ऐसी मूख्य वस्तुओं की सूचना के लिए शास्त्रीय दृष्टि से पाँच प्रकार की व्यवस्था है जिससे रूपक की स्वामाबिकता बनी रहती है और वह नीरस नहीं होने पाता है। इस व्यवस्था या उपाय को अर्थोपक्षेपक कहते हैं—(१) बीती हुई और भ्राने वाली घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा दिये जाने को विष्कम्भक कहते हैं। किन्तु जहाँ विष्कम्भक में एक या दो मध्यम कोटि के पात्र भाते हैं उसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं और जहाँ उसमें नीच एवं मध्यम दोनों कोटि के पात्र भाते हैं, उसे मिश्रविष्कम्भक कहते हैं। विष्कम्भक में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग होता है। (२) ऊपर कही हुई घटनाओं की सूचना जब निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है तब उसे प्रवेशक कहते हैं। यहाँ प्राकृत भाषा का प्रयोग होता है। (६) पदों के पीछे बैठे हुए पात्रों द्वारा कथा की सूचना देने को चूलिका कहते हैं। (४) अंक की समाप्ति पर निष्क्रान्त होने वाले पात्रों द्वारा अगले अंक की कथा की सूचना अंकास्प—है। (५) अंक समाप्त होने के पहले ही आगामी अंक की कथा प्रारम्भ कर देने से अंकावतार अर्थोपक्षेपक होता है।

रामंच पर कथोपकथन में पात्र भी कथावस्तु को तीन तरह से व्यवहार में लाते हैं—(१) जो बात सब के सामने कही जाय, उसे सर्वश्राव्य या प्रकाश कहते हैं। प्रायः अनेक रूपकों के सर्वांश में ऐसी ही कथावस्तु होती है। (२) जो दूसरे पात्रों के सुनने योग्य न होकर केवल अपने ही सुनने योग्य हो और उसे वह पात्र अपने मन के लिए ही कहे, वह स्वगत या अश्राव्य है। माण और प्रहसन में प्रायः ऐसी कथावस्तु होती है। (३) जो केवल कुछ पात्रों के सामने कही जा सके, वह नियतश्राव्य है। नियतश्राव्य में ही जब दो पात्र हाथ की मोट करके बात करते हैं तो उसे जनान्तिक, जब कोई पात्र मुँह फेरकर दूसरे पात्र से कुछ बात कहता है तो उसे अपवारित और आकाश को देखकर किसी से बात चीत करने का अभिनय करते हुए कोई अपने आप प्रश्न और उत्तर दोनों कहता चला जाता है तो उसे आकाशभाषित कहते हैं।

मूख्य घटनायें या कथायें प्रायः अङ्कों के अन्तराल में भाती हैं। कथावस्तु के अनुसार रूपक अङ्कों में विभक्त होता है। अङ्क का अर्थ होता है एक काल की निरन्तर चलने वाली कथा का विभाग। प्रायः पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान द्वारा इस कथा-विभाग के प्रसंग में नवीनता होती रहती है।

(३) अर्थ-प्रकृति, अवस्था और संधियाँ

रूपक की कथावस्तु प्रायः मानव-जीवन के किसी तथ्य की अभिव्यक्ति लेकर पल्लवित होती है। रूपक में इस तथ्य का विकास कथावस्तु की अर्थ-प्रकृति बन जाता है अर्थात् इस तथ्य को अर्थ (मुख्य प्रयोजन) कहते हैं। इस अर्थ के विकास में कार्यक्रम या व्यापार की जो शृङ्खला होती है, उसे अवस्था और इस अवस्था के संयोग से अर्थ-प्रकृति के रूप में विस्तृत कथानक को, जो पाँच अंशों में विभक्त रहता है, आपन में परस्पर सम्बद्ध करने को संधि कहते हैं। इस प्रकार अर्थ-प्रकृति, अवस्था और संधि के पाँच-पाँच भेद होते हैं, जो नीचे दिये जा रहे हैं। इनमें रूपक की कथावस्तु पूर्ण विस्तृत, नियमित और रमणीय बन जाती है। अर्थ-प्रकृतियाँ

१. बीज—मुख्य फल का कारणभूत कथाभाग, जिसका पहले बहुत संक्षेप में कथन किया जाता है और आगे वह क्रमशः विस्तृत होता जाता है।

२. बिन्दु—कारण बनकर आने वाली वह बात बिन्दु कहलाती है, जिससे समाप्त होने वाली अवान्तर कथा आगे बढ़ती है और प्रधान कथा अविच्छिन्न बनी रहती है।

३. पताका—इसका परिचय पहले दिया जा चुका है। यह प्रासंगिक कथावस्तु, जो दूर तक नाटक में चलती रहे। इसका फल भी प्रायः वही होता है जो प्रधान कथा का होता है। जैसे—बालरामायण में सुग्रीव की कथा और उसकी राज्य-प्राप्ति।

४. प्रकरी—इसका भी परिचय पहले दिया जा चुका है। प्रासङ्गिक कथावस्तु के छोटे छोटे वृत्तों को प्रकरी कहते हैं।

५. कार्य—कार्य का अर्थ फल है। जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है और जो साध्य होता है, वह कार्य है। इसी को अन्तिम तथ्य या मुख्य प्रयोजन कहते हैं।

अवस्थाएँ

१. धारम्भ—कार्य की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे धारम्भ कहते हैं।

२. प्रयत्न—कार्य को सिद्ध होता न देखकर उसके लिए शीघ्रता के साथ उपाय करना।

३. प्राप्याशा—उपाय और विघ्न दोनों के बीच की अवस्था, जब दोनों की सीचातानी में फल-प्राप्ति का निश्चय न किया जा सके।

४. नियताप्ति—विघ्न के नष्ट हो जाने से जहाँ फल-प्राप्ति का पूर्ण निश्चय हो जाय।

५. फलागम—पूर्ण रूप से उद्देश्य की प्राप्ति।

सन्धियाँ

१. मूल-सन्धि—‘आरम्भ’ नामक धवाया और ‘बीज’ अर्थप्रवृत्ति का जहाँ संयोग होता है, उसे मूल-संधि कहते हैं।

२. प्रतिमूल-सन्धि—रूपक के प्रधान फल का साधक कथानक जिसमें कमी गुप्त और कमी प्रकट होता दिखाई पड़े, वह प्रतिमूल-सन्धि है। यह संधि ‘प्रयत्न’ अवस्था और ‘बिन्दु’ अर्थप्रवृत्ति की कार्य-शृंखला को आगे बढ़ाती है।

३. गम-सन्धि—इस संधि में प्रतिमूल संधि का किंचित् आविर्भूत बीज बार-बार प्रकट, गुप्त और आवेपित होता रहता है। यह संधि ‘प्राप्याशा’ अवस्था और ‘पताका’ अर्थप्रवृत्ति के बीच की स्थिति होती है।

४. विमर्श (अवमर्श) सन्धि—वहाँ होती है, जहाँ बीज के अधिक विस्तृत हो जाने पर उसके फलोन्मुख होने में विघ्न होते हैं। इसमें ‘नियताप्ति’ अवस्था और ‘प्रकरी’ अर्थप्रवृत्ति होती है।

५. निर्वहण-सन्धि—इसमें ‘फलागम’ अवस्था और ‘कार्य’ अर्थप्रवृत्ति होती है। यह रूपक की समाप्ति के सन्निकट, जहाँ पूर्व की संधियों और अवस्थाओं के अर्थों का समाहार होता है, स्थित होती है।

(४) रङ्गमञ्च

रंगमंच भी नाट्यशास्त्र का एक प्रमुख अंग है। वस्तु, नायक और रस के बाद संगीत, वाद्य, नृत्य तथा फिर रंगमंच का ही क्रम आता है। भरतमुनि ने रंगमंच के सबंध में बहुत विस्तृत विवेचन किया है। इसके तीन प्रकार बताये गये हैं—

१. त्रिकुण्ड रंगमंच जो १०८ हाथ लम्बा होता है। २. चतुरस्र अर्थात् चौकोर रंगमंच जो ६१ हाथ लम्बा और उसका आधा ३२ हाथ चौड़ा होता है।

३. त्र्यस्र अर्थात् त्रिकोण रंगमंच जिसमें प्रायः आपस के लोग ही बैठकर अभिनय स्व० द०—२१

देखते थे। रंगमंच की बनावट आदि के संबंध में भी बहुत से निर्देश दिये गये हैं, जिनसे अभिनय में होने वाले संवाद, संगीत आदि की ध्वनि अधिक गूँजकर सुनाई पड़े। प्रायः आधे भाग में 'रंगमंच होता था और आधे भाग में दर्शकों के बैठने का स्थान। रंगमंच का पिछला भाग रंगशीर्ष कहलाता था। उसके पृष्ठ में नेपथ्य होता था, जहाँ पात्र अपनी वेश-भूषा आदि ठीक करते थे।

कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय नाट्यकला पर यूनानी नाट्यकला का प्रभाव पड़ा है। लेकिन हमें स्मरण रखना चाहिए कि जिस समय यूनान में खुले मैदान में रंगमंच स्थापित किये जाते थे, हमारे यहाँ रंगमंच की व्यवस्था सुनिश्चित थी और नाट्यकला का विकास बहुत ऊँचाई पर पहुँच चुका था। प्रथम शताब्दी ईसवीय से पूर्व हुए कालिदास के पहले भी भास, सोमिल्लक जैसे अनेक नाटककार संस्कृत साहित्य में हो चुके थे। इधर परदे के लिए 'यवनिका' शब्द का प्रयोग यूनान और यवन शब्द की ओर संकेत कर लोगों को भारतीय नाट्यकला पर यूनानी नाट्यकला का प्रभाव अभिलक्षित कर रहा था। किन्तु 'यवनिका' शब्द ही भ्रान्ति से लिखा जाने लगा। भारतीय नाट्यशास्त्र का शब्द तो 'जवनिका' है, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—'जुयते घ्राच्छाद्यते यया यस्या वा सा जवनिका, √ जु + ल्यट्—घन—ङीप् + कन्—टाप्, ह्रस्व'। जू पातु का अर्थ वेग से चलना भी होता है। तदनुसार 'जवनिका' का अर्थ है—जिसके भीतर लोग दौड़कर जल्दी से छिप जायें; अथवा अभिनय में परदे वेग से गिराये और उठाये जाते थे, जिनके लिए 'जवनिका' शब्द का प्रयोग होता था। बात केवल 'यवनिका' 'जवनिका' की ही नहीं है, अनेक ऐतिहासिक प्रमाण और यहाँ-वहाँ की नाटकीय प्रवृत्तियाँ सभी यह सिद्ध करती हैं कि भारतीय नाट्यकला के विकास में कोई भी यूनानी प्रभाव नहीं पड़ा है। हमारे यहाँ के नाटकों की प्रवृत्ति आनन्द, विनोद, शान्ति तथा उपदेश-भूषक है और वहाँ के नाटक इनके विपरीत मार-काट, हत्या, पीड़ा तथा दुःखान्त मायाओं से भरे होते हैं। सिकन्दर ने भारत पर ३२७ ई० पू० में आक्रमण किया था और लड़ते हुए वापस लौटा गया था। बाद में सिल्यूकस भी अश्वगुप्त से पराजित हुआ था। अतः भारत में यूनानी नाट्यप्रथा के प्रथम मिलने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता, जब कि इसके बहुत पहले भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' लिखा जा चुका था। पालिनि की अष्टाध्यायी के वृशादव और शिलातिन् नाम से नाटकाचार्य भी हो चुके थे।

(५) नाटक आदि शब्दों के शास्त्रीय लक्षण

१. नाटक—नाटकं व्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
 विलासदर्पादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ।
 सुखदुःखमुद्भूतिनानारसनिरन्तरम्
 पञ्चाधिका दशपरस्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
 प्रह्लातवंशो राजर्षिर्घोरोदात्तः प्रतापवान् ।
 दिव्योऽप्य दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥
 एक एव भवेद्भूयो शृङ्गारो वीर एव वा ।
 भ्रंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणोऽद्भुतः ॥
 चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरयाः ।
 गोपुच्छाप्रसमप्रं तु बन्धनं तम्य कीर्तितम् ॥

नाटक उसे कहते हैं जिसका कथानक प्रसिद्ध हो और जिसमें मुख, प्रतिमुख आदि पाँचों संधियाँ हों। इसमें विलास, समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए। सुख और दुःख की उत्पत्ति दिखाई जाय और अनेक रसों से उसे पूर्ण होना चाहिए। नाटक में पाँच से लेकर दस तक भ्रंक होते हैं। इसका नायक प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, घोरोदात्त, प्रतापी और गुणवान् राजर्षि होना है। वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के गुणों से मिश्रित हो। शृङ्गार या वीर में से एक रस यहाँ मुख्य होता है और अन्य सब रस उसके भ्रंगमूल रहने हैं। इसे निर्वहण संधि में अद्भुत बनाना चाहिए। इसमें चार या पाँच कार्य-रस पुरुष प्रधान हों और की पूँछ के अप्रमाण के समान इसकी रचना हो।

२. भ्रङ्ग—भ्रङ्ग इति कश्चिन्नमो भावो रसैश्च रोहयःपर्यान् ।
 नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेद्भङ्गः ॥
 यथायस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
 किञ्चिद्व्यसन्नधिन्दुः सोऽङ्ग इति सदाज्यगन्तव्यः ॥

जो भावो और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्तुति करता है, जो अनेक प्रकार के विधानों से युक्त होता है और जहाँ एक अर्थ की समाप्ति होती है तथा बीज

का उपसंहार होता है पर अंशतः बिन्दु का सम्बन्ध बना रहता है, उसे 'अंक' कहते हैं ।

३. गर्भाङ्क—अङ्गोदरप्रविष्टो यो रङ्गद्वारामुखादिमान् ।

अङ्गोष्परः सगर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि ॥

जो अंक के बीच में ही प्रविष्ट हो, जिसमें रंगद्वार तथा आमुख आदि अङ्ग हों और बीज एवं फल का स्पष्ट आभास होता हो, उसे गर्भाङ्क कहते हैं ।

४. पूर्वरङ्ग—यन्नाद्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।

कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

नाटकीय कथा के प्रारम्भ से पूर्व रंगमंच के विघ्नों की शान्ति के लिए नर्तक या अभिनेतागण जो मंगलाचरण आदि करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं ।

५. नान्दी—आशीर्वाचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।

देवद्विजनुपादीनां तस्माद्वान्नीति संज्ञिता ॥

मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोकैरवशंसिनी ।

पदयुक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदेस्त ॥

देवता, ब्राह्मण राजा आदि की आशीर्वाद-युक्त स्तुति इससे की जाती है, अतः इसे नान्दी कहते हैं । इसमें मांगलिक वस्तु, शंख, चन्द्र, कमल, चक्रवाक और कुमुद आदि का वर्णन होता चाहिए और यह बारह या आठ पदों से युक्त होनी चाहिए ।

६. सूत्रधार—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सवीजकम् ।

रङ्गव्ययतपूजाकृत् सूत्रधार उच्यते ॥

बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं । उसका धारण प्रयात् संचालन करने वाला तथा रंगमंच के अधिष्ठाता देव की पूजा करने वाला व्यक्ति सूत्रधार कहलाता है ।

७. नेपथ्य—कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

जहाँ नर्तक या अभिनेता गण नाटकोपयोगी वेश-भूषा धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं ।

८. (क) धामुख या प्रस्तावना या स्थापना

मठी विदूषको वापि पारिपाश्विक एव वा ॥

सूत्रधारेण सहिताः संस्तव्यं यत्र कुर्वते ॥

चित्रैर्वाक्यैः स्वकापौत्यैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मियः ।

धामुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

यहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपाश्विक (सूत्रधार का सहायक नट) सूत्रधार के साथ अपने कार्य के विषय में विचित्र वाक्यों द्वारा इस प्रकार बातचीत करें, जिससे प्रस्तुत कथा की सूचना हो जाय, उसे धामुख कहते हैं और उसी का नाम प्रस्तावना भी है । (स्थापना भी इसको कहते हैं । मात ने इसी 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया है ।)

८. (ख) प्रयोगातिशय—यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।

तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥

यदि एक ही प्रयोग में दूसरा प्रयोग भी आरम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो तो उसे 'प्रयोगातिशय' नामक प्रस्तावना कहते हैं ।

९. कंचुकी या कांचुकीय—घनतः पुरचरो बृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।

सर्वकार्यायंकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

अथवा

ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।

ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥

कंचुकी उसको कहते हैं, जो घनः पुर में जाने वाला, बृद्ध, गुणी, ब्राह्मण तथा सब कार्यों के करने में कुशल होता है । अथवा सदा सात्त्विक प्रकृति वाला, पवित्र आचरण वाला और ज्ञान-विज्ञान में प्रवीण होता है, उसे कांचुकीय कहते हैं ।

१०. विदूषक—विहृताङ्गवोषेर्वैर्हास्यकारी विदूषकः ।

जो अपने विहृत धंगों, ऊटपटांग वचनों तथा तरह-तरह के वेशों से दर्शकों को हँसाया करता है, उसे विदूषक कहते हैं ।

११. नायक—रयागो कुवीरः सुधीरो रुच्यो वनोत्साही ।

वसोऽनुरूपलोकास्तेजोयंक्ष्म्यशीतवान् नेता ॥

जो रयागो, विद्वान्, कुवीर, मनुष्य, गुरु, युवा, उमाही, चतुर, लोचनिय, तेजस्वी, निरुण एवं सुनील हो, वही नायक है (यहाँ नायक में ये गुण होने चाहिए) ।

(क) धीरोदात्त नायक—अदिकत्यन्तः क्षमावानतिगम्भीरो महासह्यः ।

स्येषान्निगूढमानो धीरोदात्तोद्वेगतः कथितः ॥

अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाले, क्षमावान्, अत्यन्त गंभीर, महापराक्रमी, स्थिर, गर्व को छिपा कर रखने वाले और दृढ़ निश्चय करने वाले व्यक्ति को धीरोदात्त नायक कहते हैं। जैसे—राम और युधिष्ठिर।

(ख) धीरोद्धत नायक—मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहकारवर्षभूयिष्ठः ।

आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्वीरोद्धतः कथितः ॥

मायावी, प्रचंड, चंचल, अतिगर्वी तथा स्वयं अपनी प्रशंसा करने वाले को धीर पुरुष धीरोद्धत नायक कहते हैं। जैसे—भीमसेन, दुर्योधन आदि।

(ग) धीरललित नायक—निदिचिन्तो मृदुरनिष्ठां कलापरो धीरललितः स्यात् ।

निदिचिन्त, कोमल और दिन-रात नाच-गान में रत रहने वाला नायक धीरललित कहलाता है। जैसे—इस नाटक में बत्सराज।

(घ) धीरप्रशान्त नायक—सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशान्तः स्यात् ।

सामान्य गुणों से अत्यन्त युक्त ब्राह्मण या क्षत्रिय को धीर प्रशान्त नायक कहते हैं। जैसे—मासती-भाधव मे भाधव।

१२. नायिका—नायकसामान्यगुणैर्युक्ता नायिका ।

नायक में अपेक्षित गुणों से युक्त नायिका होती है।

(६) नाटकीय पात्रों के लिए विशिष्ट शब्द

“नाटक में प्रधान श्रेणी के मृत्यवर्ग राजा को ‘स्वामी’ अथवा ‘देव’ शब्द से सम्बोधित करें और निचलो श्रेणी के मृत्य ‘मट्ट’ कह कर उसका सम्बोधन करें। इसी प्रकार राजपति तथा विदूषक उसे ‘वयस्य’ कहकर और ऋषिगण ‘राजन्’ कहकर या अपत्यापेक अणु आदि प्रत्यय लगाकर पुकारें। ब्राह्मणवर्ग आपस में चाहे अपत्यप्रत्यान्त शब्द से, चाहे नाम लेकर व्यवहार करें। राजा विदूषक को ‘वयस्य’ कहकर या नाम लेकर पुकार सकता है। नटी और सूत्रधार परस्पर आर्या और आर्य शब्द से व्यवहार करें। पारिषादिक सूत्रधार को ‘माव’ कहकर और सूत्रधार उसे ‘मारिप’ कहकर बुलावे। निम्न श्रेणी के लोग आपस में ‘हण्डे’ कहकर, मध्यम श्रेणी के लोग ‘हंहो’ कहकर और उत्तम श्रेणी के लोग अपने ममान कोटि के पुरुषों को ‘वयस्य’ कहकर परस्पर सम्बोधन करें। बड़े माई को मय

लोग 'भार्य' कहें । देवता, ऋषि और संन्यासी को सभी श्रेणियों के लोग 'मगवन्' कहकर सम्बोधित करें । विदूषक रानी और चेटी को 'भवती' कहें । रथी को सारथि 'धायुष्मन्' कहें । वृद्ध पुरुषों को जवान और बालक 'तात' कहें । शिष्य, छोटे भाई और पुत्र को वत्स, तात, पुत्रक इन शब्दों से भयवा उनके नामों में गोत्र प्रत्यय लगा कर सम्बोधित करना चाहिए । अधम श्रेणी के लोग भ्रमात्म्य को 'भार्य' कहें और ब्राह्मण उसे 'भ्रमात्म्य' या 'मचिव' पद से विमूषित करे । उत्तम श्रेणी के लोग तपोनिष्ठ और शान्तिनिष्ठ पुरुषों को 'साधो' कहकर पुकारें । शिष्य अपने गुरु या आचार्य को 'मगवन्' भयवा 'सुगृहीतनामधेय' आदि पदों में सम्बोधित करे । राजा को महाराज' या 'स्वामी' शब्द से और युवराज को 'कुमार' शब्द से अभिहित करना चाहिए । छोटी श्रेणी के लोग राजकुमार को 'भर्तृदारक', 'भद्र', 'सौम्यमुख' आदि शब्दों से पुकारें । राजकुमारी को राजा के नौकर-चाकर 'भर्तृदारिका' कहें । उत्तम, मध्यम तथा अधम पुरुष स्त्रियों को सभी प्रकार सम्बोधित करें जैसे उनके पतियों को करते हैं । राखी को 'हला' शब्द से, दासी को 'हृज्जे' कहकर, वेश्या को 'अञ्जुका' और कूटनी को 'अम्बा' कहकर पुकारना चाहिए । पारंगती लोग अपने-अपने आचार के अनुसार सम्बोधित किया जाने चाहिए । शक आदि जाति के लोगों के नाम के अन्त में भद्रदत्त आदि शब्दों को जोड़ना चाहिए । जिसका जो कर्म हो, शिल्प हो, जो विद्या हो या जो जाति हो, उसी में उसका व्यवहार करना चाहिए ।"

परिशिष्ट २

अकारादिक्रम से श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
अनाहारे तुल्यः	५६	पूर्वं त्वयाऽप्यमिमत्	१२
अनेन परिहासेन	१३२	पृथिव्या राजवंश्यानां	२०२
अस्य स्निग्धस्य	२१६	प्रच्छाद्य राजमहिषीं	२२१
अहमवजितः पूर्वंम्	२०५	प्रद्वेषो बहुमानो वा	२२
इमां सागरपर्यन्ताम्	२३४	बहुशोऽप्युपदेशेषु	१६१
इयं बाला नवोद्गाहा	१४१	भारतानां कुले	२२६
उदयनवेन्दुसवर्णा	२	मित्रास्ते रिपवः	१७६
उपेत्य नागन्द्रतुरङ्ग	१८१	मृत्युर्मंगधराजस्य	६
ऋज्वायतां च विरलां	११२	मघमदकला	११६
ऋज्वायतो हि मुख	१५४	महासेनस्य दुहिता	२११
कस्यायैः कलशेन	३१	मिथ्योन्मादेष्व	२२६
कः कं शक्तो रक्षितुं	२०६	यदि तावदयं	१७४
कातरा येऽप्यशक्ता वा	२०४	यदि विप्रस्य	२१६
कामेनोज्जयिनी गते	१०६	योऽयं सन्त्रस्तया	१७७
कार्यं नैवार्यैर्नापि	३५	रूपश्रिया	१५१
किं वदयतीति हृदयं	१६८	वाक्यमेतत्	२१४
किन्नु सत्यमिदं	२२८	विस्रब्धं	४५
खगा वासोपेताः	६७	दाय्या नावनता	१५६
गुणानां च विशालानां	१४२	दाय्यायामवमुप	१७३
घिरप्रमुत्तः कामो मे	१६२	दारुणशोक	१४०
तीर्थोदकानि समिधः	२०	श्रुतिमुख	१८६
दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलो	१३४	श्राणीगमुद्बहन	१६१
घोरस्याधमसश्रितस्य	८	दत्ताय्यामवन्ति	१४६
निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं	१७१	पोढशान्तःपुर	२०७
नैवेदानी तादृशाः	५७	सम्बन्धिराज्य	२००
पद्मावती नरपतेः	४२	सविधमो ह्ययं	६१
पद्मावती बद्धमता	१२६	सुखमयी	३७
परिहरतु भवान्	१५	स्मराम्यवन्त्यापिपतेः	१६०
पादाब्जान्शानि पुष्पाणि	१२०	स्वप्नस्यान्ते	१७६

परिशिष्ट ३

स्वप्ननाटक में सुभाषित

- १—भकरणाः सत्त्वोश्वराः । (अपने पति के पचावती के साथ विवाह के समय वासवदत्ता की उक्ति) ईश्वर बड़े निर्दयी हैं । ... ५६
- २—अनतिक्रमणीयो हि विधिः । (विदूषक की उक्ति) भवितव्यता टाली नहीं जा सकती । ... १३४
- ३—अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते । (योगन्धरायण की उक्ति) इस प्रकार विदित न होने पर तो देवताओं का भी अपमान होता है । ... ११
- ४—अविचार्यं क्रमं न करिष्यति । (वासवदत्ता की उक्ति) बिना विचारे वे (योगन्धरायण) कोई काम नहीं करेंगे । ... ३६
- ५—अज्ञातवासोऽप्यथ बहुगुणः सम्पद्यते । (वासवदत्ता की उक्ति) यहाँ छिपकर रहना भी बहुत गुणकारी हो रहा है । ... १२७
- ६—अयुक्त परपुरुषसकीर्तनं श्रोतुम् । (पराये पुरुष का गुणगान सुनना उचित नहीं है ।) ... २१६
- ७—अस्य स्निग्धस्य वर्गस्य विपत्तिं हिणा कथम् । (घात्री की उक्ति) इस मनोहर रूप पर भीषण आपत्ति कैसे पड़ी । ... ६१
- ८—आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति । (घात्री की उक्ति) महापुरुषों के हृदय शास्त्रों पर विश्वास करने के कारण आसानी से प्रकृतिस्व हो जाते हैं । ... ५०
- ९—एव लोकस्तुल्यवर्मा वनानां काले-काले छिद्यते रह्यते च । (अर्थात् जैसे वृक्ष समय आने पर काटे जाते हैं और फिर समय आने पर पनप उठते हैं उसी तरह मनुष्य भी समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते रहते हैं ।) ... २०६
- १०—कः कश्चिदस्ति रक्षितुं मृत्युकाले । (कंचुकी) इसी प्रकार वृक्षों के समान स्वभाव वाले मनुष्य समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते हैं । ... २०६

- ११—कालक्रमेण जगतः परिवर्तमानां चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य-
पंक्तिः । (योगन्धरायण) लोगो का भाग्यचक्र पहिये के श्रों की
भाँति समयानुसार घूमता हुआ चलता है । ... १२
- १२—कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते । (कंचुकी) जो
अधीर या असमर्थ होते हैं उनमें उत्साह नहीं होता । ... २०४
- १३—गुणानां वा विज्ञातानां सत्काराणां च नित्यशः । कर्तारः सुलभा
लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ अत्यन्त महान् गुणों एवं सत्कारों
के करने वाले लोग तो संसार में नित्य मिल जाते हैं परन्तु (उन
गुणों तथा सत्कारों को) जाननेवाले (अर्थात् भादर पूर्वक स्वीकार
करने वाले लोग) कम मिलते हैं । ... १४२
- १४—तपोवनानि नाम अतिविजनस्य स्वर्गहम् । (तापसी) तपोवन तो
अतिविजनों का अपना घर है । ... २६
- १५—तस्मिन् सर्वमधीनं हि यन्नाधीनो नराधिपः । (योगन्धरायण) क्योंकि
जिसके हाथ राजा की देखभाल है उसी के हाथ में सब कुछ है । .. ६१
- १६—दुःखं त्यक्तुं बद्धमुखोऽनुरागः । (राजा) जमी हुई जड़वाले प्रेम
को भूल जाना बड़ा कठिन है । ... १३४
- १७—धन्या सलु चक्रवाकवधूः, धान्योन्यविरहिता न जीवति । (वात्सवदत्ता)
निःसंदेह चक्रवे की बहू (चक्रवी) धन्य है जो एक दूसरे से विमुक्त
होकर नहीं जीती । ... ८४
- १८—न परममाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् । (कंचुकी) आश्रम में रहने वालों
को कठोर वचन नहीं कहना चाहिए । ... १५
- १९—न हि सिद्धवाक्याभ्युत्क्रम गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ।
(योग०) क्योंकि भाग्य भरी भाँति परखे हुए सिद्धों के वधनों का
उल्लंघन करके नहीं चलता है । ... ४२
- २०—परस्परगता लोके दृश्यते तुल्यरूपता । (राजा) संसार में (बहुतों
के) स्वरूप एक दूसरे से मिलते-जुलते दिखाई पड़ते हैं । ... २१६

- २१—प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते । (योग०) घृणा या लगाव मन के भाव से ही उत्पन्न होते हैं । ... २२
- २२—प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते । (कंचुकी) जो उत्साही होते वे ही प्रायः राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं । ... २०४
- २३—प्राणी प्राप्य रजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं भुञ्चति । (राजा) प्राणी रोग के कारण विस्तर पर पहुँच कर अपने आप, शीघ्र उसे नहीं छोड़ता है । ... १५६
- २४—यात्रा त्वेषा यद्विमुच्येह वाप्यं प्राप्तानुष्यं याति बुद्धिः प्रसादम् । (राजा) तो भी व्यवहार यही है कि यहाँ (इस लोक में) भाँसू वहाकर ऋण से छुटकारा पाया हुआ मन शान्ति प्राप्त कर लेता है । १३४
- २५—रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति । (कंचुकी) रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को (गिरने से) रोक सकता है । ... २०६
- २६—सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । (विदूषक) क्योंकि सत्कार का बदला सत्कार से दिये जाने पर प्रीति उत्पन्न करता है । ... १४२
- २७—सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि मदाक्षिण्य एव भवति । (पद्मावती) चतुर व्यक्त का सेवक भी चतुर ही होता है । ... १३६
- २८—सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सोमाग्यं नाम । (पद्मावती) निश्चय ही सौन्दर्य सबके मन को आकृष्ट कर लेता है । ... ७८
- २९—सर्वजनसाधारणमाद्यमपदं नाम । (कंचुकी) आद्यम तो सभी के लिए खुला है । ... ४७
- ३०—माक्षिमन्यासो निर्यातयितव्यः । (राजा) साक्षी के सामने घरोहर लौटानी चाहिए । ... २२४
- ३१—मुखं नामयपरिभूतमकल्पवर्तं च । (विदूषक) यह मुख-मुख नहीं जो रोग से आक्रान्त हो और जिसमें कलेवा न मिले । ... ६५
- ३२—स्त्रीत्वमावस्तु कातरः । (राजा मन में) नारियों का स्वभाव तो भयानक होता है ।

परिशिष्ट ४

नाटक में आये छन्दों के लक्षण

(१) अनुष्टुप्—पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।

षष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥

अनुष्टुप् मे ८ अक्षर होते हैं। उनमें से सभी चरणों में पंचम अक्षर लघु होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सातवाँ अक्षर लघु होता है और छठा अक्षर सर्वत्र गुरु होता है।

(२) आर्या—यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।

षष्ठादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

जिसके पहले और तीसरे पाद में बारह, दूसरे पाद में अठारह और चौथे पाद में पन्द्रह मात्राएँ हों, उसे आर्या कहते हैं।

(३) इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

इन्द्रवज्रा में २ तगण, १ जगण और २ गुरु अक्षर होते हैं। कुल ११ वर्ण होते हैं।

(४) उपजाति—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजी पादौ यवीमावुपजातयस्ताः ।

उपजाति छंद इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छंदों के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा छंद होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा।

(५) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

इसमें भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण और २ गुरु अक्षर।

(६) पुष्पिताग्रा—अपुजि नयगरेफतो यकारो

युजि च नजी जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

पुष्पिताग्रा छंद के प्रथम और तृतीय चरण में १२ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ रगण और १ यगण। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३ वर्ण होते हैं—१ तगण, २ जगण, १ रगण और १ गुरु वर्ण।

(७) वसन्ततिलका—उरता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः ।

वसन्ततिलका छंद में १४ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ तगण, २ जगण और २ गुरु वर्ण।

(८) वैश्वदेवी—पञ्चाश्वंशिछन्ता वैश्वदेवी ममी यौ ।

वैश्वदेवी छंद में १२ वर्ण होते हैं—२ मगण और २ यगण । इसमें ५ और ७ पर विराम होता है ।

(९) शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदिमः सजी सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

इस छंद में १९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण १ जगण, १ सगण, २ तगण और १ गुरु वर्ण । इसमें १२ और ७ पर विराम होता है ।

(१०) शालिनी—मात्तो गौ चेच्छालिनी वेदलोकेः ।

शालिनी छंद में ११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण और २ गुरु वर्ण । ४ और ७ पर विराम होता है ।

(११) शिखरिणी—रसं रुद्रंश्छन्ता यमनसुभला गः शिखरिणी ।

शिखरिणी छंद में १७ वर्ण होते हैं—१ यगण, मगण, १ तगण, १ सगण, १ मगण, १ लघ और १ गुरु वर्ण । इसमें ६ और ११ पर विराम होता है ।

(१२) हरिणी—नसमरसला गः षड्वेदं हं षं हरिणी मता ।

हरिणी छंद में १८ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु और १ गुरु वर्ण । इसमें ६, ४ और ७ पर विराम होता है ।

परिशिष्ट ५

भास की प्राकृत—डा० भोलाशकर व्यास ने अपने 'संस्कृत कविदर्शन' में (पृष्ठ २४६) भास की प्राकृत के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है :—

“भास के नाटकों की प्राकृत प्रायः शौरसेनी है । दूतवाक्य के भक्तिरिक्त अन्य सभी नाटकों में प्राकृत का प्रयोग पाया जाता है । मागधी का प्रयोग प्रतिज्ञा, चारुदत्त, बालचरित, पंचरात्र तथा कर्णभार में हुआ है । भास की शौरसेनी से ऐसा पता चलता है कि वह अश्वघोष तथा कालिदास के बीच की स्थिति का संकेत करती है । अश्वघोष की प्राकृत में अघोष अल्पप्राण ज्वनियौ सघोष अल्पप्राण नहीं होती, भास की प्राकृत में ट और त क्रमशः ड और द हो जाते हैं । अश्वघोष की प्राकृत में स्वरमध्यग व्यंजन लुप्त नहीं होते, जब कि भास में स्वरमध्य क, ग, च, त, द, प, ब, व, च का लोप हो जाता है, यद्यपि यह लोप कालिदास की अपेक्षा कम पाया जाता है । महाप्राण स, घ, ष, ष, फ, म भास

की प्राकृत में ह हो जाते हैं, अश्वघोष में ये अपरिवर्तित बने रहते हैं। संस्कृत ज कालिदास की प्राकृत में ण मिलता है, अश्वघोष में ज्ज, किन्तु मास की प्राकृत में इसका कभी ज्ज रूप मिलता है कभी ण। संस्कृत 'वयं' का रूप अश्वघोष में अपरिवर्तित रहता है, कालिदास में इसका 'अम्हे' रूप मिलता है। मास की प्राकृत में ये दोनों रूप पाये जाते हैं, साथ ही 'वयं' रूप भी मिलता है। अस्मद् शब्द के षष्ठी बहुवचन में मास में अम्हाअं, अम्हाणं दोनों रूप मिलते हैं। अश्वघोष में अम्हाकं रूप मिलता है।

मास की मागधी तथा अर्धमागधी में हमें दो रूप मिलते हैं। बालचरित तथा पंचराय में य और ओ ध्वनि पाई जाती है। प्रतिज्ञा और चारुदत्त में श और ए। मागधी में 'अह' के लिए 'अहवे' का प्रयोग पाया जाता है।"

परिशिष्ट ६

भास के व्याकरण संबंधी अपाणिनीय प्रयोग

१. आपृच्छामि भवन्ती ।	प्रथम अंक
२. विनयादपेतपुरुषः ।	"
३. सुखं मर्षो भवेद्वातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।	"
४. न श्लिष्यते मे मनसि ।	"
५. देशागतप्रत्ययाः ।	"
६. कः कालः त्वामन्विष्यामि ।	तृतीय अंक
७. धरते ललु वासवदत्ता ।	"
८. प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमम् इत्यादि ।	चतुर्थ अंक
९. बाष्पाकुलपटान्तरितम् ।	"
१०. मघुकरपरिनिनीनाम् ।	"
११. मा भूयोज्वलित्य ।	"
१२. मेदानीमन्यथा चिन्तयित्वा ।	"
१३. स्मरवा स्मृत्वा याति दुःखं भवत्वम् ।	"
१४. आर्यपुत्रेणेहागत्येमा कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा इत्यादि ।	"
१५. अर्घमनःशिलापट्टं कैरिव दोफालिकापुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम् ।	"
१६. स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः ।	पंचम अंक

१७. मेदानी भवाननयं चिन्तयित्वा ।
 १८. सर्वधिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहयः ।
 १९. स्मृत्वा पुनः नृपसुतानिधनं विपादः ।

पंचम अंक
 षष्ठ अंक
 "

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु को संक्षेप में लिखिए ।
२. स्वप्नवासवदत्तम् के कथानक की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
३. मास ने इस नाटक का नाम स्वप्नवासवदत्तम् क्यों रखा ?
४. वासवदत्ता और पद्मावती के चरित्रों की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए ।
५. प्रथम अंक में ब्रह्मचारी के समावेश से किस अर्थ की सिद्धि होती है ।
६. योगन्धरायण, उदयन, यस्तन्तक, वासवदत्ता तथा पद्मावती का सोद्धरण चरित्र-चित्रण कीजिए ।
७. सावानक गाँव को जलाने से कौन-सा नाटकीय तथ्य सिद्ध होता है ? स्पष्ट कीजिए ।
८. योगन्धरायण ने पद्मावती का विवाह क्यों और किस प्रकार किया ?
९. उदयन कौन था ?
१०. योगन्धरायण ही नाटक में प्रमुख पात्र है । स्पष्ट कीजिए ।
११. स्वप्नदृश्य का विश्लेषण कीजिए और नाटक में उसका महत्त्व बतलाइये ।
१२. स्वप्नवासवदत्तम् के मूलस्रोत का उल्लेख कीजिए और बतलाइये कि मास ने क्या परिवर्तन किये हैं और क्यों ?
१३. मास के स्थिति-काल का निर्णय कीजिए ।
१४. मास की नाट्यकला पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।
१५. मास की शैली पर प्रकाश डालिए ।
१६. मास की रचना में अज्ञानिनीय प्रयोगों के सम्बन्ध में धनना मत स्पष्ट कीजिए ।
१७. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:—
 नाटक, पूर्वरेण, माग्नी, मूत्रघार, विष्कम्भक, प्रस्तावना, कञ्जुकी नेत्रम् ।
१८. (घ), निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ लिखिए:—
 अंक प्रथम—१, २, ४, ७, ८, ११, १२, १४, १६

अंक चतुर्थ—२, ३, ७, १०

अंक पञ्चम—३, ४, १२, १३

अंक षष्ठ—१, २, ४, ५, ८, १०, १५

(भा) निम्नलिखित गद्यांशों का सदमपूर्वक अर्थ लिखिए—

पृष्ठ—१८ काञ्चुकीय का कथन ।

६८ चेटी का कथन ।

८३ वासवदत्ता का कथन ।

६४, १२० विदूषक का कथन ।

१६७ वासवदत्ता का कथन ।

१८६ प्रतीहारो का कथन ।

२१४ घाघी का कथन ।
